कालिदास के काव्य में ध्वनितत्व

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिये प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

निर्देशक —

डा० चण्डिका प्रसाद शुक्ल

रीडर संस्कृत विभाग

प्रयाग विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्त्री

(कु०) मंजुला जायसवाल

१९७३

अजय प्रकाशन इलाहाबाद

मुद्रक :—

सी० के० प्रिंट प्रेस

६१, गाड़ीवान टोला

इलाहाबाद।

प्रथम संस्करण १९७६

मूल्य ३०.००

निवेदन

कालिदास गिरा सारं कालिदासः सरस्वती ।

चतुर्मुखोऽथवा साक्षात् विदुर्नान्ये तु मादृशाः ॥ मल्लिनाथ

संस्कृत भाषा में कालिदास के काव्य का अवतार वैसे ही हुआ, जैसे ललना में यौवन का और यौवन में लावण्य का। सुभारती धन्य हो गई, महाकवि की प्रतिभा को पाकर और आर्ष साहित्य के प्रति व्यायाम बुद्धि से क्लान्त सहृदय चेतना को भाषा का शस्य श्यामल शाद्वल मिला, जहाँ बुद्धि के साथ हृदय ने भी विश्राम लिया। भावों के सरसिन्धु में सहृदय चेतना को इतना आनन्द और सुख मिला कि उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो स्वर्ग और पृथ्वी एक स्थान पर मिल गये। प्रकृति में वसन्त का वैभव एवं आत्मा का परमात्मा से मिलन सा प्रतीत होने लगा। देश और काल की परिधि को पार करके महाकवि की प्रतिभा ने विश्वमानव को काव्यरस के आनन्द में निमग्न किया और संस्कृत साहित्य के अध्ययन का आह्वान किया। भारतीय काव्य प्रतिभा का वह अक्षुण्ण स्रोत बना।

किन्तु सहृदय बुद्धि काव्यालोचन के मापदण्ड बनाती और हारकर कालिदास के काव्य का उचित माप न कर पाता। अलंकार, गुण, रीति आदि के बटखरों से आचार्यों ने तौला। उनमें बहुतों के पास अधिक सामग्री मिली और इन आचार्यों के लिये, वे श्रेष्ठ स्थान भागी रहे। सम्भव है, उन आचार्यों ने कालिदास के काव्य में अपने काव्यमान की सम्यक् सत्ता न देखकर, उन्हें श्रेष्ठकवि का महत्व न भी दिया हो। यह लक्षणकारों की स्वयं मूल्यांकन दृष्टि का शैथिल्य था, जो कालिदास के काव्य सौन्दर्य की परख न कर सके, परिभाषा न कर सके। अलंकार, गुण, रीति वादियों के लिये कालिदास एक सामान्य कवि रहे।

सौभाग्य से, जब काव्य जगत् में महाकवि कालिदास का आविर्भाव हुआ, वैसे ही काव्य समालोचना के क्षेत्र में सहृदय आनन्दवर्धन का अवतार हुआ। उस दिव्य दृष्टि सहृदय ने काव्य समालोचना का नूतन मापदण्ड उपस्थित किया और कविता के वास्तविक मूल्य का माप निश्चित किया। उनके अनुसार कविता का प्राण है—व्यंग्यार्थ और उसका बोध होता है व्यंजना से। नया अर्थ नया व्यापार, न किसी ने सुना था, न किसी ने कहा था। व्यंग्य अर्थ भी तीन प्रकार का—वस्तु रूप, अलंकार-रूप, रसादि रूप। इस अर्थ को जो काव्य प्रधान रूप से व्यक्त करे, उस काव्य का नाम 'ध्वनि काव्य' है। बिना व्यंग्य अर्थ के काव्य, काव्य नहीं, काव्य का चित्र अथवा काव्य है। और चूँकि इस प्रकार की अलोक-सामान्य प्रतिभा की अभिव्यंजन कालिदास की कविता

म अय म इति तक भरा पड़ा है अत कालिदास महाकवि हैं और इसीलिये कालिदास सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनकी ओर बिना नाम लिये ही ध्वनिकार ने दो, तीन या पाच छ का ओर सकेत किया। पता नहीं व कौन थे ? लेकिन उसी दिन स कालिदास सर्वश्रेष्ठ महाकवि हो गए, और अब कालिदास की श्रेष्ठता का रहस्य खुला कि ध्वनितत्व के कारण उनकी कविता सर्वश्रेष्ठ है अस्तु।

कालिदास के काव्य मन्दिर म प्रवेश करने का सौभाग्य, मुझे स्नातक कक्षा स मिला। तभी स उनके काव्य के प्रति एक विशेष रुचि मेरे हृदय में जागृति हुई। एम० ए० की कक्षाओं म कालिदास के साहित्य को कुछ और निकट म देखने का अवसर मिला। एम० ए० के पश्चात्, मेरे मन म शोध करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। अपने निदेशक गुरुवर डा० चण्डिका प्रसाद शुक्ल से बड़ संकोच स मैंने अपनी यह चिर जिज्ञासा प्रकट की। उन्होने कालिदास के काव्य के ध्वनि शास्त्रीय अध्ययन की ओर मुझे इंगित किया, और कहा,-विषय कठिन है, किन्तु प्रयत्नवश य स सम्भव है। उनके सकेत एव इच्छा से ही आदेश मान कर मैंने यह शोध यात्रा आरम्भ की। महाकवि कालिदास के काव्य-सागर का ध्वनिशास्त्रीय अध्ययन मेरी जैसी अल्पज्ञानी एवं समय के बात्याचक्र म ग्रस्त छात्रा के लिये उतना ही कष्ट साध्य था जब एक पगु का गिरि लांघना, क्योंकि यह काम तो महतो महीयान, का सा था। कविकुलगुरु महाकवि कालिदास की वाणी एवं गुरुवर की अनुकम्पा का सहारा लेकर ही मैंने अपनी यह यात्रा प्रारम्भ की, क्योंकि—महता सस्तवरच गौरवाय।

बीसवीं शताब्दी म कालिदास की कृतियों के अध्ययन अध्यापन का विषय प्ररणा दी जा रही है। बाद म मनाई जाने वाली कालिदास जयन्ती एव कालिदास एकेडमी की स्थापना स कालिदास का महत्व अब स्पष्ट होने लगा है।

इस युग म कालिदास के काव्य का मूल्यांकन अनेक विद्वानों ने, अनेक दृष्टियों से करने का प्रयास किया है किन्तु जिस ध्वनि तत्व के निवेश के कारण उन्हें महाकवि की उपाधि प्रदान की गई है—उस ध्वनितत्व का विवेचन अभी तक नहीं हुआ है। अत कालिदास के काव्य में ध्वनि तत्व का विवेचन मैंने अपनी अल्पबुद्धि के द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत करने का यत्किंचित् प्रयास किया है। इस शोध प्रबन्ध म कालिदास की काव्य कृतियों का ही विवेचन किया गया है, नाट्य कृतियों का नहीं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सात अध्यायों म विभाजित है—'कालिदास के काव्य म ध्वनि तत्व' जितना नवीन है, उतना ही नवीन एवं दुष्कर ध्वनि तत्व का अवगाहन है। ध्वनि का वास्तविक रूप समझ कर फिर उस कुञ्जिका के आधार पर कालिदास की काव्य वाटिका का उद्घाटन किया जा सकता है। अत प्रारम्भ म ध्वनि के विषय का विवेचन किया गया है। आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा दिये गये, ध्वनि की परिभाषा, ध्वनि काव्य का भेद, ध्वनिभेद, गुणीभूत व्यंग्य काव्य आदि का सम्यक म विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय मे महाकवि के जीवन-वृत्त एव संस्कृत-काव्य परम्परा के सन्दर्भ म उनकी कृतियों की समीक्षा की गई है। कालिदास के समय, जीवनवृत्त आदि के विषय म अनेक विद्वानो द्वारा विचार किया गया है। इस अध्याय म उनके आविर्भाव काल का—नाटकगत प्राकृत क आधार पर, विशेष विवेचन किया गया है। उत्तरार्ध मे संस्कृत काव्यों क रचनागत वर्ग (इतिवृत्त प्रधान, भाव प्रधान एव अलंकार प्रधान) का उल्लेख कर, कालिदास के काव्य म इन तीनो का समन्वय किया गया है।

तृतीय अध्याय म रसादि व्यंग्य का विवेचन किया गया है। ध्वनिवादी आचार्यों ने असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य का केवल एक भेद रसादि माना है। रसादि मे आये आदि शब्द म भाव रसाभास, भावाभास भावोदय, भावशान्ति, भावसन्धि, भावशबलता का ग्रहण होता है। इस अध्याय के तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड म अंगीरस का विवेचन है द्वितीय खण्ड म अंगभूत रस का तथा तृतीय खण्ड म भाव रसाभास, भावाभास भावोदय, भावशान्ति, भावसन्धि एव भावशबलता का विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में अलंकार व्यंग्य का विवेचन किया गया है। संलक्ष्यक्रम व्यंग्य के दो भेद शब्दशक्ति मूल एव अर्थशक्ति मूल होते हैं। इनमे अर्थशक्तिमूल के भी तीन भेद—कविप्रौढोक्तिसिद्ध, कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिसिद्ध एव स्वत सम्भवी बताये गये हैं, इनम भी अलंकार व्यंग्य एव वस्तु व्यंग्य —होने म कुल छ भेद होते हैं। इन्हीं छ भेदों क अनुसार प्रथा वेन व्यंग्य अलंकार का विचार किया गया। कालिदास क काव्य में प्रधा न व्यंग्य अलंकार यत्र तत्र ही पाये जाते हैं जहां भी अलंकार आये हैं व पोषक रूप मे ही आये हैं। अतएव यह अध्याय बहुत ही छोटा केवल बानगी के रूप म ही प्रस्तुत किया गया है।

पंचमाध्याय म वस्तु व्यंग्य का विवेचन किया गया है। जहां रस, भाव अलंकार की प्रधानता न होकर, किसी तथ्य या वस्तुस्थिति का प्राधान्येन कथन किया जाता है वहा वस्तु व्यंग्य होता है। वस्तु व्यंग्य के छहो भेदो के अनुसार इसका विवेचन किया गया है।

षष्ठ अध्याय में गुणीभूत व्यंग्य का विवेचन किया गया है। जहां वाच्य एव व्यंग्य का समप्राधान्य हो अथवा व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य का चारुत्व अधिक हो, वहा गुणीभूत व्यंग्य होता है। महाकवि की समस्त कृतियां ध्वनिकाव्य के ही उत्कृष्ट निदर्शन हैं, गुणीभूत व्यंग्य क स्थल प्राय बहुत कम मिलते ह। फिर भी प्रयासन जो कुछ भी स्थल मिले, उन्हीं का विवेचन किया गया है।

सप्तम अध्याय म कालिदास की शैली म व्यंजक योजना के वैशिष्ट्य का विवेचन किया गया है। ध्वनिकाव्य में व्यंजक-योजना का महत्वपूर्ण स्थान है। कालिदास के कथानक, पात्र, चरित्र, कथोपकथन, देश-काल, भाषा इत्यादि के साथ प्रकृति, प्रत्यय, पद, वर्ण इत्यादि सभी व्यंजक रूप मे वे प्रयुक्त हुये हैं और उनम सदैव किसी न किसी रस, भाव इत्यादि की व्यंजना होती है। अतएव आठ उपखण्डो म विभक्त इस अध्याय मे इन्हीं सब की व्यंजकता का विस्तृत विवेचन किया गया है।

इस निबन्ध के लिखने में मैंने जिन ग्रन्थ रत्नों की सहायता ली है, उन सब के प्रति मैं परम कृतज्ञ हूँ। कालिदास के काव्य का अर्थ समझने के लिए मैंने कालिदास ग्रन्थावली एवं रस, भाव, वस्तु एवं अलंकारों की व्याख्या वाले ग्रन्थों के लिए मल्लिनाथ टीका सहित, कुमारसम्भव, रघुवंश, मेघदूत एवं ऋतुसंहार से विशेष सहायता ली है अतः इन दोनों के प्रति मैं हृदय से विशेष रूप से आभारी हूँ। आदरणीय अध्यक्ष डा० आद्याप्रसाद मिश्र से सभी शोध विद्यार्थियों को प्रेरणा मिलती रही। मुझे भी इस शोध को लिखने की अवधि में उनसे जो समय समय पर प्रेरणा मिली है, उसके प्रति मैं श्रद्धानत हूँ। परम आदरणीय गुरुवर्य डा० चण्डिका प्रसाद शुक्ल जी के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिये मेरे पास वाणी नहीं है। उन्हीं के स्नेह एवं प्रेरणा से यह शोध प्रबन्ध सम्पन्न हो सका है। उनके प्रति मेरा हृदय कृतज्ञता से सदैव रहेगा। श्रद्धेय श्री माता प्रसाद जायसवाल जी के प्रति मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने समय समय पर पुस्तकें प्रदान करने एवं अध्ययन के लिये सुविधा प्रदान की। गंगानाथ झा इंस्टीच्यूट के प्रति मैं आभारी हूँ जहाँ से पुस्तकें सुलभ होती रहीं। प्रयाग विश्वविद्यालयीय पुस्तकालय एवं साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय के अधिकारियों के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने, पत्रों, पत्रिकाओं एवं दुर्लभ पुस्तकों को देने की व्यवस्था की।

निबन्ध में कालिदास के काव्य में आये प्रसंगों का अनेक दृष्टियों से विवेचन किया गया है। जैसे विभिन्न कोणों से लिया गया एक ही चित्र भिन्न भिन्न भावों का प्रदर्शन करता है, ठीक वैसे ही एक ही प्रसंग का भिन्न-भिन्न दृष्टियों से विवेचन किया गया है, अतः उसे पुनरुक्ति न समझना चाहिये।

मेरी बुद्धि अपने ढंग से कालिदास के काव्याकाश में सदा पंख मारती रही है। अपनी अल्पबुद्धि द्वारा गुण-दोषों के साथ यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर रही हूँ। मुझे आशा है विद्वानों को इससे उद्वेग न होगा। अस्तु !

विनीता

कु० मंजुला जायसवाल



किञ्चद् वक्तव्यम्

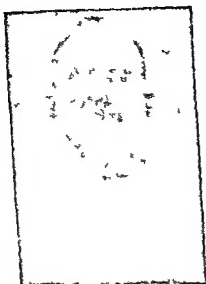
संस्कृत काव्य शास्त्र में ध्वनि सम्प्रदाय के आविर्भाव के साथ ही कालिदास काव्य का गौरव ऐसा बना जैसे सूर्योदय के साथ कमल था । फिर तो उसके सौरभ सारा संस्कृत वाङमय महक उठा । आनन्दवर्धन ने घोषणा की कि ललना में लावण्य भाँति कविता में प्रतीयमान (व्यंग्य) अर्थ दमकता है। और वह केवल महाकवियों के कविता में दिखाई पड़ता है । उस अर्थ का निष्यन्दन करती हुई महाकवियों की सरस उनकी आलोक सामान्य प्रतिभा को परिस्फुरित करता । महाकवि को उस अर्थ तथा उसे व्यक्त करने में समर्थ शब्द को भलीभाँति पहचानना चाहिये । महाकवि पद करने का यही एक राजमार्ग है— नान्यः पन्था विद्यते अयनाय । उन्होंने महाकवि का यही एक माप दण्ड निश्चित किया और स्पष्ट निर्णय दिया कि इस कवि जगत यद्यपि कवियों की अतिविचित्र परम्परायें हैं, किन्तु महाकवि कहलाने का सौभा कालिदास-प्रभृति दो-तीन या पाँच छः ही को है ।

आनन्दवर्धन ने उस प्रतीयमान अर्थ को तीन प्रकार का बताया— वस्तु अलंकार रूप तथा रसादि रूप, और उसको प्रधान रूप से व्यक्त करने वाले काव्य कि को ध्वनि नाम दिया, जिसे उन्होंने काव्य सामान्य के आत्मा अथवा काव्य जगत् क जीवित सर्वस्वरूप बताया । ध्वनिकार ने अच्छी कविता के परख का जो तरीका बत उससे काव्य समालोचना की तुला ही बदल गई तथा काव्य विपणी में वस्तुयें के एवं मूल्य बदल गये ।

इस नये मानक से ध्वनिकार तथा अन्य सभी काव्य पारखी सौन्दर्य कालिदासीय काव्य को सर्वश्रेष्ठ ठहराया । अब कालिदास कविकुलगुरु बन और उ कविता श्रेष्ठ काव्य पद्धति । कालिदास ध्वनि काव्य के श्रेष्ठ निर्माता माने गये । आन वर्धन तथा उनके अनुयायियों ने ध्वनि का बड़ा प्रस्तार बताया । किन्तु सभी प्रकारों लिये उदाहरण कालिदास के काव्यों में दिये जा सकते हैं । यदि ध्वन्यालोक में ध्वनि सिद्धान्त व्यक्त है, तो कालिदास के काव्य ध्वनि की प्रयोगशाला । अस्तु इधर स साहित्य में शोध कार्य की तो अच्छी प्रगति हुई । किन्तु किसी ने कालिदास के काव्य को ध्वनि सिद्धान्त की कसौटी पर कसने का प्रयत्न न किया । इस कार्य में उच्च की सहृदय प्रतिभा एवं व्युत्पत्ति की आवश्यकता थी । मुझे हर्ष है कि सुश्री डा० म जायसवाल ने अपनी अपूर्व शोध क्षमता के साथ इस कार्य को सम्पन्न किया । तिभा एवं व्युत्पत्ति का मञ्जुल समन्वय है । कालिदास के काव्य सुधा सिन्धु

अन्तुन डूब जाती थी—पूर्ण तन्मयता के साथ। उन्होंने जो मौलिक निष्कर्ष निकाले वे भी इनकी बानगी मात्र कहे जा सकते हैं—"तथापि रत्नाकर एव सिन्धु"। कालिदास पर शोध होने लगा—और यह निबन्ध उनका पथ प्रदर्शक होगा, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। अपनी मौलिक दृष्टि एवं गम्भीर विवेचना के कारण ये निबन्ध काव्य मनीषियों के साधुवाद का गौरव पा चुका है। इस विदुषी लेखिका से संस्कृत काव्य शास्त्र को बड़ी आशाएं हैं।

चण्डिका प्रसाद शुक्ल
बसन्त पंचमी २० वि०



स्व० पूज्य पिता श्री मथुरिया जैन जायसवाल

तथा



वात्सल्यमयी पूज्या माँ श्रीमती सरजूदेवी के चरणों में सादर समर्पित

UNIVERSITY OF ALLAHABAD
ALLAHABAD 211002

हमने डा० कुमारी मन्जुला जायसवाल का "कालिदास के काव्य में ध्वनितत्व" नामक शोध प्रबन्ध यहां-वहां देखा। हमारी धारणा है कि लेखिका ने कालिदास के काव्यों में विविध प्रकार की ध्वनियों को ढूंढने में बड़ा श्रम किया है। तृतीय से लेकर षष्ठ तक के चार अध्यायों में इन्हीं ध्वनि-प्रकारों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रथम अध्याय में "ध्वनि" तत्व का, एवं सप्तम (अंतिम) अध्याय में व्यङ्ग्य की योजनायें कालिदास के वैशिष्ट्य का विवेचन है।

इस प्रकार यह ग्रन्थ अच्छा बन पड़ा है। काव्यरसिक सुधीजन इस ग्रन्थ के अध्ययन से महाकवि कालिदास की काव्य भारती के उत्कृष्टतम तत्व 'ध्वनि' का अनुशीलन कर सकेंगे, उसका सुखद आस्वादन कर सकेंगे, हमारा ऐसा विश्वास है।

वसन्त पञ्चमी
२०३२ विक्रमाब्द

अ० प्र० मिश्र

अनुक्रमणिका

अध्याय	पृष्ठ
१—ध्वनितत्त्व	१-२०
२—कालिदास और संस्कृत काव्य परम्परा	२१-५४
३—कालिदास के काव्य में रस-व्यंजना	५५-१३४
४—अलंकार ध्वनि	१३५-१७९
५—वस्तु ध्वनि	१८०-१९४
६—गुणीभूत व्यंग्य	१९५-२०
७—कालिदास की शैली में व्यंजक योजना का वैशिष्ट्य	२०४-२६८



प्रथम अध्याय

ध्वनितत्त्व

संस्कृत साहित्य में आनन्दवर्धन ध्वनिसम्प्रदाय के प्रवर्तक एवं प्रतिभा सम्पन्न सहृदय आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं।[1] प्राचीन आलङ्कारिक भामह, उद्भट, दण्डी, वामन, इत्यादि स्रोतों से बहती हुई काव्य-समालोचना-धारा का पर्यवसान कर, उन्होंने सर्वथा एक नवीन मत को जन्म दिया, जो 'ध्वनिसम्प्रदाय' के नाम से अभिहित हुआ। आचार्य आनन्दवर्धन ने काव्य के अन्तर्निहित मर्म को उसके रहस्यभूत सौन्दर्य तत्त्व को पहचाना—और उस तत्त्व को 'प्रतीयमान (व्यङ्ग्य) अर्थ' नाम दिया—

'काव्यस्यात्मा स एवार्थः' और उस व्यङ्ग्य अर्थ को प्रधान रूप से व्यक्त करने वाले काव्य को 'ध्वनि' नाम दिया।

> यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ व्यङ्क्तः काव्यविशेषः
> स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥ (ध्व० १।१३)

इस दिशा में उनका यह प्रयास सर्वथा नवीन एवं स्तुत्य था।

"ध्वनिसम्प्रदाय' के प्रतिष्ठापक आचार्य आनन्दवर्धन के पूर्व इसका बीज प्राचीन विद्वानों की कृतियों में किसी-न-किसी रूप में प्राप्त होने लगता है। ध्वनिकार ने प्रथम कारिका में ही इस ओर संकेत किया है।[2] ध्वनिसम्प्रदाय में व्यञ्जना व्यापार एवं व्यङ्ग्य अर्थ का बड़ा महत्त्व है। वस्तुतः ये ही दो तत्त्व ध्वनि के प्राणभूत हैं। "ध्वन्यालोक' में व्यञ्जना के अनेक पर्यायवाची ध्वनन, द्योतन, प्रत्यायन, व्यञ्जन, अवगमन एवं व्यञ्जकत्व इत्यादि आये हैं किन्तु व्यञ्जना शब्द का प्रयोग कहीं नहीं हुआ है। इसके पूर्व आचार्य भरत (तीसरी शता०) ने 'नाट्यशास्त्र" में स्थायी भाव की व्यङ्ग्यता को स्वीकार किया है।

---

१ "सहृदयचक्रवर्ती खल्वयं ग्रन्थकृत्। ध्व०लोचन, पृ० ८१

२ बुधैर्यः समाम्नातपूर्वः ॥ ध्व० १ का०

भामह ने समासोक्ति अलंकार के लक्षण में अर्थान्तर की गम्यमानता को स्वीकार करके वाच्यार्थ से भिन्न 'प्रतीयमान अर्थ' की ओर संकेत किया है।[1]

आचार्य दण्डी द्वारा दिए गए पर्यायोक्त के लक्षण में 'प्रकारान्तराख्यानम्' से व्यंजना वृत्ति की ओर संकेत किया गया है तथा उनमें यत्र-तत्र 'व्यज्यते' तथा 'व्यञ्जित' इत्यादि शब्दों का प्रयोग भी दिखाई देता है। आचार्य उद्भट ने भी पर्यायोक्त के लक्षण में अभिधा वृत्ति के अतिरिक्त अवगमात्मक व्यापार की बात कही है।[2] आचार्य रुद्रट द्वारा दिया गया भाव नामक अलंकार का उदाहरण आनन्दवर्धन के ध्वन्य काव्य के समकक्ष बैठता है तथा भाजिर नामक अलंकार गुणीभूतव्यंग्य काव्य की कोटि में आता है।[3] आचार्य वामन भी वक्रोक्ति के लक्षण में "सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः" लिखते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि ध्वनिविषयक अंगों का चिन्तन ध्वन्यालोक की रचना से पहले भी होता रहा है किन्तु किसी भी आचार्य ने गम्भीरतापूर्वक उस पर स्वतन्त्र विवेचन ग्रन्थ रूप में प्रस्तुत नहीं किया था।

इस प्रकार अस्फुट रूप में ध्वनि तत्त्व की ओर संकेत तो प्राप्त होते हैं परन्तु 'ध्वनि' की वास्तविक प्रेरणा एवं 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग आनन्दवर्धन को वैयाकरणों के स्फोट-वाद से ही मिला है, जिसे उन्होंने 'सूरिभिः कथितः' के द्वारा स्वीकार किया है। व्याकरण शास्त्र में प्रधानभूत स्फोट की अभिव्यक्ति जिस ध्वनि (शब्द) से होती है उसे वहाँ 'ध्वनति स्फोटं व्यनक्ति इति ध्वनिः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार उस स्फोट के अभिव्यंजक शब्द के लिए ध्वनि का प्रयोग किया गया है। इसी के आधार पर ध्वनिवादी आचार्यों ने उस शब्द एवं वाच्यार्थ रूप काव्य को जो प्रधान रूप में व्यंग्यार्थ को अभिव्यक्त करने में समर्थ है 'ध्वनि' नाम दिया।[4]

---

१ काव्याल०, पृ० २।७६

२ पर्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाभिधीयते ।
वाच्यवाचकवृत्तिभ्यां शून्येनावगमात्मना ॥ का० सा० स० ४।६

३ रुद्रट काव्यालंकार, डा० सत्यदेव चौधरी, पृ० २९

४ तत्र श्रूयमाणेषु वर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरति । तथैवान्यैस्तन्मतानुसारिभिः सूरिभिः काव्यतत्त्वार्थदर्शिभिर्वाच्यवाचकसम्मिश्रः शब्दात्मा काव्यमिति व्यपदेश्यो व्यंजकत्वसाम्याद् ध्वनिरित्युक्तः ॥ पृ० ११८

आचार्य मम्मट ने भी इसी तात्पर्य का उत्तम काव्य ध्वनि के विवेचन के प्रसङ्ग मे विशद रूप से निरूपित किया है।[१]

इस प्रकार वैयाकरणो से प्रेरणा ग्रहण कर आनन्दवर्धन ने काव्य को एक नयी दिशा दी और उस दिशा का नाम 'ध्वनिवाद' रक्खा। उनके अनुसार ध्वनि की परिभाषा इस प्रकार है— जहाँ वाच्य-अर्थ अपने (स्वरूप) को तथा वाचक शब्द अपने वाच्य अर्थ को गौण (अप्रधान) बनाकर, उस प्रतीयमान अथवा व्यंग्य अर्थ की प्रधान रूप से व्यंजना करते हैं उस काव्य-विशेष को ध्वनि कहते हैं।[२]

वस्तुत आनन्दवर्धन के मतानुसार ध्वनि एक विशेष प्रकार के काव्य को ही कहते हैं—'जहाँ शब्द और अर्थ अपने को अप्रधान बनाकर अन्य अर्थ (व्यंग्य अर्थ) की व्यञ्जना करते हैं।' अपने सम्पूर्ण ग्रन्थ में ध्वनिकार ने 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग बस केवल इसी अर्थ (व्यंग्य प्रधान काव्यविशेष) मे किया है। इस तथ्य की पुष्टि हेतु उनके ही ये वचन प्रमाण हैं, यथा—

'व्यंग्य प्राधान्ये हि ध्वनि' ॥ ध्व०, १।१३

'ध्वनिसंज्ञित प्रकार काव्यस्य व्यंजित सोऽयम्' ॥ ध्व० १।३

नतु ध्वनि काव्यविशेष इत्युक्तम् ॥ ध्व० १

व्यङ्ग्योऽर्थो ललनालावण्यप्रख्यो च प्रतिपादितस्य प्राधान्ये ध्वनिरित्युक्तम्।[३] व्यङ्ग्यार्थस्य प्राधान्ये ध्वनिसंज्ञितकाव्यप्रकार गुणभावे तु गुणीभूतव्यङ्ग्यता।[४] इत्यादि।

१ 'बुधर्वैयाकरणै प्रधानभूतस्फोटरूपव्यङ्ग्यव्यंजकस्य शब्दस्य ध्वनिरिति व्यवहार कृत। ततस्तन्मतानुसारिभिरन्यैरपि न्यग्भावितवाच्यव्यङ्ग्यव्यञ्जनक्षमस्य शब्दार्थ युगलस्य ॥'

का० प्र०, पृ० २६

किन्तु इस विषय को लोचनकार आचार्य अभिनव गुप्त ने कुछ अधिक विस्तार दिया है। उन्होंने 'ध्वनि' का प्रयोग पाँच प्रकार के अर्थों (व्यंजक शब्द, व्यंजक अर्थ, व्यंग्यार्थ व्यंजना व्यापार तथा इन सबसे युक्त काव्य) मे किया है। इन पाँचो अर्थों की पुष्टि के लिए 'वाक्यपदीयकार भर्तृहरि' की कारिकाओं को उद्धृत किया है। यद्यपि आपने स्वयं भी यह स्वीकार किया है कि आनन्दवर्धन ने तो अपने ग्रन्थ मे केवल काव्य को ही ध्वनि कहा है।

२ यत्रार्थ शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थो।
व्यङ्क्त काव्यविशेष स ध्वनिरिति सूरिभि कथित ॥ ध्व० १।१३

३ ध्व० तृतीय उद्योत पृष्ठ ४५६ ४ ध्व० तृतीय उद्योत, पृ० ४९५

आचार्य मम्मट ने भी वाच्य की अपेक्षा व्यंग्य की प्रधानता होने पर ध्वनि काव्य की संज्ञा दी है, और उसे उत्तमकोटि का काव्य स्वीकार किया है।[1] आचार्य मम्मट के अनुयायी विश्वनाथ ने भी साहित्यदर्पण (के चतुर्थ परिच्छेद) में काव्य-भेदों के विवेचन में 'ध्वनि' का प्रयोग वाच्यातिशायि-व्यंग्ययुक्त काव्य के लिए किया है—

'वाच्यातिशायिनि व्यंग्ये ध्वनिस्तत् काव्यमुच्यते' ॥ सा० द० ४।१

संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ ने भी 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग (वस्तु, अलङ्कार, रसादि) व्यंग्य-अर्थों से युक्त उत्तमोत्तम नामक काव्य-विशेष के अर्थ में किया है—

शब्दार्थौ यत्र गुणीभावितात्मानौ कमप्यर्थमभिव्यङ्क्तस्तदाद्यम् । रस० गं० १।२

इस प्रकार हम निष्कर्ष रूप से यह सकते हैं कि आनन्दवर्धन के अनुसार ध्वनि का व्युत्पत्ति निमित्तक अर्थ हुआ 'व्यंजक' तथा प्रवृत्तिनिमित्तक अर्थ हुआ 'व्यंग्य अर्थ को प्रधानतः प्रयुक्त करने वाला काव्य-विशेष।'

अब प्रश्न यह उठता है कि ध्वनिकार एक ओर 'ध्वनि' का प्रयोग काव्य-प्रकार विशेष के अर्थ में करते हैं, और दूसरी ओर ध्वन्यालोक की प्रथम कारिका में 'ध्वनि' को 'काव्य की आत्मा' बताते हैं।[2] इन दोनों स्थानों पर प्रयुक्त ध्वनि की सङ्गति किस प्रकार बैठेगी ?

इसका समाधान यह है कि प्रथम कारिका में उल्लिखित 'काव्यस्यात्मा ध्वनि' इसका अर्थ है—ध्वनि ही काव्य की वास्तविक आत्मा अथवा स्वभाव या स्वरूप है। 'आत्मा' शब्द का प्रयोग इन शास्त्रकारों ने भूयो भूयः स्वरूप अथवा स्वभाव के ही अर्थ में किया है। इससे निष्कर्ष यह निकला कि पूर्ववर्ती बुधों ने केवल ध्वनि को ही काव्य अथवा काव्य का लक्षण माना है—'ध्वनिः काव्यम्'। इसी मान्यता के अनुसार विस्तार के साथ सभी दृष्टियों से मीमांसा कर ध्वनिकार ने—व्यंग्यार्थ की प्रधान तथा गौण रूप से 'दो स्थितियों' के अनुसार ध्वनि नामक काव्य के दो भेद निरूपित किए। जिन्हें क्रमशः ध्वनि काव्य तथा गुणीभूतव्यंग्य काव्य नाम दिया गया। वस्तुतः ध्वनि काव्य की आत्मा और ध्वनि काव्य-विशेष इन दोनों कथन में कोई भेद नहीं है।

---

१ इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधैः कथितः । का० प्र० १।४

२ काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति ॥ ध्व० १।१

महाकवित्व की कसौटी व्यंग्य अर्थ ही है। साधारण कवियों के काव्य में व्यंग्यार्थ नहीं भी पाया जाता। किन्तु शब्द-अर्थ का ज्ञान महाकवियों को तो होता ही है। वे ही उस अर्थ (व्यंग्यार्थ) को भलीभाँति समझकर उसका अभिनिवेश अपने काव्य में करते हैं।[1] अतएव महाकवि-पद की प्राप्ति के लिए व्यंग्यार्थ का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि ध्वनिकार ने प्रतीयमान अर्थ को ही काव्य की आत्मा कहा है। इस दृष्टि से कालिदास महाकवित्व की कसौटी पर खरे उतरते हैं, जैसा कि स्वयं आनन्दवर्धन ने कहा है—येनास्मिन्नतिविचित्रकवि परम्परावाहिनि संसारे कालिदासप्रभृतयो द्वित्राः पञ्चषा वा महाकवयः इति गण्यन्ते।[2]

ध्वन्यालोककार ने प्रतीयमानार्थ या व्यंग्यार्थ के तीन भेद माने हैं—वस्तुरूप अलङ्काररूप तथा रसादिरूप। इनमें से वस्तु, व्यंग्य तथा अलङ्कार व्यंग्य लोक में भी व्यवहृत होने के कारण लौकिक कहे गये हैं। विधि आदि के द्वारा निषेध आदि रूप व्यंग्य वाच्यत्वेन भी कहा जा सकता है। इसी प्रकार उपमा-स्वभावोक्ति इत्यादि अलङ्कार भी इवादि सादृश्यवाचक शब्दों द्वारा काव्य में उपात्त हो सकते हैं परन्तु रसादि रूप अर्थ स्वप्न में भी वाच्यत्वेन अभिहित नहीं होता। उसकी प्रतीति केवल व्यंजना व्यापार से और केवल काव्य नाट्यादि कला में वृत्तियां में ही होती है। अतएव उसे अलौकिक कहा गया है। वस्तु एवं अलङ्कार रूप अर्थों का तो पर्यवसान रस में होता है, लेकिन रस रूप अर्थ का पर्यवसान कहीं अन्यत्र नहीं होता। वह स्वपर्यवसायी है। काव्यस्यात्मा स एवार्थः में उस 'एवार्थ' का अर्थ 'रसादिरूप अर्थ' करके ध्वनिकार ने काव्य में उसकी प्रधानता स्वीकार की है।

वस्तुतः सारा ध्वनि-सिद्धान्त व्यंग्यार्थ एवं व्यंजना वृत्ति पर आधारित है। व्यंग्यार्थ की प्रतीति व्यंजना व्यापार से होती है। ध्वनिकार ने व्यंजना को एक विलक्षण, तथा अभिधा-तात्पर्य लक्षणा तीनों व्यापारों से अलग चतुर्थ-कक्षानिवेशी व्यापार माना है। अस्तु।

ध्वनिकाव्य के भेद—

'ध्वनि सम्प्रदाय' में व्यंग्यार्थ की प्रधानता तथा अप्रधानता के आधार पर ही काव्य का भेद किया गया है। ध्वनिकार ने काव्य के दो भेद किये हैं—

(१) ध्वनि और (२) गुणीभूतव्यंग्य।

१ यत्नतः प्रत्यभिज्ञेयौ तौ शब्दार्थौ महाकवेः ॥ ध्व०

२ ध्व०, पृ० ६४

जहाँ वाच्य की अपेक्षा व्यंग्य अर्थ की प्रधानता होती है वह 'ध्वनि-काव्य' कहलाता है[१] तथा जहाँ व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य की अधिक चारुता होती है— 'वह गुणीभूतव्यंग्य' नामक काव्य कहलाता है।[२] 'आनन्दवर्धन ने गुणीभूतव्यंग्य' को 'ध्वनि निष्यन्द रूप तथा परमरमणीय कहा है[३] क्योंकि पर्यवसायी रसभावादि की दृष्टि से वह ध्वनि काव्य की कोटि में आ जायेगा।[४]

आनन्दवर्धन के अनुसार ये ही दो रचनाएं काव्य हैं शेष व्यंग्य से रहित काव्य रचनाएँ काव्य नहीं काव्य का चित्र अथवा चित्रकाव्य हैं। क्योंकि उनमें व्यंग्य नास्तिकल्प होता है। उनमें वाच्य-वाचक का ही चमत्कार रहता है। ध्वनिकार इस प्रकार के काव्य को काव्यानुकृति मात्र कहते हैं—

न तन्मुख्य काव्यम्। काव्यानुकारो ह्यसौ। ध्व०, पृ० ४६५

आचार्य मम्मट ने काव्य की तीन कोटियाँ मानी हैं। वाच्य की अपेक्षा व्यंग्य के प्रधान रहने पर उत्तम काव्य[५] दोनों के समप्रधान अथवा व्यंग्य से वाच्य के अधिक चमत्कारकारी होने पर मध्यम काव्य,[७] तथा व्यंग्य में वाच्य का अभाव होने पर या अस्फुटतया प्रतीति होने पर 'अवरकाव्य या अधम काव्य' कहा है।[८]

---

१ यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥ १।१३

२ प्रकारोऽन्यो गुणीभूतव्यङ्ग्यः काव्यस्य दृश्यते। यत्र व्यङ्ग्यान्वये वाच्यचारुत्व स्यात्प्रकर्षवत् ॥ ध्व० ३।३४ ॥

३ तदयं ध्वनि निष्यन्दरूपो द्वितीयोऽपि महाकविविषयोऽतिरमणीयः लक्षणीयः सहृदयैः ॥ ध्व० ३।४०

४ प्रकारोऽयं गुणीभूतव्यङ्ग्योऽपि ध्वनिरूपताम्। धत्ते रसादितात्पर्यपर्यालोचनया पुनः।
—ध्व० ३।४०
गुणीभूतव्यङ्ग्योऽपि काव्यप्रकारो रसभावादि तात्पर्यालोचने पुनर्ध्वनिरेव सम्पद्यते ॥
—ध्व० ३।४०

५ प्रधानगुणभावाभ्यां व्यङ्ग्यस्यैवं व्यवस्थिते।
काव्ये उभे ततोऽन्यद्यत्तच्चित्रमभिधीयते ॥ ध्व० ३।४२

६ इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधैः कथितः ॥ का० प्र० १।४

७ अतादृशि गुणीभूतव्यङ्ग्यं व्यङ्ग्ये तु मध्यमम् ॥ का० प्र० पृ० ३२

८ शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यङ्ग्यं त्ववरं स्मृतम् ॥ का० प्र० १।५

विश्वनाथ ने कुछ ध्वनिकार का अनुसरण-सा करते हुए काव्य की केवल दो कोटियाँ स्वीकार की हैं—ध्वनि तथा गुणीभूतव्यग्य।[1] इनके अतिरिक्त चित्र काव्य की गणना व काव्यकोटि में अन्तगत करते ही नहीं।

पण्डितराज जगन्नाथ काव्य के चार भेद मानते हैं—उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम तथा अवर।[2] उनका उत्तमोत्तम काव्य 'ध्वनि काव्य' है—'अमुमेव च प्रभेद ध्वनिमामनन्ति' जहाँ व्यग्य अप्रधान रूप से स्थित रहता हुआ चमत्कार का हेतु होता है, वह 'उत्तम काव्य' है।[3] इसमें व्यग्य की स्थिति न सन्दिग्ध प्रधान होती है, और न तुल्य प्रधान। यह मम्मट सम्मत गुणीभूतव्यग्य काव्य से समता रखते हुए भी, उससे भिन्न है। क्योंकि मम्मट वहाँ सन्दिग्ध-प्रधानता तथा तुल्य-प्रधानता दोनों स्थितियाँ मानते हैं।

जहाँ व्यग्य का चमत्कार वाच्य के चमत्कार के समानाधिकरण हो, वह मध्यम काव्य है।[4] यह भी मम्मट के गुणीभूत व्यग्य काव्य के अन्तर्गत आयेगा।[5]

जहाँ शब्द का चमत्कार प्रधान हो, और अर्थ का चमत्कार उसका उपस्कारक हो वह अधम काव्य कहलाता है।[6]

अन्य आचार्य हेमचन्द्र,[7] अप्पयदीक्षित, प्रभृति मम्मट के अनुसार ही काव्य की तीन कोटियाँ स्वीकार करते हैं—उत्तम, मध्यम तथा अधम।

ध्वनि भेद—

ध्वनिकार ने ध्वनि के भेदों का निरूपण दो प्रकार से किया है—व्यग्य रूपेण, व्यंजक रूपेण। ध्वनि के लक्षण में व्यंजक शब्द व्यंजक अर्थ दोनों का महत्व है, व्यग्यमुखेन तथा व्यंजकमुखेन भेद निरूपण करना मानो ध्वनि-काव्य का ही भेद निरूपण करना है जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है।

---

१ काव्य ध्वनिर्गुणीभूतव्यग्य चेति द्विधामतम्। सा० द० ४।१

२ उत्तमोत्तमोत्तममध्यमाधमभेदात्चतुर्धा। रस०गं०, पृ०२२

३ यत्र व्यग्यमप्रधानमेव सच्चमत्कारकारणं तद्द्वितीयम्। रस० गं०, पृ० १७

४ यत्र व्यग्यचमत्कारसमानाधिकरण वाच्यचमत्कारस्तृतृतीयम्। रसगंगाधर, पृ० १६

५ काव्य प्रकाश, पृ० ३१

६ यत्रार्थचमत्कृत्युपस्कृता शब्दचमत्कृतिप्रधान तदधमं चतुर्थम्। पृ० १६

७ व्यग्यस्यप्रधान्ये काव्यमुत्तमम्। काव्यानु० २।५६
असत्सदिग्धतुल्यप्राधान्ये मध्यम द्विधा। काव्यानु० २।५७
अव्यग्यमवरम्। काव्यानु० २।५८

यहाँ, तो ध्वनि के सर्वप्रथम दो भेद हैं—'अविवक्षित वाच्य' तथा 'विवक्षितान्यपरवाच्य'।[1] अविवक्षितवाच्य ध्वनि वह है जहाँ वाच्यार्थ सर्वथा अनुपयुक्त (अविवक्षित) अथवा अन्वयायोग्य रहता है। इसे 'लक्षणा' मूल ध्वनि भी कहते हैं। लक्षणा के दो भेद—'उपादान तथा लक्षणलक्षणा' के आधार पर अविवक्षितवाच्य के दोनों भेद होते हैं—अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य (इसके अन्तर्गत उपादान लक्षणा आती है) तथा 'अत्यन्ततिरस्कृत वाच्य (इसके अन्तर्गत लक्षण लक्षणा आती है[2])।

अर्थान्तर संक्रमितवाच्य उसे कहते हैं—जहाँ वाच्य अर्थ का सीधा सम्बन्ध, वच्यतावच्छेदक रूप में अन्वय न बनने के कारण, शब्द अपने सामान्य अर्थ का त्याग कर स्वसम्बद्ध किसी विशिष्ट अर्थ को बोधित कराता है। जैसे—

स्निग्धश्यामलकान्तिलिप्तवियतोवेल्लद्बलाका घना
वाता शीकरिणः पयोदसुहृदामानन्दकेकाः कलाः।
कामं सन्तु दृढं कठोरहृदयो रामोऽस्मि सर्वं सहे
वैदेही तु कथं भविष्यति हहा हा देवी धीरा भव॥

यहाँ रामोऽस्मि में 'राम' शब्द का वाच्यार्थ अनुपपन्न होकर, राज्यनिर्वासन पितृमरणादि असंख्य दुःखों को सहन करने वाला (राम) रूप अर्थ में परिणत हो जाता है।

अत्यन्ततिरस्कृत वाच्य उसे कहते हैं—जहाँ वाच्य अर्थ अनुपपद्यमान होने से अत्यन्त तिरस्कृत हो जाता है।[3] जैसे—

रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुषारावृतमण्डलः।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते॥

यहाँ अन्ध तथा आदर्श दोनों में (अन्धत्व रूप) एक धर्मिबोधकत्व रूप अन्वय की सिद्धि न होने से 'अन्ध' शब्द के मुख्यार्थ (दृष्टिहीन) का सर्वथा (अत्यन्त) तिरस्कार कर दिया गया।

विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि उसे कहते हैं जिसमें वाच्य विवक्षित (वाच्य-वाचक छेदक रूप से अथवा अन्वययोग्य) होता हुआ भी व्यंग्यनिष्ठ होता है। इस

---

१ अस्तिध्वनिः स च अविवक्षितवाच्यो विवक्षितान्यपरवाच्यश्चेति द्विविधः सामान्येन। ध्व० १।

२ अर्थान्तरे संक्रमितमत्यन्तं वा तिरस्कृतम्।
अविवक्षितवाच्यस्य ध्वनेर्वाच्यं द्विधामतम्। ध्व० २।११

३ क्वचिदनुपपद्यमानतया अत्यन्तं तिरस्कृतम्। का० प्र०, पृ० ६२

अभिधामूलक ध्वनि भी कहते हैं। इसका विभाजन व्यंग्य की अवस्था एवं स्वरूप के अनुसार किया गया है यह दो प्रकार का है—(१) असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य तथा (२) संलक्ष्यक्रमव्यंग्य।[1]

'असंलक्ष्यक्रम ध्वनि' के आत्मरूप अथवा अङ्गीरूप से स्थित रसादि होते हैं। यहाँ यह शंका होती है कि, 'रसादि रूप व्यंग्य अर्थ की प्रतीति विभावादिक वाच्य अर्थ के अनन्तर ही होती है। अतएव वाच्य और व्यंग्य में क्रम तो रहता है फिर उसे असंलक्ष्यक्रम क्यों कहते हैं ?

समाधान यह है कि वाच्य से व्यंग्य की प्रतीति में क्रम तो रहता है किन्तु अतिशीघ्रता के कारण 'शतपत्रपत्रभेदन न्याय' से वह लक्षित नहीं होता। जिस प्रकार सौ कमल के पत्तों को एक साथ रख कर उनमें सुई चुभाई जाए, तो भेदन तो क्रम से होगा, परन्तु ऐसा प्रतीत होगा कि वह एक साथ सौ पत्तों के पार चली गयी। उसी प्रकार वाच्य से व्यंग्य की प्रतीति में क्रम अवश्य रहता है, परन्तु अतिलाघववात् उसका पता नहीं चलता।

'असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य' का केवल एक भेद रसादि है। किन्तु रसादि में आये आदि शब्द से रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावप्रशम, भावोदय, भावसंधि तथा भावशबलता का ग्रहण होता है।[2] इनकी स्थिति अङ्गीरूपेण होने पर ही ये ध्वनि-काव्य के अन्तर्गत आयेंगे। यदि ये अङ्गरूप से आयेंगे तो वह गुणीभूत-व्यंग्य काव्य कहलायेगा। जब व्यभिचारी भावों की प्रधानतः चर्वणा अथवा व्यंजना होगी, तब उसे भाव ध्वनि काव्य कहते हैं। परन्तु विभाव तथा अनुभाव में चमत्कार होने पर भी उन्हें विभाव ध्वनि तथा अनुभाव ध्वनि नहीं कहते—क्योंकि ये सदैव वाच्यरूप ही होते हैं। रस के व्यंग्य होने पर ये वाच्य स्थानीय होते हैं। इनकी स्थिति व्यंग्य रूप में नहीं होती।

रसध्वनि—

विभावानुभाव तथा सञ्चारीभावों के उचित सन्निवेश से व्यक्त रत्यादि स्थायी भाव की चर्वणा से प्रयुक्त आस्वाद प्रकर्ष को रस कहा जाता है।[3] लोचनकार ने

१ असंलक्ष्यक्रमोद्योतः क्रमेण द्योतितः परः ।
विवक्षिताभिधेयस्य ध्वनेरात्मा द्विधा मतः ॥ ध्व० २।२

२ रसभावतदाभासतत्प्रशान्त्यादिरक्रमः ।
ध्वनेरात्माङ्गिभावेन भासमानो व्यवस्थितः ॥ ध्व० २।३

३ रसध्वनिस्तु स एव योऽत्र मुख्यतया विभावानुभावव्यभिचारिसंयोजनोदितस्थायिप्रति-पत्तिकस्य प्रतिपत्तुः स्थाय्यंशचर्वणाप्रयुक्त एवास्वादप्रकर्षः । लोचन०, पृ० १७६

काव्य में भाव की अपेक्षा रस का ही प्राधान्य स्वीकार किया है और इसे रस निष्पन्द रूप कहा है।[1]

भावध्वनि—

जहाँ कोई व्यभिचारी भाव उद्रिक्तावस्था में पहुँचकर चमत्कारातिशय का प्रयोजक बनता है तब उसे भाव ध्वनि कहते हैं[2], यथा—

तिष्ठेत् कोपवशात् प्रभावपिहिता दीर्घं न सा कुप्यति
स्वर्गायोत्पतिता भवेन्मयि पुनर्भावार्द्रमस्या मनः ।
तां हर्तुं विबुधद्विषोऽपि न च मे शक्ताः पुरोवर्तिनीं
सा चात्यन्तमगोचरं नयनयोर्यातेति कोऽयं विधिः ।

यहाँ विप्रलम्भ शृङ्गार होते हुए भी वितर्क नामक व्यभिचारी भाव का अतिशय आस्वाद होने के कारण भाव व्यंग्य होगा। इस प्रकार तैंतीस व्यभिचारी भावों की प्राधान्येन अभिव्यक्ति होने पर काव्य भाव ध्वनि कहलाएगा।

आचार्य मम्मट कान्ता विषयक रति के अतिरिक्त देव मुनि नृप पुत्रादि विषयक रति को तथा प्राधान्येन व्यंजित व्यभिचारीभाव को भाव मानते हैं।[3] उनके कुछ टीकाकारों ने रति को सभी स्थायीभावों का उपलक्षण मानकर, अपरिपुष्ट सभी स्थायीभावों तथा देवादि विषयक रति को अप्राप्तरसावस्था का उपलक्षण मान लिया है। इस प्रकार उन्होंने ऐसे सभी स्थायीभाव जो कि अपरिपुष्टता के कारण रसावस्था को नहीं प्राप्त हो पाते भावध्वनि कहा है[4] जो सर्वथा दोषपूर्ण है। मम्मट ने भक्ति स्नेह तथा वात्सल्य रसों को भावध्वनि में ही समाहित कर लिया है।

---

१ रसध्वनेरमीभावध्वनिप्रभृतयो निष्यन्दा आस्वादे प्रधाने प्रयोजकमेवमंशं विभज्य पृथग् व्यवस्थाप्यते। लोचन०, पृ० १७६

२ यदा कश्चिदुद्रिक्तावस्थां प्रतिपन्नो व्यभिचारी चमत्कारातिशयप्रयोजको भवति तदा-भावध्वनिः। लो० पृ० १७५।

३ रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः भावः प्रोक्तः ।
नृपपुत्रादि विषया कान्ताविषया तु व्यक्ता शृङ्गारः। का० प्र०, पृ० ११८

४ रत्यादिश्चेद्विभावाद्यैः स्यादृवादिविषयोऽथवा ।
अन्याङ्गभावभाग्वा स्यान्न तदा स्थायिशब्दभाक् ॥ काव्यप्रदीप

रसाभास-भावाभास—

शृङ्गारादि रसों तथा भावों की अनौचित्येन प्रवृत्ति होकर आस्वाद्यमानता होने पर क्रमशः रसाभास तथा भावाभास होता है।[१] जैसे—

> दूराकर्षणमोहमन्त्र इव मे तन्नाम्नि याते श्रुतिं
> चेतः कालकलामपि प्रकुरुते नावस्थितिं तां विना।
> एतैराकुलितस्य विक्षतरतैरङ्गैरनङ्गातुरैः
> सम्पद्येत कथं तदाप्तिसुखमित्येतन्न वेद्मि स्फुटम् ॥

प्रस्तुत पद्य में सीता के प्रति व्यक्त रावण की रति के अनौचित्य पूर्ण होने के कारण रसाभास माना जायगा। इसी प्रकार रावण की सीता के प्रति व्यक्त चिन्तादि व्यभिचारी भावों का अनौचित्येन प्रतीति होने से, भावाभास का प्रसंग माना जायेगा।[२]

आचार्य विश्वनाथ ने शृङ्गारादि रसों के अनौचित्य को अनेक प्रकार से समझाया है। एक स्त्री का एक पुरुष के प्रति प्रेम उचित है, किन्तु यदि वह अनेक पुरुषों के प्रति होगा तो, अनुचित होगा और रसाभास की कोटि में आ जायेगा। इसी प्रकार गुरु को आलम्बन बनाकर हास्य रस का प्रयोग, वीतरागी को आलम्बन बनाकर करुण रस का प्रयोग, वीर पुरुषगत भयानक रस का वर्णन, चाण्डाल विषयक शान्त-रस का प्रयोग, यज्ञीय पशु को आलम्बन बनाकर वीभत्स का प्रयोग अनुचित माना गया है।[३]

रस तथा रसाभास दोनों में समानरूप से आस्वाद्यमानता रहती है। जिस प्रकार अन्धकार में रज्जु भी सर्प सदृश प्रतीत होता है, उसी प्रकार रस-चर्वणा के सदृश ही रसाभास की भी चर्वणा होती है। अतएव दोनों का समानाधिकरण होने से, दोनों ध्वनि-काव्य के अन्तर्गत आते हैं।

भावशान्ति—

जहाँ किसी व्यभिचारी रूप चित्तवृत्ति का उठते ही प्रशम हो जाये, वहाँ भावशान्ति रूप व्यंग्य होता है। चित्तवृत्ति के उठने एवं नाश होने में एक क्षण

१ वही।
२ अनौचित्येन प्रवृत्तौ चित्तवृत्तेरास्वाद्यत्वे स्थायिनि या रसो,-व्यभिचारिण्यां भावः, अनौचित्येन तदाभास रावणस्येवसीतायां रतेः। लोचन०, पृ० १७८
३ सा० द० ३।२६३, ६४, २६५।

लगना चाहिए, अर्थात् उत्पत्तिकाल में ही नाश होना चाहिए अन्यथा इसमें चमत्कार नहीं आयगा। पण्डितराज जगन्नाथ ने, 'उत्पत्तिकालावच्छिन्न भाव के नाश को ही सहृदयहृदयचमत्कार होने से भाव प्रशम' कहा है।[1] क्योंकि यदि उत्पन्न होते ही भाव का नाश न होगा तो वह उत्पन्न और कुछ काल तक स्थिर रहने के कारण 'भाव व्यंग्य' का विषय बन जायगा। ध्वनिवादियों के अतिरिक्त लोचनकार रस की भी प्रशमावस्था उन्होंने उपर्युक्त एकस्मिन् भाव में स्वीकारते हैं।

एकस्मिन् शयने पराङ्मुखतया वीतोत्तरं ताम्यतो
रन्योन्यस्य हृदि स्थितेऽप्यनुनये संरक्षतोर्गौरवम्।
दम्पत्यो शनकैरपाङ्गवलनान्मिश्रीभवच्चक्षुषो
भग्नो मानकलिः सहासरभसव्यावृत्तकण्ठग्रहम्॥

यहाँ लोचनकार 'ईर्ष्याविप्रलम्भात्मक मान' की शान्ति होने से भावशान्ति व्यंग्य के साथ-साथ ईर्ष्या विप्रलम्भ रस की भी प्रशम मानते हैं अर्थात् वे रस की भी प्रशमावस्था को स्वीकारते हैं।[2] किन्तु पण्डितराज जगन्नाथ रस में प्रशमादिअवस्था का सर्वथा अभाव बताते हैं, क्योंकि रस स्थायिभावमूलक होता है। अतः यदि स्थायी में भी उदय प्रशमादि स्थितियाँ मानी जाने लगेंगी तो उसका स्थायित्व ही समाप्त हो जायगा। साथ ही स्थायी और व्यभिचारी में कुछ भी भेद न रह जायगा। दूसरी बात यह कि यदि स्थायी की ये अवस्थाएँ स्वीकार भी कर ली जाएँ तो उसमें कुछ भी चमत्कार नहीं आता। अतएव रसगङ्गाधरकार ने रस की प्रशमावस्था का विचार नहीं किया।[3]

भावोदय —

जहाँ उदयावस्था में ही किसी व्यभिचारी भाव की चर्वणा होती है वहाँ भावोदय व्यंग्य माना जाता है। इसमें सारा चमत्कार भाव की उत्पत्तिकाल में ही होता है। भाव को अधिक समय तक ठहरना नहीं चाहिए।

याते गोत्रविपर्यये श्रुतिपथं शय्यामनुप्राप्तया
निर्ध्यातं परिवर्तनं पुनरपि प्रारब्धुमङ्गीकृतम्।

---

१ भावस्य प्रागुत्तररूपस्य शान्तिर्नाशः। स च उत्पत्त्यवच्छिन्न एव ग्राह्यः तस्यैव सहृदयचमत्कारित्वात्। रस० गं०, पृष्ठ १०२।

२ अत्र चेर्ष्याविप्रलम्भस्य रसस्यापि प्रशम इत्याशयं योजयितुम्। लोचन० । ७९

३ रसस्य तु स्थायिमूलकत्वात्प्रशमादेर सम्भव सम्भवे वा न चमत्कार, इति स न विचार्यते। रस० गं०, पृ० १०६

भूयस्तत्प्रहृत कृत च शिथिलक्षिप्तैकदोर्लेखया ।
तन्व्या न तु परित स्तनभर क्रष्टु प्रियस्योरस । लोचन, पृ० १७५

यहाँ प्रथम तीन पंक्ति में गोत्र-विपर्यय के कारण प्रणय-कोप की आस्वादन व्यंजना हो रहा है। मानिनी नायिका अपने कोप का अन्त तक निर्वाह न कर पायी। इसलिए चतुर्थ पंक्ति में सम्भोग शृङ्गार वर्णित हुआ है। सारा चमत्कार, कोप—भावोदय होने से उसी में है।

भावसंधि —

जहाँ दो व्यभिचारी भावों की संधि की चर्वणा हो, उसे भावसंधि ध्वनि कहते हैं। संधि का अर्थ है तुल्यकालिता। काव्यप्रकाश के टीकाकारों ने दो भाव, चाहे वे विरोधी हों अथवा अविरोधी, उनकी तुल्यरूपता तथा समकाल में आस्वाद को ही भावसंधि कहा है।[१] यथा—

उत्सिक्तस्य तप पराक्रमनिधेरभ्यागमादेकत
सत्सङ्गप्रियता च वीररभसोत्फालश्च मां कर्षत ।
वैदेही परिरम्भ एष च मुहुश्चैतन्यमामीलय
न्नानन्दी हरिचन्दनेन्दुशिशिर स्निग्धो रुणद्ध्यन्यत ॥

यहाँ सीता-आलिंगन के लिए उद्यत राम का, परशुराम के आकस्मिक आगमन पर यह उक्ति है। इसमें हर्ष, आवेग, भावों की संधि का वर्णन है।

पण्डितराज जगन्नाथ वस्तुत अभिभूत न होने वाले, किन्तु एक-दूसरे को अभिभूत करने की क्षमता रखने वाले दो भावों के समानाधिकरण्य को, भाव संधि मानते हैं।[३]

भाव शबलता —

लोचनकार अनेक संचारियों की द्वन्द्वश अभिव्यक्ति को भावशबलता मानते हैं।[४] किन्तु यहाँ भावों का 'द्वन्द्वश प्रतीत' कहने में—किस भाव में अधिक चमत्कार

१ क्वचित्तु व्यभिचारिणां संधिरेव चर्वणास्पदम्। लोचन०, पृष्ठ १७६
२ समकालमेव विरुद्धयोरपि, तुल्य यथोरास्वादो च। बाल बोध, पृष्ठ १२४
३ भावसंधिरन्योन्यानभिभूतयोरन्योन्याभिभावनयोग्ययो सामानाधिकरण्यम्।
—रस० गं०, १०३
४ अत्र हि वितर्कौत्सुक्ये मतिस्मरणे शङ्कादैन्ये धृतिचिन्तने परस्परं बाध्यबाधकभावेन द्वन्द्वशो भवन्ती। पर्यन्ते तु चिन्ताया एव प्रधानता ददती परमास्वादस्थानम्—
—लोचन, पृष्ठ १७७

है किसमें कम—यह प्रश्न उठता है—क्योंकि किसी एक भाव का विशेष चमत्कार का हेतु मानने से तो भावध्वनि हो जाने का भय है। अतएव मम्मट तथा एकावलीकार आदि ध्वनिवादियों ने 'द्वन्द्व' पद को हटाकर अनेक भावों का शबलता मानी है।[1] काव्यप्रकाश के टीकाकारों ने इस ओर स्पष्ट करते हुए कहा है कि—पूर्व-पूर्व भावों को उत्तरोत्तर भावों द्वारा दबा दिए जाने को ही, भावशबलता ध्वनि कहते हैं। किन्तु इससे रसगंगाधरकार सहमत नहीं हैं।[2]

क्वाकार्यं शशलक्ष्मणः क्व च कुलं भूयोऽपि दृश्येत सा
दोषाणां प्रशमाय मे श्रुतमहो कोपेऽपि कान्तं मुखम्।
किं वक्ष्यन्त्यपकल्मषाः कृतधियः स्वप्नेऽपि सा दुर्लभा,
चेतः स्वास्थ्यमुपैहि कः खलु युवा धन्योऽधरं धास्यति॥

यहाँ वितर्क, औत्सुक्य, मति, स्मरण, शङ्का, दैन्य, धृति तथा चिन्तादि भावों की शबलता है।

इसके अतिरिक्त मम्मट ने 'भावस्थिति'[3] नामक भेद भी माना है और इसको सर्वप्रथम उदाहृत कर दिया है। यथा—

जाने कोपपराङ्मुखी प्रियतमा स्वप्नेऽद्य दृष्टा मया
मा मा संस्पृश पाणिनेति रुदती गन्तुं प्रवृत्ता पुरः।
नो यावत् परिरभ्य चाटुशतकैराश्वासयामि प्रियां
भ्रातस्तावदहं शठेन विधिना निद्रादरिद्रीकृतः॥

संलक्ष्यक्रम ध्वनि —

इसमें वाच्य और व्यंग्य का क्रम उसी प्रकार लक्षित होता रहता है जिस प्रकार घण्टा-रणन में अनुरणन का। इसी कारण ध्वनिकार इसे 'अनुस्वानसन्निभ' कहते हैं।[4] आचार्य मम्मट भी इसे 'अनुस्वानाभसंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य' ध्वनि कहते हैं।[5]

---

१ अत्र वितर्कौत्सुक्यमतिस्मरणशङ्कादैन्यधृतिचिन्तानां शबलता
(विमर्शिन्याम—एकावली पृष्ठ १०६)

२ यत्तु काव्यप्रकाशटीकाकारैः 'उत्तरोत्तरेण भावेन पूर्वपूर्वभावोपमर्दः शबलता' इत्यभ्यधायि तन्न॥ रसग०, पृष्ठ १०४

३ भावस्थितिस्तूक्ता उदाहृता च॥ का० प्र०, पृष्ठ १४५

४ क्रमेण प्रतिभात्यात्मा योऽस्यानुस्वानसन्निभः।
शब्दार्थशक्तिमूलत्वात्सोऽपि द्वेधा व्यवस्थितः॥ ध्व० २।२०

५ अनुस्वानाभसंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यस्थितिस्तु यः।
शब्दार्थोभयशक्त्युत्थस्त्रिधा स कथितो ध्वनिः॥ का० प्र०, ४।३७

आनन्दवधन इसके दो भेद मानते हैं—(१) शब्दशक्तिमूलक तथा (२) अर्थशक्तिमूलक ध्वनि। किन्तु मम्मट तथा रसगङ्गाधरकार 'शब्दार्थोभयशक्तिमूल' नामक तृतीय भेद भी मानते हैं।

शब्दशक्तिमूल तथा अर्थशक्तिमूल ध्वनियों में क्रम से शाब्दी व्यञ्जना तथा आर्थी व्यञ्जना चमत्कारकारिणी होती है जो क्रम से शब्दपर्यायसह तथा शब्दपर्यायासह होती है। जहाँ किसी शब्द के स्थान पर उसका पर्याय रख देने पर, व्यङ्ग्य अर्थ अथवा काव्य-सौन्दर्य नष्ट नहीं होता, वहाँ अर्थशक्तिमूलध्वनि तथा जहाँ पर्याय रख देने पर काव्य-सौन्दर्य नष्ट हो जाता है—वहाँ शब्दशक्तिमूल ध्वनि मानी जाती है।

शब्दशक्तिमूल ध्वनि के व्यङ्ग्य के दो भेद हैं—वस्तु तथा अलङ्कार। आनन्दवधन शब्दशक्तिमूल ध्वनि के अन्तर्गत केवल अलङ्कार व्यङ्ग्य ही मानते हैं, वस्तु व्यङ्ग्य नहीं। उनके अनुसार जहाँ वस्तु द्वय का प्रकाशन होता है[1]—वहाँ सर्वत्र शब्द श्लेष ही होता है।

आचार्य आनन्दवधन के कहने का अभिप्राय यह है कि शब्दशक्तिमूलक अलङ्कार ध्वनि में तो न केवल वस्तु अपितु अलङ्कार भी प्रकाशित होता है किन्तु श्लेष में वस्तुमात्र प्रकाशित होता है। 'येनध्वस्त मनोभवेन' में श्लेष इसी कारण है कि यहाँ दूसरा प्रकाश्यमान अर्थ केवल वस्तु रूप है। हाँ यदि इसके साथ अलङ्कार भी होता तो फिर यही ध्वनि का उदाहरण बन जाता।

आचार्य मम्मट वस्तु से वस्तु व्यङ्ग्य की सत्ता को मानते हैं। वे शब्दश्लेष में दो भिन्न शब्दों का श्लिष्टता स्वीकार करते हैं।[2] 'वाच्यभेदेन शब्दभेद' वाले सिद्धान्त के पोषक होने के कारण उनके अनुसार प्रकरणादि के अभाव में अभिधा का नियमन न हो सकने के कारण श्लेष में दोनों ही अर्थ वाच्य होते हैं, जबकि शब्दशक्तिमूल ध्वनि में प्रकरणादिवशात् अभिधा के नियमन के कारण, दूसरा अर्थ व्यंग्य ही होता है वह व्यङ्ग्य वस्तुरूप होता है। अतः इस वस्तुरूप व्यङ्ग्यता के कारण वस्तु ध्वनि मानने में कोई हानि नहीं है। इसका श्लेष से कोई विरोध नहीं है क्योंकि श्लेष में दो

[1] यस्मादलङ्कारो न वस्तुमात्रं यस्मिन् काव्ये शब्दशक्त्या प्रकाशते स शब्दशक्त्युद्भवो ध्वनिरित्यस्माकं विवक्षितम्। वस्तुद्वये च शब्दशक्त्या प्रकाशमाने श्लेषः। ध्व० २५१।

[2] वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद्भाषणस्पृशः।
श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा ॥ का० प्र० ९।११९

दूसरा वस्तुरूप अर्थ वाच्य हो जाता है। आचार्य आनन्दवर्धन अभिधा के नियन्त्रण के विषय में मौन हैं। उनके द्वारा वस्तु में वस्तु व्यंग्य का स्वीकार न करने का कारण सम्भवतः पूर्व आनन्दकारिका का प्रभाव हो रहा होगा। और जहाँ एक अर्थ का अभिधा द्वारा नियमन हो जाने पर दूसरा अर्थ व्यंजित होता है—वह वस्तु ध्वनि काव्य कहलाता है।

अर्थशक्तिमूल ध्वनि उसे कहते हैं जहाँ वाच्य अर्थ के सामर्थ्य से अन्य वस्तु तथा अलङ्कार व्यंग्य हों। व्यंजक अर्थ का दृष्टि से इसके दो भेद हैं—(१) कवि प्रौढोक्तिमात्रनिष्पन्न शरीर[1] अथवा कवि-निबद्ध वक्तृ प्रौढोक्तिनिष्पन्न शरीर (२) स्वतः सम्भवी।[2]

अभिनव गुप्त तथा आचार्य मम्मट ने इसके तीन भेद माने हैं—(१) स्वतः सम्भवी (२) कविप्रौढोक्तिसिद्ध तथा (३) कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिसिद्ध। पुनः इन तीनों के वस्तु तथा अलङ्कार दो भेद होकर ३ × २ = ६ भेद हो जाते हैं। ये छः भेद वस्तु एवं अलङ्कार रूप में व्यंजक होने से ध्वनि के ६ × २ = १२ भेद हो जाते हैं। परन्तु ध्वनिकार, कवि प्रौढोक्ति तथा कविनिबद्धवक्तृ प्रौढोक्ति को एक ही मानने के कारण, आठ ही भेद मानते हैं। शब्दशक्ति मूल ध्वनि के भी पद, वाक्य, प्रबन्ध से प्रकाश्य होने के कारण केवल तीन भेद हुए, अर्थशक्तिमूल के यही आठ भेद पद वाक्य तथा प्रबन्धगत होने से ८ × ३ = २४ + ३ = २७ भेद हुए। असंलक्ष्यक्रम ध्वनि के वर्ण, पद, वाक्य, संघटना तथा प्रबन्ध में प्रकाशित होने के कारण पाँच भेद २७ + ५ = ३२ भेद हुए। अविवक्षितवाच्य ध्वनि के दोनों भेद पद तथा वाक्य से प्रकाशित होने से चार भेद हुए। इस प्रकार शुद्ध ध्वनि के कुल ३२ + ४ = ३६ भेद हुए। किन्तु लोचनकार ने शुद्ध ध्वनि के केवल पैंतीस भेद स्वीकार किए हैं।

आचार्य मम्मट के अनुसार ध्वनि भेद—

मम्मट ने शुद्ध ध्वनि के इक्यावन भेद माने हैं[3] और इस प्रकार लोचनकार से मम्मट ने १६ भेद अधिक बनाए हैं। अविवक्षित वाच्य के भेदों में तो आनन्दवर्धन,

---

१ प्रौढोक्तिमात्रनिष्पन्नशरीरः सम्भवीस्वतः।
अर्थोऽपि द्विविधो ज्ञेयो वस्तुनोऽन्यस्य दीपकः। ध्व०, २।२४

२ स्वतः सम्भवी का अर्थ है कवि की अपनी प्रतिभा की उपज किन्तु बाह्य जगत् में भी जो सम्भव रहता है—स्वतः सम्भवी न केवल भणितिमात्रनिष्पन्नोयावद्व हिरप्यौचित्येन सम्भाव्यमानो। का० प्र०, पृष्ठ १३५

३ भेदास्तदेकपञ्चाशत्—का० प्र० १८५

अभिनवगुप्त तथा मम्मट म समानता है, अन्तर केवल विवक्षितान्य पर वाच्य मे भेदो मे है। मम्मट ने असलक्ष्यक्रम। व्यग्य के [illegible] भेद मान हैं—पद, वाक्य, पदकदेश, रचना, वण तथा प्रबन्ध। जब कि लोचनकार पदैकदेश को पृथक न मानकर केवल पांच भेद ही मानते हैं। मम्मट ने शब्द शक्ति मूल मे वस्तुव्यग्यता मानी है, तथा उसके भी पदप्रकाश्य एव वाक्यप्रकाश्य होने से दो भेद अधिक स्वीकार किय है। इस प्रकार आनन्दवधन तथा लोचनकार की अपेक्षा मम्मट के शब्द शक्ति मूल मे दो भेद अधिक हुए। अथ शक्ति मूल म पदप्रकाश्यता तथा वाक्यप्रकाश्यता के अतिरिक्त प्रबन्धप्रकाश्यता को मानकर मम्मट ने बारह भेदो की वृद्धि की। 'अथशक्तिमूल-असलक्ष्यक्रमव्यग्य' के प्रति 'शब्दार्थोभयशक्तिमूल' नामक एक नया भेद[1] मानकर एक भेद की और वृद्धि की। इस प्रकार मम्मट ने लोचनकार से सोलह भेद अधिक मान कर ध्वनि के ५१ भेदो का निरूपण किया।

गुणीभूत व्यग्य काव्य तथा व्यग्यतत्त्व से युक्त अलकार—

आनन्दवधन ने व्यग्य तथा वाच्य का समप्राधान्य होने पर तथा व्यग्यापेक्षया वाच्य के अधिक चमत्कारी होने पर गुणीभूत व्यग्यकाव्य माना है। इसके अन्तगत उन अलङ्कारो की भी गणना का गयी है जिनमे व्यग्य अथ की यत्किचित् चारुता होती है। परन्तु वह चारुता वाच्य अथ का ही अनुगमन करता हुआ, उस (वाच्य अथ का) ही उत्कृष्ट तथा चमत्कृत करता है। कही पर वाच्य एव व्यग्य की तुल्य प्रधानता होती है। पूवपक्षियों ने कुछ ऐसे अलङ्कारो की चर्चा की है, जिसम व्यग्याथ प्रधान रूपण स्थित रहता है। आनन्दवधन इस प्रकार के अलङ्कारो को ध्वनि काव्य मे समाहित कर लेते हैं। ध्वनिकार ने पूर्वपक्षियो को यह स्पष्ट उत्तर दिया है, कि इन अलङ्कारा म कही स्थित ध्वनि को ही ध्वनि-काव्य नही कहा जा सकता, क्योकि ध्वनि का विषय बहुत विस्तृत है। ध्वनि का क्षेत्र विशाल है और इन अलकारो म प्राप्त ध्वनि उसका केवल अश अथवा एक प्रकार मात्र ही सकती है। ये अलकार समासोक्ति, आक्षेप, अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति, दीपक, अपह्नुति,

१ शब्दार्थोभयभूरेक —काव्यप्रकाश १४६
आचाय मम्मट को शब्दार्थो भय शक्तिमूल ध्वनि को मानने की प्रेरणा ध्वन्यालोक के इस वाक्य से मिली—

शब्दशक्त्या अथशक्त्या शब्दाथशक्त्या वाक्षिप्तोऽपि व्यग्योऽथ कविना पुन यत्र स्वोक्त्या प्रकाशीक्रियते। ध्वन्यालोक २।२१

पर्यायोक्त, संकुर इत्यादि हैं। इन सभी अलंकारों पर विशद मीमांसा कर उनको ध्वनिता का निराकरण कर, उन्हें गुणीभूतव्यङ्ग्य-काव्य के अन्तर्गत रखा। इन अलङ्कारों का समग्र दृष्टि से विवेचन करने के पश्चात् आनन्दवर्धन ने निष्कर्षतः चार प्रकार के स्थल स्वीकार किये हैं—जहाँ पर व्यंग्य का योग होने पर भी ध्वनि का व्यवहार नहीं होता।[1]

(१) जहाँ व्यंग्य का अप्राधान्य हो और वह वाच्य मात्र का अनुगमन करता हो। जैसे – समासोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसादि।

(२) जहाँ व्यंग्य का आभास मात्र (स्फुट रूपेण प्रतीति) हो। जैसे उपमादि।

(३) जहाँ वाच्य तथा व्यंग्य का समप्राधान्य हो। जैसे—सन्देहसङ्कर।

(४) जहाँ व्यंग्य का प्राधान्य स्फुटरूपेण प्रतीत न हो।

इस प्रकार गुणीभूत व्यंग्य काव्य का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। मम्मट के अनुसार गुणीभूत व्यंग्य के आठ भेद हैं—जो इस प्रकार हैं—अगूढ़व्यंग्य, दूसरे का अङ्गभूत व्यंग्य, वाच्यसिद्ध्यङ्ग व्यंग्य, अस्फुट, सन्दिग्धप्राधान्य, तुल्यप्राधान्य, काक्वाक्षिप्त तथा असुन्दरव्यंग्य।[2]

(१) अगूढ़व्यंग्य—जहाँ व्यंग्य की प्रतीति सहृदय से भिन्न सामान्य व्यक्ति को अनायास ही हो जाती है वह अत्यन्त स्पष्ट होने से वाच्य अर्थ के समान हो जाता है। इसलिए अगूढ़ व्यंग्य का प्रधानता न होने से उसको गुणीभूत व्यंग्य माना जाता है। इसी प्रकार जिस व्यंग्य की प्रतीति सहृदयों को भी सरलता से न हो सके वहाँ भी व्यंग्य का चमत्कार न होने से उसे अस्फुट या अगूढ़व्यंग्य को भी गुणीभूत व्यंग्य माना जाता है।

(२) अपराङ्गरूप गुणीभूतव्यंग्य—जहाँ वाक्य का तात्पर्यविषयीभूत प्रधान अर्थ अन्य रसादि या वाच्यादि अर्थ हो और प्रस्तुत व्यंग्य (रसादि अथवा वस्तु अलङ्कारादि रूप) उसका अङ्ग हो, उसको अपराङ्गव्यंग्य रूप गुणीभूतव्यंग्य कहा जाता है।

---

१ व्यंग्यस्य यत्राप्राधान्यं वाच्यमात्रानुयायिनः समासोक्त्यादयस्तत्र वाच्यालङ्कृतयः स्फुटाः। व्यंग्यस्य प्रतिभामात्रे वाच्यार्थानुगमेऽपि वा। न ध्वनिर्यत्र वा तस्य प्राधान्यं न प्रतीयते। ध्वन्यालोक पृष्ठ १०५

२ अगूढमपरस्याङ्गं वाच्यसिद्ध्यङ्गमस्फुटम्।
सन्दिग्धतुल्यप्राधान्ये काक्वाक्षिप्तमसुन्दरम्॥
व्यंग्यमेवं गुणीभूतव्यंग्यस्याष्टौ भिदाः स्मृताः॥ काव्यप्रकाश पृष्ठ १९६

इस प्रकार के आठ स्थल मम्मट ने माने हैं—जहाँ रस भाव का अङ्ग बनता है, कहीं भाव दूसरे भाव का अग बनता है, कहीं शृङ्गाराभास, भावाभास किसी भाव का अग, कही भावोदय, भावशान्ति, भावशबलता, भावसन्धि इत्यादि भाव का अग बनता है। इसी प्रकार जहाँ संलक्ष्यक्रम व्यग्य अलङ्कार व्यग्य तथा वस्तु व्यग्य वाच्य का अग बनता हैं वहाँ भी मम्मट अपराङ्गव्यग्यता स्वीकार करते हैं। आचार्य आनन्दवर्धन भी ऐसे स्थलो मे गुणीभूत व्यग्यता ही स्वीकार करते हैं।

(३) वाच्यसिद्ध्यङ्गव्यग्य—जहाँ वाच्य सापेक्ष होता है और उसे अपनी सिद्धि के लिए दूसरे अर्थ (व्यग्यार्थ) की अपेक्षा रहती है, वहाँ व्यग्यार्थ वाच्यार्थ की सिद्धि का अग बनने के कारण गुणीभूततया गौण हो जाता है। वाच्याङ्गव्यग्य (अपराङ्ग) तथा वाच्यसिद्ध्यङ्गव्यग्य मे वस्तुत यही भेद है। वाच्याङ्गव्यग्य मे वाच्य निरपेक्ष होता है अर्थात् उसे अपनी सिद्धि के लिए किसी अन्य अर्थ की आवश्यकता नही पड़ती और वाच्यसिद्ध्यङ्गव्यग्य सापेक्ष होता है और उसे अन्य अर्थ की आवश्यकता पड़ती है।

(४) अस्फुटव्यग्य—जहाँ व्यग्यार्थ को समझने मे सहृदयो को प्रयास करना पड़ता है, वहाँ अस्फुट व्यग्य होता है।

(५) सन्दिग्ध प्राधान्य—जहाँ वाच्य और व्यग्य के प्राधान्याप्राधान्य की स्थिति सदिग्ध होती है, वहाँ सन्दिग्धप्राधान्यव्यग्य होता है।

(६) काक्वाक्षिप्त—ध्वनिकार ने जहाँ काकु के द्वारा अर्थान्तर की प्राप्ति होने पर व्यग्य का गुणीभाव रहे, वहाँ गुणीभूतव्यग्य का विषय माना है।[१] इस परिभाषा से यह अर्थ भी निकाला जा सकता है, कि काकु के स्थल मे कदाचित् व्यग्य का गुणीभूत न होकर प्राधान्य भी हो सकता है, किन्तु लोचनकार काकु के प्रयोग मे सर्वत्र व्यग्य का गुणाभाव ही मानते हैं। उनके अनुसार उसका प्राधान्य कदापि नहीं हो सकता।[२] आचार्य मम्मट भी काकु की सहायता से निकलने वाले प्रधान व्यग्य के स्थल मे ध्वनि तथा अप्रधान व्यग्य के स्थल मे काक्वाक्षिप्तगुणीभूत व्यग्य का व्यवहार करते है।[३]

१ अर्थान्तरगति काक्वा या चषा परिदृश्यते।
सा व्यग्यस्य गुणीभावे प्रकारमिममाश्रिता॥ ध्वन्यालोक ३।३८

२ काकुयोजनायां सर्वत्रगुणीभूतव्यग्यतैव॥ लोचनप्रकाश ४८०

३ जैसे मथ्नामि कौरवशत समरे न कोपाद्
दुःशासनस्य रुधिर न पिबाम्युरस्त।
सञ्चूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू
सधि करोतु भवतां नृपति पणेन॥

इसके अतिरिक्त जहाँ वाच्यार्थ के पर्यवसित हो जाने पर व्यंग्यार्थ की प्रतीति विलम्ब से होती है, परन्तु स्वतन्त्र रूप से होती है, वहाँ ध्वनि का स्थल माना जायगा।[1]

(७) तुल्यप्राधान्य—जहाँ वाच्य और व्यंग्य की समान रूप से प्रधानता होती है, वहाँ तुल्य प्राधान्य व्यंग्य होता है।

(८) असुन्दरव्यंग्य—जहाँ वाच्य में अधिक सुन्दरता हो और तदपेक्षया व्यंग्य में कम सुन्दरता हो वहाँ असुन्दर व्यंग्य होता है। ऐसे स्थलों पर सारा चमत्कार व्यंग्य का अपेक्षा वाच्य में ही होता है।

---

१ जैसे—"गुरुः खेद खिन्ने मयि भजति नाद्यापि कुरुषु"।

यहाँ गुरु जी 'मुझपर ही क्रोध करते हैं कुरुओं पर नहीं' इस वाक्यार्थ को विश्रान्ति हो जाने पर 'मयि न योग्य खेद कुरुषु तु योग्य' इस अर्थ की प्रतीति विलम्ब से किन्तु स्वतन्त्र रूपेण होने से ध्वनिकाव्य ही माना जायेगा। अत्र मयि न योग्य खेद कुरुषु तु योग्य इति काक्वा प्रकाशते। न च वाच्यसिद्ध्यङ्गमत्र काकुरिति गुणीभूतव्यङ्ग्यत्वं शङ्क्यम्। प्रश्नमात्रेणापि काकोर्विश्रान्ते। काव्यप्रकाश पृष्ठ ८८।८९

द्वितीय अध्याय

कालिदास और संस्कृत काव्य-परम्परा

भारतीय संस्कृत वाङ्मय का आदिस्रोत जिस सांस्कृतिक आयाम में विकसित हुआ, उसे इतिहासकारों ने आश्रम संस्कृति की संज्ञा दी। आर्थिक प्रगति की दृष्टि से वह कृषि युग था जिसमें ग्रामीण संस्कृति विकसित हुई तथा राजनैतिक दृष्टिकोण से वह राजन्य युग था जो कुल संस्कृत का परिचायक है। वैदिक युग के धर्म साहित्य एवं कला में सादगी उदात्ता एवं आध्यात्मिकता परिव्याप्त है। अनेक स्थलों में काव्यमयी उक्तियाँ बिखरी पड़ी हैं किन्तु विशुद्ध काव्य के विकास के लिए अभी उर्वर भूमि प्रस्तुत नहीं हुई थी।

लौकिक संस्कृत साहित्य का जन्म भले ही तमसा के निर्जन आश्रम में हुआ हो किन्तु उसका विकास संस्कृति के उस परिवेश में हुआ, जिसे हम आर्थिक दृष्टिकोण से कृषि एवं हस्तकला युग राजनैतिक दृष्टिकोण से सम्राटों का युग सामाजिक दृष्टिकोण से चतुर्वर्णव्यवस्था के विकास का युग एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विविध दार्शनिक धाराओं के विकास का युग कह सकते हैं। संस्कृति की इस पृष्ठभूमि में संस्कृत का जो साहित्य निर्मित हुआ—रामायण-महाभारत उसके आदि प्रतीक हैं। यह साहित्य एक ओर सम्राटों के राजकीय वैभव में तथा दूसरी ओर आश्रमों की सादगी में विकसित हुआ। वैदिक संस्कृत का यह ग्रामीण भाव संस्कृत साहित्य तक आते आते नागरिक स्वरूप में परिवर्तित हो गया। संस्कृत साहित्य जिस युग में लिखा गया उसी समय से भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ उपलब्धियों का आरम्भ होने लगता है। इसीलिए यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि 'भारतीय संस्कृति में जो सर्वश्रेष्ठ है उसका अभिव्यक्ति संस्कृत साहित्य में हुई है और संस्कृत साहित्य में जो सर्वश्रेष्ठ है, उसकी अभिव्यक्ति कवि शिरोमणि कालिदास में हुई है।'

इतिहास की व्यापकता भावों की उदात्तता विशदता, गम्भीरता तथा शिल्पविधि का आचार्यत्व सभी दृष्टिकोण से कालिदास संस्कृत काव्यकला के सुमेरु मान जा सकते हैं। कालिदास को काव्य-प्रणयन की प्रेरणा किन कवियों एवं किन काव्य-पद्धतियों से मिली, इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक अधिक नहीं कहा जा सकता

क्योंकि कालिदास का युग अभी विवादास्पद है। किन्तु यह निश्चित है कि कवि कालिदास के प्रेरणास्रोत राष्ट्रीय महाकाव्य रामायण-महाभारत में निहित थे। आचार्य पाणिनि को उनका पूर्वकर्त्ता कहा जा सकता है। सांस्कृतिक वातावरण, भाव भाषा तथा रचना विधान प्रत्येक क्षेत्र में कालिदास ने इन ग्रन्थों से प्रेरणा प्राप्त की। कालिदास की काव्य में ध्वनितत्त्व के विश्लेषण के पूर्व उनके युग, उनके व्यक्तित्व, उनकी काव्य कृतियों तथा रचना विधान वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाल देना उपयोगी होगा।

आविर्भाव काल—

महाकवि कालिदास का आविर्भाव किस युग विशेष में हुआ—इस विषय में कुछ निश्चित रूप से कह सकना बड़ा दुष्कर है। उनका जन्म कब और कहाँ हुआ किन पारिवारिक सामाजिक एवं राजनैतिक स्थितियों में उनका जीवन यापन हुआ किन सम्पर्कों किन यात प्रतिघातों ने उनके विचारों भावनाओं के निर्माण में योगदान दिया—इत्यादि प्रश्नों का उत्तर आज भी एक कठिन समस्यामूलक बना हुआ है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उन्होंने किसी भी ग्रन्थ में अपने विषय में कुछ भी निर्देश नहीं दिया है।

उनके स्थितिकाल के विषय में जितने आलोचक हैं उतने ही मत उतने ही विचार हैं। महाकवि के समय का आकलन ई० की प्रथम शताब्दि से लेकर ११वीं शताब्दि तक किया जाता है। अधिकांशतः विद्वान् उनका सम्बन्ध विक्रमादित्य के काल से जोड़ते हैं। उनके युग विषय में प्रचलित सभी मतों की समीक्षा करने पर मुख्यतः दो मत सामने आते हैं। प्रथम मत उन्हें प्रथम शताब्दि ई० पू० घोषित करता है। इस मत के समर्थक सर्वश्री सी० वी० वैद्य, के० सा० महोपाध्याय वरदाचारी, चन्द्रशेखर पाँडे प्रभृति विद्वान हैं।

दूसरे मत के समर्थक श्री आर० डी० भण्डारकर, कीथ स्मिथ, डा० भगवत-शरण उपाध्याय, डा० भोलाशङ्कर व्यास मैक्डानल तथा वासुदेव विष्णु मिराशी हैं। ये सभी विद्वान् उनको अश्वघोष का परवर्ती मानते हैं। इसका आधार प्राकृत भाषा तथा शैली आदि हैं।

भाषा-वैज्ञानिक प्रमाण नाटकीय प्राकृत के विशेष संदर्भ में—

कवि द्वारा प्रयुक्त भाषा के ध्वन्यात्मक गठन प्रकृति प्रत्यय विन्यास, वाक्य-संगठन तथा शब्दावली के द्वारा भी कवि के आविर्भावकाल की ओर संकेत हो सकता है। कालिदास की काव्य-भाषा (नाम, प्रकृति स्वरूप भाषिक गठन, शब्द-

स्रोत, शैली) उनके आविर्भाव काल की किस शताब्दी की ओर सकेतित करती है, गम्भीरता से अभी इसकी इस दृष्टि से परीक्षा नही हुई है। प्रो० कीथ[1] आदि पाश्चात्य विद्वानो तथा कुछ प्राच्य विद्वानो ने भी कालिदास मे प्राकृत-प्रयोग के आधार पर उन्हें गुप्तकाल का सिद्ध किया है। किन्तु उससे भी अधिक हलके दृष्टि-कोण से, उस मत को यह कह कर काट दिया गया कि उनकी प्राकृत 'कृत्रिम प्राकृत' है, वैयाकरण नियमो के अनुसार कृत्रिम रूप मे नाट्यकारो द्वारा निर्मित की गयी। इस प्रकार भाषा विज्ञान के सिद्धान्तो के अनुसार तथा भारतीय आर्यभाषा के विकास क्रम को दृष्टिगत रखते हुए गम्भीरतापूर्वक विचार नही किया गया।

कालिदास की काव्यभाषा का विश्लेषण करने के पूर्व कुछ भाषा वैज्ञानिक सामान्य सिद्धान्तो का विवेचन अपेक्षित है। किसी विशिष्ट युग में, किसी विशिष्ट देश मे, किसी विशिष्ट समाज मे, किसी विशिष्ट साहित्यिक जीवित भाषा के सामान्यतया तीन रूप मिलते हैं—

(१) सामान्य रूप
(२) मध्यम स्तर का रूप तथा
(३) साहित्यिक रूप

भाषा का साहित्यिक रूप उस भाषा के सामान्य तथा मध्यम स्तर के रूप का ही निखरा हुआ परिपक्व स्वरूप है। जब तक साहित्यिक रूप को सामान्य तथा मध्य स्तर के लोग सहज रूप से समझ लेते हैं जब तक उस भाषा को समझने के लिए पाठशाले मे शिक्षा लेने की आवश्यकता नहीं पडती तब तक साहित्यिक भाषा को भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से जीवित भाषा कहा जाता है। जब सामान्य तथा मध्य स्तर के लोग किसी भी साहित्यिक भाषा को बिना पाठशाले में उस भाषा की शिक्षा लिए समझने मे असमर्थ होते हैं तब यह कहा जाता है कि, वह साहित्यिक भाषा अब रूढिबद्ध होकर केवल साहित्यिकारो विद्वानो तथा वैयाकरणो की भाषा रह गई है। भाषा वैज्ञानिक रूप से ऐसी साहित्यिक भाषा को मृतप्राय कहा जाता है। जब एक भाषा सामान्य तथा मध्यमस्तर के लोगो के लिए सहज ही बोधगम्य नही रह जाती, तब उस सामान्य लोक के लिए मृतप्राय उस साहित्यिक भाषा के स्थान मे उस युग मे प्रचलित भाषा के सामान्य और मध्यम स्तर के रूप मे एक नयी साहित्यिक

---

१ प्रो० कीथ—'कालिदास के नाटकों की प्राकृत अश्वघोष तथा भास के नाटकों की प्राकृत से निश्चय ही अर्वाचीन है इसे गुप्तकाल के पूर्ववर्ती नहीं स्वीकार किया जा सकता। प्रो० कीथ, हिस्टी आव संस्कृत लिटरेचर, पृष्ट ८०

क्योंकि कालिदास का युग अभी विवादास्पद है। किन्तु यह निश्चित है कि कवि कालिदास के प्रेरणास्रोत राष्ट्रीय महाकाव्य रामायण-महाभारत में निहित थे। आचार्य पाणिनि को उनका पूर्ववर्ती कहा जा सकता है। सांस्कृतिक वातावरण, भाव भाषा तथा रचना विधान प्रत्येक क्षेत्र में कालिदास ने इन ग्रन्थों से प्रेरणा प्राप्त की। कालिदास की काव्य में ध्वनितत्व के विश्लेषण के पूर्व उनके युग, उनके व्यक्तित्व उनकी काव्य कृतियों तथा रचना विधान वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाल देना उपयोगी होगा।

आविर्भाव काल—

महाकवि कालिदास का आविर्भाव किस युग विशेष में हुआ—इस विषय में कुछ निश्चित रूप से कह सकना बड़ा दुष्कर है। उनका जन्म कब और कहाँ हुआ किन पारिवारिक सामाजिक एवं राजनैतिक स्थितियों में उनका जीवन यापन हुआ किन संघर्षों किन घात-प्रतिघातों ने उनके विचारों-भावनाओं के निर्माण में योगदान किया—इत्यादि प्रश्नों का उत्तर आज भी एक कठिन समस्यामूलक बना हुआ है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उन्होंने किसी भी ग्रन्थ में अपने विषय में कुछ भी निर्देश नहीं दिया है।

उनके स्थितिकाल के विषय में जितने आलोचक हैं उतने ही मत उतने ही विचार हैं। महाकवि के समय का आकलन ई० की प्रथम शताब्दि से लेकर ११वीं शताब्दि तक किया जाता है। अधिकांशतः विद्वान् उनका सम्बन्ध विक्रमादित्य के काल से जोड़ते हैं। उनके युग विषय में प्रचलित सभी मतों की समीक्षा करने पर मुख्यतः दो मत सामने आते हैं। प्रथम मत उन्हें प्रथम शताब्दि ई० पू० स्थापित करता है। इस मत के समर्थक सर्वश्री सी० वी० वैद्य, के० सी० महोपाध्याय वरदाचारी, चन्द्रशेखर पांडे प्रभृति विद्वान हैं।

दूसरे मत के समर्थक श्री आर० डी० भण्डारकर, कीथ स्मिथ, डा० भगवतशरण उपाध्याय डा० भोलाशङ्कर व्यास मैकडानल तथा वासुदेव विष्णु मिराशी हैं। ये सभी विद्वान् उनको अश्वघोष का परवर्ती मानते हैं। इसका आधार प्राकृत भाषा तथा शैली आदि हैं।

भाषा-वैज्ञानिक प्रमाण-नाटकीय प्राकृत के विशेष सन्दर्भ में—

कवि द्वारा प्रयुक्त भाषा के ध्वन्यात्मक गठन, प्रकृति प्रत्यय-विन्यास वाक्य-संगठन तथा शब्दावली के द्वारा भी कवि के आविर्भावकाल का ओर संकेत हो सकता है। कालिदास का काव्य भाषा (नाम प्रकृति स्वरूप मासिक गठन, शब्द-

स्रोत, शैली) उनके आविर्भाव काल की किस शताब्दी की ओर सकेतित करती है, गम्भीरता से अभी इसकी इस दृष्टि से परीक्षा नहीं हुई है। प्रो० कीथ[1] आदि पाश्चात्य विद्वानों तथा कुछ प्राच्य विद्वानों ने भी कालिदास में प्राकृत प्रयोग के आधार पर उन्हे गुप्तकाल का सिद्ध किया है। किन्तु उससे भी अधिक हलके दृष्टि-कोण से उस मत को यह कह कर काट दिया गया कि उनकी प्राकृत 'कृत्रिम प्राकृत' है वैयाकरण नियमों के अनुसार कृत्रिम रूप में नाटककारों द्वारा निर्मित की गयी। इस प्रकार भाषा विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार तथा भारतीय आर्यभाषा के विकास क्रम को दृष्टिगत रखते हुए गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया गया।

कालिदास की काव्यभाषा का विश्लेषण करने के पूर्व कुछ भाषा वैज्ञानिक सामान्य सिद्धान्तों का विवेचन अपेक्षित है। किसी विशिष्ट युग में, किसी विशिष्ट देश में, किसी विशिष्ट समाज में, किसी विशिष्ट साहित्यिक जीवित भाषा के सामान्यतया तीन रूप मिलते हैं—

(१) सामान्य रूप
(२) मध्यम स्तर का रूप तथा
(३) साहित्यिक रूप

भाषा का साहित्यिक रूप उस भाषा के सामान्य तथा मध्यम स्तर के रूप का ही निखरा हुआ परिपक्व स्वरूप है। जब तक साहित्यिक रूप को सामान्य तथा मध्य स्तर के लोग सहज रूप से समझ लेते हैं जब तक उस भाषा को समझने के लिए पाठशाला में शिक्षा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती तब तक साहित्यिक भाषा को भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से जीवित भाषा कहा जाता है। जब सामान्य तथा मध्य स्तर के लोग किसी भी साहित्यिक भाषा को बिना पाठशाला में उस भाषा की शिक्षा लिए समझने में असमर्थ होने हैं तब यह कहा जाता है कि, वह साहित्यिक भाषा अब रूढ़िबद्ध होकर केवल साहित्यिकारों विद्वानों तथा वैयाकरणों की भाषा रह गई है। भाषा वैज्ञानिक रूप से ऐसी साहित्यिक भाषा को मृतप्राय कहा जाता है। जब एक भाषा सामान्य तथा मध्यमस्तर के लोगों के लिए सहज ही बोधगम्य नहीं रह जाती तब उस सामान्य वर्ग के लिए मृतप्राय उस साहित्यिक भाषा के स्थान में उस युग में प्रचलित भाषा के सामान्य और मध्यम स्तर के रूप में एक नयी साहित्यिक

---

१ प्रो० कीथ—'कालिदास के नाटकों की प्राकृत अश्वघोष तथा भास के नाटकों की प्राकृत से निश्चय ही अर्वाचीन है इसे गुप्तकाल के पूर्ववर्ती नहीं स्वीकार किया जा सकता। प्रो० कीथ हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर पृष्ठ ८०

भाषा का जन्म होता है। अधिकांशतः किसी भी साहित्यिक भाषा के व्याकरण रचना का प्रश्न तभी उठता है, जब वह धीरे-धीरे जन सामान्य या मध्यम श्रेणी के लिए अबाध होने लगती है। ऐसी स्थिति में शुद्धतावादी वैय्याकरण साहित्यिक भाषा की शुद्धता, एकरूपता, तथा स्थिरता की रक्षा के लिए साहित्यिक भाषा के व्याकरण का निर्माण करता है। यदा कदा जन सामान्य और मध्यम स्तर की भाषा की हीनता और साहित्यिक भाषा की श्रेष्ठता दिखाने के लिए साहित्यिक भाषा और सामान्य भाषा के तुलनात्मक उदाहरण भी दिए जाते हैं। इस प्रकार साहित्यिक भाषा के निर्माण के बाद ही उसके व्याकरण की रचना होती है। इसी साहित्यिक भाषा के व्याकरण के आधार पर कृत्रिम मानक भाषा का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भाषा पहले सामान्य रूप फिर मध्यम स्तर का रूप और तत्पश्चात् साहित्यिक रूप धारण करती है। इसी साहित्यिक रूप के व्याकरणिक ढाँचे के आधार पर कृत्रिम साहित्यिक भाषा का निर्माण भी सम्भव होता है। किन्तु बिना साहित्यिक भाषा समुचित विकास के उसका व्याकरण निर्मित नहीं किया जाता और बिना व्याकरण के कृत्रिम भाषा का निर्माण असम्भव है।

इससे निश्चयतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि साहित्यिक भाषा के वास्तविक विकास के बिना उसके आदर्श पर कृत्रिम भाषा का निर्माण भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से असम्भाव्य (linguistically impossible) है।

सामान्य लोक भाषा, साहित्यिक भाषा और कृत्रिम भाषा के विकास सम्बन्धी उपर्युक्त सिद्धान्तों को दृष्टिगत रखते हुए ही कालिदास का नाटकीय प्राकृत का युग निश्चित करना चाहिए। भारतीय आर्य भाषा का विकास की दृष्टि से निम्नलिखित सोपानों में वर्गीकृत किया जाता है —

(१) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा १५०० ई० पूर्व से ५०० ई० पूर्व

(२) मध्यकालीन आर्य-भाषा ५०० ई० पूर्व से १००० ई० तक

(क) पाली युग—(५०० ई० पूर्व से १ ई० तक)

(ख) प्राकृत युग—(१ ई० से ५०० ई० तक)

(ग) अपभ्रंश युग—(५०० ई० से १००० ई० तक)

(३) आधुनिक आर्य भाषाएँ —१००० ई० से आज तक

¹ भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से एक भाषा का युग तभी तक माना जाता है जब तक वह सामान्य लोकभाषा के रूप में अथवा जीवित भाषा के रूप में लोगों द्वारा प्रयुक्त होती है, उसमें साहित्यिक रचना हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है।

ज्यो ही सामान्य लोक भाषा के रूप मे जनता द्वारा किसी भाषा का प्रयोग बन्द हो जाता है, त्यो ही उस भाषा का युग समाप्त हो जाता है। भले ही उस भाषा मे साहित्यिक रचना शताब्दियो बाद तक होती रहे।

सामान्य लोक भाषा, साहित्यिक भाषा तथा कृत्रिम भाषा का निर्माण, विकास तथा अवसान की प्रवृति को दृष्टिगत रखते हुए, हम कालिदास का नाटकीय प्राकृत के विशेष सन्दर्भ मे कालिदास के आविर्भाव काल की ओर संकेत करने का प्रयास करेंगे। भारतीय संस्कृत नाट्य शास्त्र परम्परा के अनुरूप, कालिदास ने अपने नाटकों के उच्चस्तरीय पुरुष पात्रो से संस्कृत मे तथा समस्त स्त्रीपात्रो एवं विदूषक से शौरसेनी प्राकृत, धीवर आदि अति निम्नस्तरीय पात्रो से मागधी प्राकृत तथा गीतो मे महाराष्ट्री का प्रयोग कराया है। विक्रमोवशीय' के चतुर्थ अंक मे राजा पुरुरवा के द्वारा अर्धविक्षिप्तावस्था मे अपभ्रंश का एक दोहा भी कहलाया गया है। इस प्रकार कालिदास के नाटको मे संस्कृत, प्राकृत, और अपभ्रंश, तीन भारतीय भाषाओ का प्रयोग मिलता है। संस्कृत ५०० ई० पूर्व से ही सामान्य लोक भाषा नही रह गयी थी। अतएव कालिदास का काल चाहे ईसा पूर्व प्रथम शती (शुङ्गकालीन) माना जाए चाहे गुप्तकाल मे चौथी शताब्दी ई० पूर्व माना जाए—दोनो युगो मे संस्कृत केवल साहित्यिको, विद्वानो तथा वैयाकरणो की भाषा रह गयी थी। अतएव संस्कृत के गठन के आधार पर कालिदास के आविर्भाव काल का निर्णय करने के लिए संस्कृत से विशेष सहायता नहीं मिल सकती है।

ई० पूर्व ५०० ई० से १ ई० तक भारतीय आर्यभाषा के विकास क्रम मे पाली युग था। पाली युग मे संस्कृत और पाली दो साहित्यिक भाषाएँ थी। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी मे साहित्यिक प्राकृते अपने आदिम अवस्था मे जनभाषा या लोकभाषा के रूप मे भले ही यत्र तत्र प्रयुक्त हो रही हो, किन्तु उन प्रादेशिक जन प्राकृतो मे ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी मे इतना निखार, परिमार्जन नही था कि एक परिनिष्ठित भाषा बनकर एक साहित्यिक भाषा के रूप मे उनमे उच्च स्तर का साहित्यिक सर्जना की जा सकती था। साहित्यिक प्राकृत-शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी, पैशाची आदि का युग ईसा की प्रथम शताब्दी से ही माना जाता है। अतएव ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी मे शौरसेनी, महाराष्ट्री मागधी उच्च साहित्यिक रचना की कल्पना ही नही की जा सकती है। लोकभाषा या जनभाषा के रूप मे एक-आध प्राकृत वाक्यो का प्रवेश हो सकता है, किन्तु परिनिष्ठित साहित्यिक प्राकृतो मे साहित्य-सृजन ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी मे भारतीय भाषाओं के विकास क्रम को देखते हुए असम्भव है। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी तक जब मानक साहित्यिक प्राकृतो का पूर्ण–

स्वरूप विकास ही नहीं हुआ था, तब साहित्यिक प्राकृतों के व्याकरण निर्माण की बात ही नहीं हो सकती है और फिर आरम्भ प्राकृत के व्याकरण के अभाव में प्राकृत के व्याकरणिक नियमों के आधार पर संस्कृत में रूपान्तर करके कृत्रिम प्राकृत का निर्माण तो कोरी कल्पना है। भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्तों का जो क, ख, ग भी जानता है वह भी ऐसी कोरी कल्पना का समर्थन नहीं कर सकता कि ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में कालिदास ने प्राकृत के व्याकरण के आधार पर संस्कृत से रूपान्तर करके, प्राकृत का निर्माण किया था। प्रसिद्ध कहावत है कि असल की ही नकल हो सकती है। अब जब असल का (अर्थात् साहित्यिक प्राकृत) ही अस्तित्व नहीं, तो नकल या कृत्रिम प्राकृत की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

भास के अनेक नाटकों में सभी पात्रों (गान्धारी, माता, हिडिम्बा) में शौरसेनी में संवाद तथा ब्राह्मणेतर क्षत्रियेतर आभीर पात्रों यथा—नन्दगोप वृद्ध-गोपालक में[1] मागधी में संवाद कराया गया है। संस्कृत नाटकों में सभी पात्रों के गानों या पद्यों की भाषा महाराष्ट्री है। किन्तु भास के नाटकों में नन्दगोप आदि के संवाद में भी गद्य के अतिरिक्त पद्य या श्लोक मिलते भी हैं महाराष्ट्री में न होकर मागधी[2] में हैं।

यथा—दुद्दिण विणट्ठ जोह्णा-रत्ती वित्तूई णिमीलिदाआरा ।
ण्पा उप्पसुत्ता णीलणिवशणा जहा गोपी ॥

मागधी में पद्य रचना तीन कारणों से हो सकती है। प्रथमतः स्त्री तथा निम्न पात्रों के गीतों में महाराष्ट्री के प्रयोग की संस्कृत नाटकों की परम्परा तब तक सम्भव है, सुदृढ़ न हुई हो। दूसरे यह भी सम्भव है कि तब तक प्राकृत युग की काव्य भाषा महाराष्ट्री का इतना समुचित विकास भी न हुआ हो कि उसमें काव्य या गीत सर्जना हो सके। यह भी एक सम्भावना हो सकती है कि भास की दृष्टि में मागधी इतनी हेय नहीं थी जितनी कि बाद के संस्कृत के नाटककारों की दृष्टि में हो गई क्योंकि धीरे-धीरे बौद्धधर्म तथा बौद्धधर्म से सम्बन्धित भाषा प्रश्न सब के प्रति एक हेय दृष्टि विकसित हो गई थी। भास तो नन्दगोप गोपालक आदि पात्रों के मुख से मागधी बुलवाते हैं जबकि कालिदास धीवर जैसे निम्नपात्रों से मागधी में

---

१ भास-दूत—'बालचरितम्' ।

२ भास दूत—'बालचरितम्' । प्रथम अङ्क
संस्कृत—दुर्दिन विनष्ट ज्योत्स्ना रात्रि महत निमीलिताकारा
समाप्तत प्रसुप्ता नील निवसना यथा गोपी ॥

सवाद कराते हैं। कालिदास के नाटको म, सभी पात्रों के मुख से प्रौढ़ शौरसेनी म सम्वाद कराया गया हैं और महाराष्ट्री के गीत भी मिलते है। यही नहीं 'विक्रमोव-शाय' म तो एक अपभ्रश[1] का दोहा भी मिलता है—

> मई जाणिअ मिअलोअणी णिसअर कोई हरेइ।
> जावणु णावतलिसामल धराहर वरिसेई॥

उपर्युक्त भाषा वैज्ञानिक तथ्यो की गम्भीरता पूवक विवचन करने से यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि उत्कृष्ट साहित्यिक शौरसेनी, महाराष्ट्री तथा सामान्य भाषा या लोकभाषा के रूप म अपभ्रश की रचना करन वाल महाकवि कालिदास का आविर्भाव ईसा पूव प्रथम शताब्दी में असम्भव है। यदि हम यह मान लें कि कालिदास का आविर्भाव ईसा पूव प्रथम शताब्दी म हुआ था और यह भी मान लें कि उत्कृष्ट साहित्यिक प्राकृता का तथा लोकभाषा के रूप म अपभ्रश का विकास ईसा पूव प्रथम शताब्दी म हो गया था तो समस्त भारतीय भाषाओ (सस्कृत, पाली, प्राकृत अपभ्रश मराठी हिन्दी, गुजराती, बगाली) के उद्भव काल को ५०० ई० पूव ले जाना पडेगा। ऐसा मानने से पाली युग १० ० ई० पूव से ५०० ई० पूव तक चला जायेगा जो ऐतिहासिक दृष्टि से असम्भव है क्योंकि गौतम बुद्ध से पूव (अर्थात् ५०० ई० पूव स पहले पाली युग माना नहीं जा सकता है। अतएव भारतीय आर्य भाषाओ के विकास सोपान में इतना परिवतन अनैतिहासिक तथा अवैज्ञानिक है। निष्कर्षत हमें यह मानना हीं पडेगा कि कालिदास की नाटकीय प्राकृत के आधार पर महाकवि का आविर्भाव काल ईसा की प्रथम शताब्दी मे मानना असम्भव ही है। यदि कालिदास के नाटको की रचना ईसा पूव एक शताब्दी म हुई होती और सभी पात्रो अथवा निम्न श्रेणी के पात्रो के लिए लोकभाषा या जनभाषा का प्रयोग किया गया होता तो उन नाटको म प्रथम प्राकृत अथवा पाली का प्रभाव अवश्य ही पडता क्योंकि ईसा पूव प्रथम शताब्दी म प्रथम प्राकृत अथवा पाली लोकभाषा और साहित्यिक-भाषा, दोनो रूपो मे प्रतिष्ठित थी। कालिदास के नाटको म पाली का अभाव भी यह सूचित करता है कि पाली युग म कालिदास के नाटको की रचना नहीं हुई थी। उन नाटको की रचना उस समय म हुई होगी जिस समय प्राकृत लोकभाषा तथा साहित्यिक-भाषा दोनो रूपो मे प्रतिष्ठित थी। यही कारण है कि सस्कृत

---

[1] सस्कृत छाया – मया ज्ञात मृगलोचनां निशाचर: कोऽपि हरति।
यावत् नव तडिच्छ्यामलो धराधरो वर्षति॥

विक्र० म० का० [illegible] ० २१६

यह सत्य है कि अभिनेता कभी कभी निश्चित साहित्यिक भाषा की अवहेलना करके जानते अथवा अनजाने साहित्यिक भाषा में अपनी जीवित भाषा के कुछ शब्द और मुहावरे मिला देते हैं। अभिनेताओं द्वारा भाषा को आधुनिक रूप देने की सम्भावना को दृष्टिगत रखते हुए यह सिद्धान्त भी द्रष्टव्य है कि अभिनेता भाषा के केवल उसी रूप का समावेश करता है जो जीवित भाषा होती है, जिसे अभिनेता और दर्शक दोनों सहज रूप से बोल सकते हैं और समझ सकते हैं।

कालिदास के नाटकों के सन्दर्भ में उपर्युक्त कथन प्रथमतः लागू नहीं होता क्योंकि उनके नाटकों के प्राचीन से प्राचीन पाठों में भी प्राकृत अपभ्रंश का यही जातिक स्वरूप मिलता जो आज उनके पाठों में प्रस्तुत है। अपभ्रंश की पंक्तियाँ अ[illegible] हैं ऐसा आज तक किसी भी विद्वान् ने कहने का साहस नहीं किया है, क्योंकि यह पाठ सर्वत्र मिलते हैं। दूसरे यदि कालिदास के नाटकों के सन्दर्भ में अभिनेताओं द्वारा भाषा के आधुनिकीकरण या पाठ के प्रक्षिप्तिकरण की बात मान ली जाए तो फिर आधुनिकीकरण या प्रक्षिप्तिकरण की यह प्रवृत्ति चौथी या पाँचवीं [illegible]ब्दी के प्राकृत युग तक ही क्यों सीमित रहा। निश्चय ही है कि कालिदास के
[illegible] भारतीय इतिहास के हिन्दूकाल या प्राक् इस्लाम काल अर्थात् १०वीं
स्वर का प्रथ
कवि के स[illegible] [illegible]व में अवश्य ही खेले जाते रहे होंगे। यदि कालिदास की प्राकृत का
क्या उक्त [illegible] या अपभ्रंशीकरण अभिनेताओं द्वारा चलता रहा तो यह प्रवाह
[illegible]ति विशेष [illegible]भी नाटकों का प्राकृतों तक चलना चाहिए और उनमें उत्तरकालीन
[illegible]प भी आने चाहिए। किन्तु अपभ्रंश का प्रयोग अन्य किसी नाटकों में
इस म[illegible] [illegible]। केवल विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अंक में ही एक विशेष परिस्थिति में
[illegible]ग कवि क[illegible] [illegible]व से अपभ्रंश की पंक्तियाँ कहलायी गयी हैं। एक सुसंस्कृत उच्चस्तर
होगा अ[illegible] [illegible]मानतय स[illegible]ज में प्रचलित उच्चस्तरीय भाषा का ही प्रयोग करता है।
[illegible]यी हो[illegible] निम्नस्तरीय भाषा का प्रयोग हेय माना जाता है अतएव हेय स्तर की
मगध [illegible] [illegible]की चेतनावस्था में प्रयुक्त नहीं हो सकती। बल्कि उसके अवचेतन स्तर में
दूस[illegible] [illegible]है। विक्षिप्तावस्था में मस्तिष्क के अवचेतन का द्वार उन्मुक्त हो जाता है।
[illegible]त क[illegible] [illegible]विक्षिप्त व्यक्ति उस हेय स्तर की भाषा का प्रयोग कर सकता है जिसे
[illegible] है [illegible]नावस्था में सदैव रोके रहता है। 'विक्रमोर्वशीय' में उर्वशी के विरह में
[illegible]जा पुरुरवा विक्षिप्त से हो जाते हैं। उसी विक्षिप्तावस्था में कालिदास अपभ्रंश
[illegible] कुछ पंक्तियाँ उनके मुख से कहलाते हैं जो विक्षिप्त पात्र की नाटकीय परिस्थिति
[illegible] लिए सब प्रकार से उपयुक्त है और कालिदास ऐसे नाटककार की नाट्य प्रतिभा
[illegible] महानता को द्योतित करती है। अतएव विक्रमोर्वशीय की अपभ्रंश पंक्तियाँ

केवल काश्मीर का ही वर्णन है। सुपधुरा, केसर तथा धान की खेती के सफलपूर्ण वर्णन भी इस बात को प्रमाणित करते हैं कि कालिदास काश्मीर निवासी थे।

इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि कवि काश्मीर निवासी नहीं है। कवि द्वारा वर्णित भौगोलिक स्थानों का आधार रामायण पुराण न होकर महाभारत है। दूसरी बात उपर्युक्त स्थान केवल काश्मीर तक ही सीमित नहीं है। तथा प्रत्यभिज्ञा दर्शन वाली उक्ति को प्रो० लाख स्वीकार न० करते।

तीसरा मत है कि वह बङ्गाली किंवा कालिदास को बङ्गाली (बङ्गाल निवासी) मानते हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण वे यह प्रस्तुत करते हैं कि उन्होंने धान की खेती का वर्णन सुन्दर रूप में किया है।

किन्तु यह बात स्वाभाविक नहीं ठहरती क्योंकि कवि ने रघु की दिग्विजय के अवसर पर बङ्गाल की पराजय का वर्णन बड़ी ही निर्ममता से किया है। किसी भी व्यक्ति का अपनी जन्मभूमि के विषय में कठोर बात कहना स्वीकार नहीं होता क्योंकि मातृ भूमि के प्रति व्यक्ति का प्रेम स्वाभाविक होता है।

चौथा मत उनके उज्जैन निवासी होने के पक्ष में है। ऋतुसंहार में ऋतुओं प्राकृतिक दृश्यों तथा मानव जीवन का वर्णन मध्यभारत (मालवा प्रदेश) के जलवायु के अनुरूप हुआ है। मेघ तक विन्ध्याचल का स्पष्ट वर्णन मिलता है। मेघदूत में जिन ३१ नगर पर्वत नदी दृश्य तथा मानव जीवन आदि का वर्णन मिलता है उनमें से १७ मध्यभारत से सम्बन्धित हैं। उज्जयिनी महाकवि के लिए विशेष आकर्षण का केन्द्र है। महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री तथा डा० स्मिथ इसी मत के समर्थक हैं।

उपर्युक्त मतों का पर्यवेक्षण करते हुए यह कहा जा सकता है कि कालिदास के निवास का औचित्य उज्जयिनी के साथ है और मालवा से भी उनका सम्बन्ध रहा होगा। क्योंकि कवि मेघ के अलकापुरी तक जाने के मार्ग का निर्देश करता हुआ कहता है— यद्यपि तुम्हारे मार्ग में उज्जयिनी का मार्ग कुछ टेढ़ा अवश्य पड़ेगा फिर भी तुम उज्जयिनी होते हुए जाना।[1] इस कथन से पता लगता है कि कवि का उज्जैन के प्रति विशेष आकर्षण था और इसने अपने जीवन का अधिकांश समय वहीं व्यतीत किया होगा अतः यह कहा जा सकता है कि सम्भवतः कालिदास का जन्म उज्जैन अथवा उज्जैन के प्रान्तभाग में हुआ होगा।

---

१ पू० मे० २७

व्यक्तित्व— — ग्रन्थ

कालिदास के काव्य का मन्थन करने से यह अनुमान होता है कि उनके जीवन का अधिकांश भाग समाज के उच्चस्तरीय परिवार या राजाश्रय में व्यतीत हुआ था। अतः वह तत्कालीन समाज के शिष्टव्यवहार परिष्कृत भाषा तथा रीति-एवं नीति में सिद्धहस्त थे। संस्कृत तथा प्राकृत भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। रस छन्द-अलंकार के वह पूर्ण अध्येता एवं पण्डित थे। उपमा का चरम लक्ष्य उनके काव्यों में परिलक्षित होता है।

कालिदास जाति के ब्राह्मण एवं परम शिवभक्त थे। कवि हृदय का कोमल संवेदनाओं से युक्त होते हुए भी वे राजनीतिक कूटनीति के समग्र ज्ञाता एवं वाक्पटु विद्वान् थे। प्रकृति एवं मानवीय भावनाओं के सूक्ष्म निरीक्षक थे। भौगोलिक ज्ञान के तो भण्डार ही थे। उनके काव्यों में वैदिक संहिताओं ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, सूत्रों रामायण, महाभारत पुराण, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रों, सांख्य, न्याय, वैशेषिक, इत्यादि दार्शनिक ग्रन्थों तथा आयुर्वेद ज्योतिष विद्या अर्थशास्त्र, कामसूत्र, नाट्य अलङ्कार व्याकरण शास्त्रों, सङ्गीत शास्त्र चित्रादि कलाओं आदि के देशदेश तथा इतिहास का सूक्ष्म एवं यथोचित परिचय मिलता है।

काव्य कृतियाँ—

संस्कृत काव्य साहित्य में कवि शिरोमणि कालिदास के काव्यों का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। काव्य से यहाँ तात्पर्य खण्डकाव्य तथा महाकाव्य दोनों से है। कालिदास ने दो खण्डकाव्यों ऋतुसंहार तथा मेघदूत तथा दो महाकाव्यों—कुमार सम्भव एवं रघुवंश की सर्जना की। इसके अतिरिक्त श्री वासुदेव विष्णु मिराशी जी ने 'कालिदास' नामक अपनी पुस्तक में रावण वध या 'सेतुबन्ध' नामक एक अन्य प्राकृत महाकाव्य को भी कालिदास प्रणीत माना है। इस काव्य की भाषा शैली सरल तथा प्रसाद-गुण युक्त है किन्तु यह काव्य-अधूरा है। विचार करने पर अनुमान अनेक प्रमाणों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि यह काव्य कालिदास प्रणीत न होकर आचार्य प्रवरसेन द्वारा निर्मित है। इसी प्रकार डा० आफेक्ट ने अपनी 'बृहत्संस्कृतग्रन्थसूची' में कालिदास के नाम से प्रचलित तीस, पैंतीस ग्रन्थों का उल्लेख किया है। किन्तु उन सभी ग्रन्थों का परीक्षण करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें से अनेक ग्रन्थ कालिदास के नाम पर गढ़े हुए अथवा कालिदास के बहुत काल पीछे उत्पन्न हुए। कालिदास नामधारी किसी अन्य ग्रन्थकार द्वारा निर्मित हुए होंगे। अतएव हम इन विभिन्न विवादों के भँवर में न पड़कर अनुमान सर्वसम्मति से उनके इन चार काव्यों का ही क्रमशः विवेचन प्रस्तुत करेंगे—

ऋतुसहार—

कालिदास कृत काव्यों में ऋतुसहार प्रारम्भिक ग्रन्थ माना जाता है। कई विद्वानों को सन्देह है कि कदाचित उक्त काव्य कालिदास द्वारा सर्जित नहीं है, क्योंकि यह काव्य कालिदास के नैतिक गुणों से रहित है। भाषा-शैली अत्यन्त साधारण होने के साथ-साथ वैचित्र्य से रहित है। काव्य का वर्ण्यविषय स्वतः बोधगम्य हो जाता है। दूसरी बात यह है कि उत्कोटि के टीकाकारों ने कालिदास के अन्य काव्यों की टीका तो की है परन्तु उन्होंने इसकी टीका नहीं प्रस्तुत की। साहित्य-शास्त्रियों ने भी इसकी एक भी पंक्ति उद्धृत नहीं की। अतएव उनके लिए भी यह उपेक्षा का विषय रहा।

परन्तु पाश्चात्यविद्वान् इसे कालिदास की कृति ही मानते हैं। उपर्युक्त आपत्तियों का उत्तर वे इस प्रकार देते हैं—टीकाकारों ने इसकी व्याख्या इसलिए नहीं की क्योंकि यह महाकवि के अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा सरल एवं बोधगम्य है अतएव उन्होंने इसकी टीका की आवश्यकता नहीं समझी। साहित्यशास्त्रियों ने इसका उद्धरण इसलिए नहीं दिया क्योंकि वे सरल ग्रन्थों से उद्धरण नहीं देते।

उपर्युक्त इन विभिन्न प्रकार के वैमत्यों में कितनी वास्तविकता है कितनी नहीं—यह एक अलग विषय है परन्तु इतना अवश्य है कि ऋतु सहार कालिदास की ही कृति है। हाँ, यह कालिदास के आरम्भिक काल की रचना है। जिस प्रकार युवावस्था तथा प्रौढ़ावस्था में बहुत अन्तर होता है उसी प्रकार ऋतुसहार एवं उनकी अन्य रचनाओं में शिल्पकला आदि सभी दृष्टियों से महान् अन्तर है।

ऋतुसहार में ६ सर्ग और १४४ पद्य हैं। प्रत्येक सर्ग में १६ से २८ तक श्लोक संख्या है। इसमें षड्ऋतुओं—ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर तथा वसन्त इत्यादि का मनोहर वर्णन मिलता है। महाकाव्यों तथा नाटकों में यत्र-तत्र स्फुट रूप में अथवा प्रसगवश ही ऋतुओं का वर्णन आया है किन्तु सम्पूर्ण सस्कृत काव्य साहित्य में ऋतुओं का एकान्तिक वर्णन एकमात्र 'ऋतुसहार' में ही प्राप्त होता है।

इस ऋतुसहार में ऋतुओं का वर्णन उद्दीपन रूप से हुआ है किन्तु कवि ने केवल उनके भौतिक स्वरूप का ही वर्णन नहीं किया अपितु प्रत्येक ऋतु के आगमन के प्रभाव से मानव अन्तस में आलोड़ित उन उन प्रतिक्रियाओं (अनुभवों) का बड़ी सूक्ष्मता से चित्रण किया है। कालिदास ने प्रत्येक वस्तुस्थिति का सूक्ष्म निरीक्षण एवं प्रकृति के साथ भारतीय सहृदयों की स्वाभाविक प्रेममय सहानुभूति का प्रदर्शन बड़ी ही कुशलता से किया है। प्रत्येक ऋतु के वर्णन में उस ऋतु का वृक्ष लताओं और पशु पक्षियों पर घटित प्रभावों तथा उसके आगमन से कामी जनों की चित्तवृत्ति

और व्यवहार में दिखाई देने वाले परिवर्तनों, उनके हृदय में उठने वाले विभिन्न प्रकार के विचारों का वर्णन कवि ने अत्यन्त चमत्कारपूर्ण ढंग से किया है।

ग्रीष्म ऋतु सूर्य के प्रचण्ड आतप और चन्द्रमा की स्पृहणीय ज्योत्स्ना के साथ आती है। कामनियाँ उज्ज्वल रत्नों और दीप्त कौशेय वस्त्रों से विभूषित हो ऋतु की शोभा में चार चाँद लगाती हैं। अपरात्रि में युवक वर्ग गीत, नृत्य तथा सुरा में आनन्द का अनुभव करते हैं, युवकों के प्रेम की ईर्ष्या से शोकाकुल निशाकर भी छिप जाता है—

> व्रजतु तव निदाघ कामिनीभिः समेतो।
> निशि सुललितगीते हर्म्यपृष्ठे सुखेन॥

वर्षाकाल राजा रूप धारण कर आता है। शस्य श्यामलता वसुन्धरा युवा-कामिनीवत् प्रतीत होती है। 'नदियाँ यौवनोन्मत्त चंचल युवतियों की भाँति बड़े वेग से समुद्र का आलिङ्गन करने चली जा रही हैं। चतुर्दिशाओं में मधुर ध्वनि गुंजित हो रही है। चपला अँधेरी रात्रि में प्रिय समागम के लिए विह्वल अभिसारिकाओं का पथ प्रदर्शन कर रही है।'—कितना मनमोहक वर्णन महाकवि ने किया है—

रमणीय शरद् ऋतु नवविवाहिता वधू की भाँति आती है—

> काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा, सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या।
> आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः, प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या॥ ३।१

चतुर्थ एवम सर्ग में कवि ने हेमन्त और शिशिर ऋतु का वर्णन किया है, किन्तु यह वर्णन पूर्वतीन सर्गों की अपेक्षा मनोहर नहीं है तथा यत्र-तत्र शिथिलता आ गयी है। इन ऋतुओं में प्रकृति सुन्दरी के नेत्राह्लादक पुष्पादि अलंकार परिलक्षित नहीं होते अतएव ४-५ श्लोकों में ही कवि ने प्रकृति गाथा को समाप्त कर दिया है। शेष श्लोकों युवक युवतियों की मधुर-हावभावों तथा लीला-विन्यासों का हृदयाकर्षक वर्णन है।

अन्त में कवि ने मनोहर एवं रमणीय वसन्त ऋतु का सुन्दर वर्णन किया है। यह वर्णन सम्पूर्ण ग्रन्थ का प्राण है। यह अपने ढङ्ग का अद्वितीय है। इस ऋतु का इतना आह्लादकारी वर्णन इतनी सरस और सुलझी हुई भाषा में शायद ही अन्यत्र किया गया हो। इस ऋतु में वृक्ष पुष्पयुक्त, सरोवर पद्मयुक्त, कामिनियाँ कामयुक्त, पवन परिमलयुक्त, सन्ध्याकाल सुखकारी तथा दिन रमणीय होते हैं—

आकम्पयन् कुसुमिताः सहकारशाखा विस्तारयन्परभृतस्य वचांसि दिक्षु ।
वायुर्विवाति हृदयानि हरन्नराणां नीहारपातविगमात् सुभगो वसन्ते ।
६।२४

मेघदूत—

मेघदूत समस्त संस्कृत गीतिकाव्य-साहित्य का परम् उत्तम रत्न है। एक विरही यक्ष की मार्मिक मनोव्यथाओं के अनुरूप चित्रण ने इस काव्य को अद्वितीय स्थान प्रदान किया है। मेघदूत में १२१ छन्द हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ दो प्रधान भागों में विभाजित है—पूर्वमेघ तथा उत्तरमेघ।

काव्य की कथा इस प्रकार है—अलकापुरी के अधीश्वर कुबेर ने अपने किंकर यक्ष को कर्तव्य पालन में शिथिलता दिखाने के फलस्वरूप एक वर्ष के लिए राज्य से निर्वासित कर दिया। बेचारा यक्ष प्राणाधिक अपनी प्रिय पत्नी से दूर भारत की दक्षिण भूमि में आकर रामगिरि नामक पर्वत पर अपने वियोग के दिन व्यतीत करने लगा था। येन-केन प्रकारेण विरह के आठ मास व्यतीत करने के पश्चात् वर्षा ऋतु का आगमन उस प्रवासी के हृदय में विरह की उत्कट वेदना जागरित कर देता है। मेरी प्रिय पत्नी की भी, मुझ पति के वियोग में यही दशा हो रही होगी – ऐसा विचार कर, यक्ष ने मेघ को अपना दूत बनाकर अपना कुशल सन्देश प्रियतमा के पास प्रेषित करने का उपक्रम करता है। पूर्वमेघ में यह मेघ के लिए रामगिरि से अलका तक जाने के मार्ग का विशद वर्णन करता है तथा उत्तर मेघ में अलकापुरी अपने भवन तथा अपनी पत्नी की विरहदशाओं का वर्णन कर अन्त में अपना सन्देश सुनाता है।

इस काव्य में इतनी स्वाभाविकता है कि कुछ आलोचकों का मत है कि कालिदास ने अपने वैयक्तिक अनुभवों को व्यक्त करने के लिए ही इस काव्य की रचना की। यह बात सर्वथा असत्य न हो तो भी स्वीकरणीय नहीं है क्योंकि कालिदास के जीवन के विषय में निश्चित सामग्री का पूर्णतया अभाव है अतएव उसके लिए कुछ भी आधार लिया बताना अँधेरे में मार्ग खोजने के समान है।

इस काव्य की कथावस्तु का निरीक्षण करने से ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि को इस काव्य के प्रणयन की प्रेरणा रामायण से प्राप्त हुई होगी। मेघदूत में चित्रित विरह दशाओं के सूक्ष्म वर्णन को देखकर लगता है कि कवि ने किसी विरह व्यथित नर के समान देखकर उसकी उन अनुभूतियों का स्वयं अनुभव किया था। यही कारण है कि मेघदूत मार्मिक भावनाओं के चित्रण में खरा उतरता है। रामायण में सुग्रीव का वानरों को मार्ग बताना, लंका का वर्णन, सायंकाल को लंका में हनुमान का लंका में प्रवेश, अशोक वन में यात्रा वर्णन और दूसरे दिन प्रातःकाल

हनुमान का सीता से मिलना इत्यादि वर्णना का प्रभाव कालिदास पर किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ा होगा। मेघदूत की कुछ पंक्तियाँ—'जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु', 'रामगिर्याश्रमेषु रघुपतिपदैरङ्कितम्', 'इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा', इत्यादि उद्धरण इस बात की पुष्टि करते हैं।

महाकवि ने १२१ श्लोकों में ही अपने सम्पूर्ण काव्य लालित्य का प्रदर्शन कर दिया है। काव्य में कल्पना और इच्छाद्धृत का अपूर्व सम्मिश्रण है। उत्तरमेघ का प्रत्येक श्लोक वियोगावस्था का जीता जागता चित्र उपस्थित करता है। इतना ही नहीं विरह की प्रत्येक दशाओं तथा उसके अन्तर्गत मनोदशाओं का भी बड़ा ही सूक्ष्म वर्णन किया गया है। ऐसा लगता है कि कालिदास एक महाकवि ही नहीं, वरन् एक वियोगिनी स्त्री की प्रत्येक भावनाओं, परिस्थितियों तथा हार्दिक संवेदनाओं के गूढ़ अध्येता भी हैं। यक्षिणी के तीव्र विषाद की सुन्दर व्यंजना देखिए—

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।
हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वात्
इन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति ॥ मेघदूत २।२४

प्रकृति देवी के महान् उपासक होते हुए भी, कालिदास एक सुविज्ञ नागरिक भी हैं। इसीलिए मेघदूत में हमें नगर तथा ग्राम के अविस्मरणीय वर्णन प्राप्त होते हैं। यक्ष कहता है—मेघों के आने पर पुष्पित केतकियों के पुष्पों से धवलित उपवनों की क्यारियों से युक्त वह दशार्णभूमि और भी सुशोभित होने लगेगा, जिसके ग्राम्य वृक्ष पक्षियों के घोंसलों और जामुन के पके फलों से परिपूर्ण हैं।

उज्जयिनी नगरी का वर्णन करते हुए यक्ष कहता है—'उज्जयिनी नगरी वैभव में मेघों के समान है। इसके प्रासाद प्रत्येक दृष्टि से तुम्हारी समता कर सकते हैं। वहाँ की रमणियाँ तुम्हारी विद्युत की भाँति, वहाँ के चित्र तुम्हारे इन्द्र धनुष की भाँति उनकी दुन्दुभियाँ तुम्हारे मधुर गर्जन के समान तथा रत्न जटित भूमि तुम्हारी जल बिन्दुओं की भाँति हैं तथा वहाँ के महलों के शिखर भी तुम्हारे ही समान गगन चुम्बी हैं। इतना ही नहीं यक्ष का गृह भी मेघ से पूर्ण समता रखता है।'

---

१ उ० मे०,

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥ उ० मे० १

प्रकृति की परिवर्तनशील दृश्यावली मेघदूत के अनेक कल्पनात्मक सन्देशों से परिपूर्ण है जो वियोगी यक्ष के अन्तःकरण में स्वाभाविक रूप से उद्बुद्ध हो जाते हैं। तटवर्ती वृक्षों के शुष्क पत्तों के पतन से निर्विन्ध्या पीतवर्ण हो गयी है, जो अपने प्रियतम से वियुक्त होकर कृशकाय पीतवर्ण रमणी के समान प्रतीत होती है।[1] उज्जयिनी में प्रातःकाल के समय शिप्रा की ओर आने वाला पवन सारसियों के स्पष्ट और मदनामधुर कूजन को और दीर्घ बनाता है।[2] अन्तिम श्लोकों में यक्ष की प्रेयसी का शब्दचित्र प्रस्तुत किया गया है।

वस्तुतः मेघदूत कालिदास की सर्वोत्तम रचना है। इसमें उनकी रुचि का प्रकृति और काव्य कलामर्मज्ञता का स्पष्ट परिचय मिलता है। एक कुशल चित्रकार जिस प्रकार तूलिका की सहायता से चार छः रेखाओं में सुन्दर से सुन्दर चित्र बनाता है। उसी प्रकार कवि ने भी अत्यन्त अल्प शब्दों में रमणीय उदार भावों का चित्र बड़ी कुशलतापूर्वक सुन्दर रूप में उतार दिया है।

काव्य की शब्द-रचना चमकते हुए हीरों की भाँति निर्दोष तथा उज्ज्वल है। अपनी रचना को उपमा, उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यासादि, सुन्दर सुन्दर अलङ्कारों से जड़ देने से उनकी आभा और भी द्विगुणित हो गयी है।

मेघदूत में केवल विप्रलम्भ शृङ्गार का ही चित्रण हुआ है। विशेषकर उत्तर मेघ में यक्ष, अपनी और अपनी पत्नी की विरहावस्था का वर्णन जिन श्लोकों में करता है, वे अत्यन्त ही करुणोत्पादक एवं मार्मिक हैं।

सम्पूर्ण मेघदूत मन्दाक्रान्ता छन्द में प्रणीत है जो विरह की तीव्रतम अनुभूतियों के चित्रण में पूर्णतया सक्षम है। हम कह सकते हैं कि यदि कालिदास ने केवल मेघदूत की ही रचना की होती, तो भी वे सर्वोत्कृष्ट महाकवि गिने जा सकते थे। उनके मन्दाक्रान्ता के छन्द से प्रभावित होकर किसी कवि ने उनके भावुक उद्गार व्यक्त किए हैं।

कुमारसम्भव—

कालिदास की लेखनी से प्रसूत महाकाव्यों की सरणि में कुमारसम्भव को प्रशंसनीय स्थान प्राप्त है। इसमें उमा शिव के विवाह तथा कार्तिकेय की उत्पत्ति का प्रतिभा चमत्कृत वर्णन है। तारक नामक राक्षस द्वारा पीड़ित देवता ब्रह्मा की शरण में रक्षार्थ जाते हैं। ब्रह्मा आदेश देते हैं कि वे शिव-पार्वती का विवाह

---

१ पू० मे० ३१

२ पू० मे० २३

कराय उनका जो पुत्र होगा वही केवल तारक राक्षस का वध करने मे समर्थ होगा। देवतागण विचारकर कामदेव से यह अनुग्रह करते हैं कि वे समाधिस्थ शिव के हृदय मे पार्वती के प्रति प्रेमभाव जागृत करे। कामदेव असमय मे वसन्त का आगमन कराकर, शकर की तपस्या भङ्ग करता है, किन्तु समाधि भङ्ग हो जाने के फल-स्वरूप कोपारक्त हुए शिव जी अपने तृतीय नेत्र की ज्वाला मे कामदेव को भस्म कर अन्तर्निहित हो जाते हैं। इसके पश्चात् अपने रूप लावण्य से आकर्षित कर सकने मे असमर्थ, पार्वती जी की शिव प्राप्ति के निमित्त घोर तपस्या करने लगती हैं। शिव ब्रह्मचारी के वेश मे वहाँ जाते हैं और उनकी तपस्या की परीक्षा लेते हैं और उनसे विवाह की प्रतिज्ञा करते हैं। सप्तर्षिगण शिव-पार्वती का पाणिग्रहण कराते हैं। विवाह समारोह के उपरान्त कवि दोनों के दाम्पत्य जीवन का वर्णन करता है।

कुछ विद्वान् काव्य का यहीं पर समाप्ति मानते हैं। अधुना कुमारसम्भव की उपलब्ध प्रतियों में सत्रह सर्ग मिलते हैं। कुछ आलोचकों का मत है कि इसमें पहले २२ सर्ग थे। इसके विपरीत कुछ आलोचकों का कथन है कि कालिदास इस काव्य को पूरा नहीं कर सके तथा आरम्भ के आठ सर्ग ही वास्तव में कालिदास द्वारा रचित हैं। उन्होंने इस काव्य को क्यों समाप्त नहीं किया, यह आज भी एक रहस्य बना हुआ है। यह व्याख्या कि उनकी मृत्यु हो गयी, उचित नहीं है, क्योंकि इस बात के अनेक संकेत मिलते हैं कि रघुवंश की रचना इस काव्य के बाद हुई है।

दूसरी बात यह है कि प्रसिद्ध व्याख्याकारों-अरुण गिरिनाथ, मल्लीनाथ इत्यादि की टीकायें केवल आठ सर्गों तक की प्राप्त होती हैं। इन विभिन्न अटकलों के अतिरिक्त कुछ विद्वानों का यह भी अनुमान है कि कवि ने केवल कुमारजन्म तक की घटनाओं का ही वर्णन किया होगा। किन्तु यह बात युक्तिसङ्गत नहीं लगती। सम्भव है, कुमार गुप्त के जन्मोत्सव पर उक्त काव्य की रचना किये जाने से कालिदास ने काव्य को यह नाम किसी विशेष अभिप्राय से दिया हो। अथवा कालिदास को अपने आराध्यदेव का शृङ्गार वर्णन इतना पश्चात्ताप कारक हो गया कि उन्होंने इस काव्य की बाद में रचना ही समाप्त कर दिया, किन्तु उसके अच्छे स्थलों को रघुवंश में स्वयं रख लिया अन्यथा कालिदास की शैली पुनरुक्त कहने की आदी नहीं रही है।

एक अन्य विवाद जो विद्वानों का इस विषय मे अभीष्ट है, वह यह है कि छठे तथा आठवें सर्ग में शिव-पार्वती के सम्भोग का वर्णन बड़े ही उद्दाम तथा अमर्यादित रूप मे हुआ है। अतएव उसके सुरुचिपूर्ण न होने के कारण आनन्दवर्धन

(७३० पृ० १४७) तथा मम्मटादि काव्यशास्त्रियों ने कवि का दोषी ठहराया है। कहते हैं कि शृङ्गार के नग्न वर्णन से पार्वती जी ने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया था फलत यह काव्य अपूर्ण ही रह गया। टीकाकार अरुणगिरि ने इस किंवदन्ती का स्पष्ट उल्लेख किया है। इन सब बातों से यह पता चलता है कि कालिदास के समय में ही इस तरह के आक्षेप होने लगे थे। सम्भवतः इसी कारण कालिदास ने 'कुमारसम्भव' को अपूर्ण ही रहने दिया। कारण कुछ भी हो, नवम् सर्ग के बाद के सर्ग कालिदास प्रणीत नहीं है। प्रथम आठ सर्गों की अपेक्षा बाद के सर्गों की रचना सशक्त कम है इन सर्गों की भाषा शैली में भी कसाव नहीं है। उपमा, अर्थान्तरन्यासादि अलङ्कारों का निर्वाह भी उतनी सुन्दरता से नहीं हो पाया है। अतएव ऐसी धारणा है कि 'कुमारसम्भव' को अपूर्ण देखकर उत्तरकालीन किसी कवि ने इसे पूरा कर लिया है।

दार्शनिक दृष्टिकोण से कुमारसम्भव महाकवि की धार्मिक आस्था का प्रतिफलित रूप है। उनकी सम्वेदनशील काव्यात्मक बुद्धि ने विश्व को एक नियमित विधान के रूप में ग्रहण किया है। उपनिषदों की भाँति उन्होंने भी विश्व के आधार को एक वाचातिरिक्त सत्ता रूप में स्वीकार किया। कुमारसम्भव में कवि द्वारा की गई शिव स्तुति एक निर्लिप्त परमात्मा की अपेक्षा एक वैयक्तिक धारणा के अधिक निकट है। वाचातिरिक्त एक अन्तर्वर्ती ईश्वर भी है। रघुवंश की विष्णुस्तुति में भी अन्तर्वर्तित्व और वैयक्तित्व पर समान रूप से बल दिया गया है। कवि का कथन है कि तत्त्व के सम्बन्ध में सन्देह की स्थिति होने पर अन्तःकरण की वाणी को ही प्रमाणित मानना चाहिए।

'कुमारसम्भव' शृङ्गार रस प्रधान काव्य है। कवि वासनाजन्य प्रेम का पक्षपाती नहीं है। वासनाजनित प्रेम दुःख-क्लेश का परिणाम होता है। काम-वासनाओं को बिना भस्मीभूत किए, सच्चे स्नेह की प्राप्ति नहीं हो सकती है। तपस्या से स्नेह परिनिष्ठित नहीं होता है यह कुमारसम्भव का अमर सन्देश है। शृङ्गार के साथ करुण का भी मार्मिक चित्रण हुआ है। चतुर्थ सर्ग का रति-विलाप विश्वसाहित्य में अपना अद्वितीय स्थान रखता है।

काव्य की भाषा अत्यन्त सरस और बोधगम्य है। अनुष्टुप उपेन्द्रवज्रा वियोगिनी, रथोद्धता आदि छन्दों का प्रयोग कुशलतापूर्वक किया गया है।

रघुवंश—

'क इह रघुकारे न रमते'

रघुवंश कालिदास की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसमें उनकी परिपक्व प्रज्ञा एवं प्रौढ़ प्रतिभा के दर्शन होते हैं। ग्रन्थ की लोकप्रियता तथा व्यापकता का परिचय विभिन्न

काल मे निर्मित ४० शाकाओ के अस्तित्व से मिलता है।इसलिए संस्कृत के ग्रन्थकारो एव सुभाषितकारो ने कालिदास को 'रघुकार' के नाम से उल्लिखित किया है। रघुवश मे १९ सर्ग हैं तथा उसमे २९ सूर्यवंशी राजाओ का यशोगान किया गया है। इन राजाओं मे रघु नामक राजा बडा प्रतापी तथा दानशील हुआ। उसी के वशधर राजाओ का काव्यमय वर्णन इस काव्य मे किया है जिसमे मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी हुए इसी से इस काव्य का नामकरण रघुवश पडा।

कथावस्तु इस प्रकार है—राजा दिलीप की गोसेवा (नन्दिनी) के परिणाम-स्वरूप रघु का जन्म होता है। रघु अपने अदम्य पराक्रम एव शौर्य से सबको पराजित कर सम्पूर्ण भारत पर विजय प्राप्त करता है तथा अपनी अद्भुत दानशीलता से सबका कल्याण करते हैं। इसके अनन्तर तीन सर्गों मे अज का जन्म इन्दुमती स्वयम्वर अन्य समवेत राजाओ को परास्त कर रघु-पुत्र अज का इन्दुमती से विवाह तथा माला गिरने से इन्दुमती की मृत्यु, अज का हृदय विदारक विलाप वर्णित है। १०वें से १५वें तक राम-चरित्र वर्णित है। कालिदास ने इन सर्गों मे राम के चारित्रिक वैशिष्ट्य का वैदुष्यपूर्ण वर्णन किया है। त्रयोदश सर्ग मे पुष्पकारूढ राम द्वारा भारत के पवित्र स्थलों का रुचिर वर्णन कालिदास की प्रतिभा का विलास है। चतुर्दश सर्ग सीता चरित्र से आलोकित है। राम द्वारा परित्यक्ता गर्भभारालसा जनक नन्दिनी के प्रणय सन्देश मे जो आत्मगौरव की विवशता दैन्य तथा स्नेह पुञ्जीभूत है वह पतिव्रता नारी के चरित्र का चरमोत्कर्ष है। १६वें सर्ग मे नाटकीय तत्वो का सुन्दर आभास मिलता है। रात्रि काल मे कुश के शयन कक्ष मे अयोध्या देवी का आगमन और उनके द्वारा कथित अयोध्या का दुखद वर्णन अत्यन्त ही हृदयस्पर्शी है। इसके बाद रघुवश के अवशिष्ट सर्गों मे रोचकता कम होती जाती है क्योकि कालिदास के पास उन अयोग्य राजाओ के नाम परिगणित करने के अतिरिक्त कहने को कुछ शेष ही नही था जिनकी समस्त अभिरुचियाँ अन्तःपुर तक ही सीमित थी। अतएव उनका धुंधली आकृतियों का ही वर्णन केवल मिलता है। हाँ इतना अवश्य है कि आकार मे वास्तविकता कुरूपता लाने की दृष्टि से कथानक इतना लचीला नही है। केवल वृत्तान्त के काव्यात्मक प्रवाह तथा भावनाओं मे प्रतिध्वनित उपमाओ से ही इसका निर्वाह किया गया है। १९वें सर्ग का अन्त अकस्मात् ही कवि ने कामुक एव विलासी राजा अग्निवर्ण के मार्मिक चित्रण के साथ किया है। इसी कारण रघुवश देखने से कुछ अधूरा अधूरा सा प्रतीत होता है।

स्व० रायबहादुर शकर पाण्डुरङ्ग ने रघुवश मे २५ सर्ग होने का उल्लेख किया है। परन्तु अवशिष्ट सर्गों का पता न लगने से यह बात स्वीकरण योग्य नही लगती।

कवि ने १९ सर्ग से आगे रचना नहीं की, इसका कारण कुछ आलोचक उनकी अस्वस्थता अथवा मृत्यु होना बताते हैं। दूसरा बात यह है कि 'विष्णुपुराण में अग्निवर्ण के पश्चात् आठ राजाओं का वर्णन मिलता है, किन्तु रघुवंश केवल अग्निवर्ण के वर्णन तक ही सीमित है। अतएव यह विद्वान रघुवंश को अपूर्ण ही स्वीकारते हैं। अस्तु

इस काव्य के प्रणयन में कालिदास वाल्मीकि के सबसे अधिक ऋणी हैं। काव्य के आरम्भ में ही पूर्वसूरिकृत ग्रन्थों का अनुसरण कर मैं रघुवंश की रचना करता हूँ ऐसा कवि ने संकेत दिया है। ९वें सर्ग से १५वें सर्ग तक कवि वाल्मीकि रामायण से प्रेरणा ग्रहण की। पुराणों में भी रघुवंशी राजाओं की नामावली दी गई है किन्तु उस नामावली और रघुवंश में वर्णित नामावली में महान् अन्तर है। यथा दिलीप रघु के बीच वाल्मीकि रामायण में दो वायुपुराण में उन्नीस एवं विष्णुपुराण में अठारह राजाओं के नाम दिये हुए हैं। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि कालिदास ने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों के विषय में केवल नाम निर्देश के कारण इतने आदर के उद्गार प्रकट किये हैं।

रघुवंश में प्रायः सभी मुख्य रसों का परिपोषण हुआ है। आचार्य साइल (११वीं शताब्दी) ने कालिदास को रसेश्वर की उपाधि से विभूषित किया है। राजा अग्निवर्ण के विलास में शृङ्गार, रघु-अज राम के युद्ध प्रसङ्ग में वीर-रौद्र अज-विलाप में करुण वशिष्ठ तथा वाल्मीकि के आश्रम तथा स्वस्थ त्यागी रघु के वर्णन में शान्तरस, ताड़का वध में भयानक रस का विविध छटा परिलक्षित होती है। किन्तु पूर्वोक्त सभी रस गौण रूप में ही आये हैं रघुवंश का प्रधान रस तो वीर है। वीर-रस के चारों अङ्गों—युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर और दयावीर का यथोचित परिपाक हुआ है।

कवि की भाषा सर्वत्र सरल, मधुर एवं प्रसादमयी है। उपमा के तो कालिदास सिद्धहस्त कवि हैं। उसके विषय में कुछ कहना पृष्टपेषण ही होगा। साथ ही उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यासादि अर्थालङ्कार भी नगवत् जटित हैं। कालिदास ने शब्दालङ्कारों का प्रयोग बहुत कम किया है। नवम में वसन्त ऋतु तथा दशरथ आखेट का वर्णन करते समय यमकात्मकता च धुरि स्थिता' रणेरणवाम्बुविरे रुधिरेन सुरद्विपाम्, इत्यादि स्थलों में यमक-अनुप्रास की झलक मिलती है।

सर्वत्र वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ पर ही अधिक ध्यान दिया गया है। वृत्तों का यथोचित प्रयोग मिलता है। रचना सुबोध तथा अतिरमणीय, भावतरङ्ग

मधुर, सुष्टिवणन मनोहर होने के कारण 'रघुवश' सस्कृत साहित्य का देदीप्यामान नक्षत्र है। अपने आदर्शों की अनुपम सृष्टि के लिए कामल तथा मधुर रसात्पत्ति के लिए 'रघुवश', कालिदास की कीर्ति-ध्वजा को निरन्तर फहराता रहेगा।

सस्कृत काव्य और कालिदास

काव्य का वर्गीकरण—

सस्कृत महाकाव्यो के विकास क्रम को तीन युगो मे विभक्त कर सकते हैं—

(१) कालिदास का पूर्ववर्ती युग (जिसके अन्तगत रामायण, महाभारत इत्यादि आते हैं)।

(२) कालिदास का युग (जिसका प्रतिनिधित्व अकेले कालिदास करते हैं)।

(३) कालिदास का परिवर्ती युग (जो भारवि से प्रारम्भ होता है)

इस विभाजन से सस्कृत के प्राय सभी इतिहासकार सहमत हैं।

रचना शिल्प के विकास की दृष्टि से समस्त महाकाव्यो को पुन तीन वर्गों मे वर्गीकृत कर सकते हैं—

(१) इतिवृत्त प्रधान महाकाव्य
(२) भावप्रधान महाकाव्य
(३) अलङ्कार प्रधान महाकाव्य

इन तीनो महाकाव्यो के काव्यकर्त्ताओ एव उनकी रचना विधान प्रक्रिया का सक्षेप म विचार करेंगे।

(१) इतिवृत्त प्रधान महाकाव्य—

सस्कृत साहित्य के महाकाव्यो की दीर्घ परम्परा मे ऐसे भी महाकाव्यो का उदय हुआ जिसमे कथानक की ही प्रधानता है। अर्थात् काव्य के अन्य अङ्गो रस-अलङ्कारादि की अपेक्षा कथा के विकास मे कवि ने अपनी प्रतिभा का अधिक उपयोग किया तथा उसमें नये मोड दिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि रस अलङ्कारों की सर्वथा उपेक्षा की गई किन्तु य तत्त्व केवल अङ्ग रूप में (गौण रूप मे) ही प्रयुक्त हुए। इनका योगदान केवल कथानक मे प्रवाह लाने उसे अधिक चुस्त और सशक्त बनाने, सरसता और प्रभावोत्पादकता लाने में ही रहा। इस श्रेणी के काव्यों मे कथानक का ही मुख्यत आनन्द मिलता है—उसके उतार-चढाव, घात-प्रतिघात,

तथा भाषा शैली का सुन्दरता का द्योतक परिलक्षित होता है। इस काव्य में वैदर्भी रीति का सफल प्रयोग किया गया है जो मानव हृदय को आकर्षित करने में सक्षम है। वर्णन आकर्षक एवं हृदयाह्लादकारी है। सर्वत्र स्वाभाविकता एवं कलात्मकता का आवरण छाया हुआ है। कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते।

इतिवृत्ति प्रधान कवियों में अश्वघोष महत्त्वपूर्ण हैं। उनका बुद्धचरित एवं 'सौन्दरनन्द' कथात्मक प्रधान काव्य हैं। उनकी कविता को पढ़कर पाठक सहज ही पुकार उठता है कि कवि अपने मरल विचार मग्न इतिवृत्त को कविता का कलेवर प्रदान कर रहा है। बौद्ध धर्म की महा भावना एवं उदार दृष्टि को सार्वभौम बनाने के लिए तथा उसे सर्व हृदयङ्गम बनाने हेतु कवि ने घरेलू उपमा तथा दृष्टान्त का रोचक प्रयोग किया है। सौन्दरनन्द काव्य में कवि की वाणी मनोहर-हितकारिता हृदय को आवर्जन करने की अनुपम शक्ति को लेकर समक्ष आती है। उनकी कविता अश्वघोष की भावना शक्ति प्रदान करती है। छोटे छोटे चुने हुए प्रसङ्गों द्वारा अपने धार्मिक सन्देशों को काव्य का कमनीय विग्रह प्रदान करने में सफलतम कवि हैं। शैली शुद्ध वैदर्भी का उत्कृष्ट निदर्शन है।

क्षेमेन्द्र भी इस काव्य युग को पुष्पित एवं पल्लवित करते हैं। कवि ने लोगों के चरित्र सुधार तथा मनोरंजन की भावना से प्रेरित होकर रामायण महाभारत की प्रख्यात कथाओं का संक्षिप्त वर्णन रामायणमञ्जरी तथा भारतमञ्जरी के नाम से प्रस्तुत किया। इन कथाओं का संक्षेपण इतना सुन्दरता तथा विवेक पूर्वक किया गया है कि मनोरञ्जन के साथ साथ कथा में पूर्ण प्रवाह और स्वाभाविकता है।

(२) भावप्रधान काव्य—

संस्कृत साहित्य में कुछ ऐसे भी काव्यों की सर्जना हुई जिनमें भाव अनुभूतियों तथा मानसिक सम्वेदनाओं को प्रधानरूप से रखना गया है। इन महाकाव्यों में रस भावों का अपूर्व समन्वय बड़ी मधुरता पूर्वक रस-पेशल शैली में हुआ है। ऐसे काव्यों में कवि अपने आराध्यदेव के सम्मुख बैठकर अपनी अन्तरात्मा की कोमलतम अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है अथवा किसी मार्मिक प्रसङ्ग जैसे विरहिणी नायिका-नायक की मनोदशाओं का मनोग्राही वर्णन करता। ऐसे काव्य में अनुभवों एवं विभावों का ही अधिकांशतः वर्णन किया जाता है। इनकी भाषा सुमधुर रसमयी एवं सरस होती है। सर्वत्र कोमलकान्त पदावली का प्रयोग होता है। अलङ्कारों का प्रयोग भावों में तीव्रता एवं उत्कृष्टता लाने के निमित्त होता है अर्थात् वे साधन रूप में प्रयुक्त होते हैं साध्य रूप में नहीं। इन काव्यों में प्रायः धर्म का भी अङ्ग सम्मिलित रहता है।

इस दृष्टि से जयदेव के 'गीत गोविन्द' का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। इसके बारह सर्ग गीता के मधुर स्वरों से गुञ्जित हैं। 'गीतगोविन्द' भगवती संस्कृत भारती के माधुर्य एवं सौन्दर्य की पराकाष्ठा है। गीत का अनुपम प्रदर्शन काव्य की विशेषता है। गीत संवाद-वर्णन का मधुर गुम्फन है।

राधाकृष्ण की शृङ्गार क्रीड़ा में उनकी अभिसार लीलायें शृङ्गार रस में चार चाँद लगा देती हैं। आशा निराशा, उत्कण्ठा, प्रणयजन्य ईर्ष्या-मानापनोदन तथा मिलन वियोग इत्यादि प्रेम की इन विविध दशाओं का अत्यन्त आकर्षक चित्रण हुआ है। श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन में तो ऐसा लगता है कि कवि विश्व की मधुरता को उड़ेल रहा है। राधा की सखि मान छोड़ने को कहती है—हरि मिसरति वहति मधुपवने, किमपरमधिकमुखं, सखि भुवने, माधवे मा कुरु मानिनि मान मये। कृष्ण राधा को मनाते हैं 'प्रिय चारुशीले मुञ्च मानमसदानाम्।' श्रीकृष्ण की प्रणय-याचना —'स्मिरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनम्' व प्रणय-दाम्पत्य में तल्लीनता तथा तन्मयता भेद में अभेद की कल्पना का अतुलनीय स्वरूप 'गीत-गोविन्द' में प्राप्त होता है।

गीतगोविन्द में प्रयुक्त कोमलकान्त पदावली का दूसरा उदाहरण विश्व साहित्य में दुर्लभ ही नहीं—अचिन्तनीय है। उपमा की कल्पना, उत्प्रेक्षा की उड़ान के साथ प्रेम की उन्मत्त भावना का वैशिष्ट्य काव्य में छाया हुआ है। अनुप्रास प्रयोग में कवि अपनी सानी नहीं रखता। ललित छन्द एवं माधुर्य गुण का मणिकाञ्चन संयोग अनिर्वचनीय है। शब्द माधुर्य का अनूठे प्रयोग का उदाहरण—'ललितलवङ्गलता-परिशीलनकोमल मलयसमीरे' में मिलता है। उनके काव्य को पढ़कर उनकी विनय भरा गर्वोक्ति का परिचय मिलता है—यदि 'हरि स्मरणे सरसं मनो यदि विलास कलासु कुतूहलं।। कोमलकान्त पदावली शृणु तदा जयदेव पदावली।

गीत गोविन्द एक नवीन रचना प्रणाली का सूत्रपात करता है जिसके अनुकरण पर अनेक रचनाओं का जन्म हुआ जैसे अभिनव गीतगोविन्द, गीतराघव, गीत-गङ्गाधर, कृष्णगीता इत्यादि।

(३) अलङ्कार प्रधान महाकाव्य—

साहित्य शैली के विकास पर युग के परिवेश का अमिट प्रभाव पड़ता है। किसी काल की मान्यता युग की चेतना तथा सामाजिक रुचियाँ, उस युग के साहित्य को विशिष्ट शैली का आश्रय लेने को बाध्य करती हैं। इसीलिए कहा जाता है कि किसी युग विशेष का साहित्य, उस युग का पथिक प्रदर्शक होता है। इस

अनुसार विक्रम के सप्तम्-अष्टम् शतक को संस्कृत साहित्य के इतिहास में परिवर्तन का युग माना जाता है। इस युग में कालिदास की सुकुमार मार्गी सरल एवं मधुर शैली में जबरदस्त परिवर्तन हुआ। यह शैली चमत्कार एवं पाण्डित्य प्रदर्शन की दुर्धर्ष धारा को लेकर उद्भूत हुई। फलस्वरूप महाकाव्यों का स्वरूप ही बदल गया।

इस समय वात्स्यायन कामसूत्र एवं 'काव्यशास्त्र' का व्यापक प्रभाव साहित्य पर पड़ा। फलस्वरूप भावपक्ष का स्थान कलापक्ष ने ले लिया। एतद्युगीन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के चमत्कारिक एवं वैदग्ध्यपूर्ण वर्णन में ही अपने पाण्डित्य की इतिश्री मानी। इससे हटकर अन्य विषयों पर विचार करना उनके लिए असम्भव ही नहीं, अनिवार्य सा हो गया। अतएव उनकी कविता में अन्धाधुन्ध पूर्वानुकरण एवं कल्पनाशक्ति का इतना आधिक्य हो गया कि वह सीमा का अतिक्रमण करती हुई दृष्टिगोचर होती है। इस श्रेणी के काव्य ग्रन्थों में भाव विन्यास की जगह, बुद्धि प्रदर्शन की प्रधानता, स्वाभाविक प्रवाह के स्थान पर कल्पना की उड़ान, अनुभूति के स्थान पर अलङ्कार प्रदर्शन की भावना दीख पड़ती है। कुछ महाकाव्यों में काव्यशास्त्र के आचार्यों द्वारा निर्धारित नियमों को इस प्रकार ठूँसा गया कि रही सही विशेषता भी जाती रही।

इस प्रकार निश्चय हम कह सकते हैं कि कालिदास के पश्चाद्भावी कवियों में भावों का गुम्फन मौलिकता, सरसता तथा नवीनता सर्वथा नगण्य हो गयी। नियमों की शृङ्खला में आबद्ध होकर काव्य रचयिता काव्य के प्रमुख प्रयोजन रस की अभिव्यक्ति से सर्वथा पराङ्मुख हो गये। शास्त्रीय सिद्धान्तों की प्रधानता ने इन परवर्ती कवियों को स्वतन्त्र चिन्तन के अयोग्य बना दिया। इस प्रकार के महाकाव्यों की शैली को काव्य शास्त्रियों द्वारा विचित्र मार्ग की संज्ञा प्रदान की गई। इस नवीन प्रवृत्ति का श्रीगणेश भारवि के काव्य से होता है। यदि उन्हें इसका जन्मदाता कहें, तो अत्युक्ति न होगी, और आगे चलकर भट्टि कुमारदास माघ रत्नाकर इसके पोषक हुए।

भारवि (छठी शताब्दी) ने सुविख्यात महाकाव्य 'किरातार्जुनीय' की रचना की। इस काव्य की कथा प्रसिद्ध पाण्डवों पर आधारित है जो द्यूतक्रीड़ा में हार कर अज्ञातवास करते जाते हैं और अन्त में कठोर तप करके, शिव जी से पाशुपत नामक दिव्यास्त्र प्राप्त करते हैं। स्पष्ट है कि इस लघु उपाख्यान को महाकाव्य का आकार प्रदान करने के लिए भारवि ने नाना वर्णनों का आश्रय लिया है। स्थान-स्थान पर साहित्यिक वैचण्य उन समस्त सहृदयों के लिए असह्य हो गया है जो मनो अहंकार

के स्थान पर काव्यात्मक विचार को ही श्रेष्ठ समझते हैं। अपने पांडित्य प्रदर्शनार्थ भारवि ने ऐसे श्लोको की रचना की, जो आगे या पीछे से पढ़ने पर एक ही ध्वनि और अर्थ प्रदान करते हैं, या जिनमे एक ही व्यंजन (न) मात्र प्रयुक्त हुआ है।[1] किन्तु इन श्लोको मे सुन्दर कल्पनाओ के अस्तित्व एव बौद्धिक परिश्रम को अस्वीकार नही किया जा सकता—

"विश्राम के लिए द्रुतगति से जाता हुआ सूर्य रक्त हो गया है, मानो प्यास होने के कारण अपनी किरणो से कमल की मधुरता का बहुत अधिक पान कर लिया है।

भट्टि—

भट्टि कवि कृत 'रावणवध' काव्य मे काव्यात्मक प्रेरणा पर पाण्डित्य प्रदर्शन की उग्र अनुभूति लक्षित होती है। यह बाईस सर्गो मे रचित है। इसमे राम के जन्म से अभिषेक तक की कथा वर्णित है किन्तु कवि का उद्देश्य काव्यशास्त्र तथा व्याकरण के जटिल नियमो का व्याख्यान उपस्थित करना है। उनका काव्य उन लोगो के लिए एक दीपक के समान है जिनके नेत्र व्याकरण हैं किन्तु व्याकरण बिना यह अन्धे के हाथ में दर्पण के समान है। इस काव्य को केवल विद्वत्तापूर्ण भाष्य के आधार पर समझा जा सकता है। कवि ने स्वय कहा है—'यह चतुर व्यक्ति के लिए तो मिष्ठान्न भोजनवत् है जब कि मेरे पाण्डित्य प्रेम के कारण मूर्खों को निराशा ही होगी।' वास्तव मे यह एक शास्त्रकाव्य है।

'कुमारदास'

कुमारदास ने 'जानकी हरण' नामक विपुलकाय महाकाव्य की रचना की जो मौलिकता मे दूर-अनुकरण एव चमत्कार से भरपूर है।

रत्नाकर

कवि द्वारा प्रणीत 'हरविजय' संस्कृत साहित्य का सर्वाधिक वृहत्काय काव्य माना जाता है। इसमें ५० सर्ग तथा ८३२० श्लोक हैं। काव्य शैवदर्शन नीतिशास्त्र कामशास्त्र इतिहास, पुराण, नाट्य, सगीत, अलङ्कार तथा चित्रकला जैसे सभी विषयो मे प्रकाश डाला गया है। काव्य कवि की गर्वोक्तियों से आक्रान्त है। रत्नाकर ने इस काव्य के सेवी अकवि पाठक को कवि तथा महाकवि बनाने की प्रतिज्ञा की है।[२]

---

१ किरा० १५।१४

२ ?२।५, ने० च०

इस प्रकार काव्य उनके पाण्डित्य से इतना बोझिल हो उठा है कि उनके भावुक चमत्कार तथा प्रतिभाशाली उक्तियाँ दब सी गई हैं।

श्री हर्ष—

श्री हर्ष भी इस अलंकृत शैली से प्रभावित हुए बिना न रह सके। परिणामतः उन्होंने बाईस सर्गों में 'नैषधीयचरित' नामक काव्य की रचना कर डाली। यह नल दमयन्ती के प्रेम विवाह की कथा पर आश्रित है किन्तु यह काव्य श्री हर्ष के पाण्डित्य का आगार है। अतिशयोक्ति की पराकाष्ठा भी यहाँ पहुँच गया है जहाँ कवि ने अपने की अश्रुनदि जोन्ह रैना को उत्पन्न करने वाला क्षारसागर बताया तथा ताप मय को चार दिन में सूख जाने वाली नदियों को उत्पन्न करने वाले पहाड़ के समान कहा है। उनकी विलक्षण दृष्टि में सायंकाल में पश्चिम दिशा शयनागार में प्रहर के अन्त की सूचना देने वाले कुक्कुटों की चमकती के कारण रक्त वर्ण की दिखाई पड़ती है।[1]

कालिदास ने अनेक साहित्यिक शैलियों को जन्म दिया। द्रुतविलम्बित छन्द में यमक मय वर्णन। इन्होंने रघुवंश के नवम सर्ग में वसन्त ऋतु का यमकमय प्रयोग किया है किन्तु उसमें भी रस की ही प्रधानता है। पर इनके उत्तर कालीन कवियों ने इस प्रवृत्ति को ग्रहण कर यमक का ऐसा आडम्बर युक्त प्रयोग किया कि रही सही रसवत्ता भी जाती रही। भारवि ने किरातार्जुनीय में अनेक प्रकार के यमक के प्रयोग किये हैं। भट्टि ने भी दशम सर्ग में बाईस श्लोक यमक अलंकार से युक्त लिखा है। घटखर्पर नामक यमक काव्य बाईस श्लोकों में है। यमक काव्य का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन नीतिवर्मन रचित कीचक वध लघु काव्य है। इसमें पाँच सर्ग १७७ श्लोक हैं तथा चारों सर्ग यमकमय हैं तीसरे पर श्लेष का अधिकार है। वासुदेव (१६ ई) कृत युधिष्ठिर विजय भी यमक का सुन्दर निदर्शन है।

अलंकृत शैली का विकसितम रूप तब प्रकट होता है जब कवि एक ही प्रबन्ध में दो-दो नायकों की कथा सुनाने को तत्पर हो जाता है तथा कभी-कभी तीन-तीन अर्थ भी एक ही श्लोक से आदि से अन्त तक निकलता है। इस प्रकार के श्लेषमय काव्यों में सन्ध्याकर नन्दी का 'रामचरित' अतिप्राचीन महत्त्वपूर्ण है। धनञ्जय का 'द्विसन्धान', विद्यामाधव का पार्वती रुक्मिणीय, हरिदत्त सूरि का राघव नैषधीय, कविराज सूरि का राघवपाण्डवीय आदि इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। त्र्यर्थी काव्यों में राजचूडामणि दीक्षित का राघवयादवपाण्डवीय तथा चिदम्बर सुमति का राघव पाण्डवयादवीय मुख्य है। इन समस्त काव्यों में पाण्डित्य प्रदर्शन प्रमुख है तथा

---

[1] नै० च०, २२।५

कलाभिव्यक्ति गौण है। अलंकृत शैली के अंतर्गत ही प्रहेलिका प्रधान काव्य भी निर्मित हुए।

इसी शैली के अन्तर्गत एक और प्रवृत्ति ने भी जन्म लिया जो अद्भुत एवं बड़ा ही विस्मयकारी कही जा सकती है जिसे हम 'चित्र काव्य' की संज्ञा दे सकते हैं। भीषण काव्य जैसे युद्धादि के स्थलों का इन कवियों ने ऐसा चमत्कारकारी वर्णन किया कि वे शस्त्रों का आकार धारण करने लगे। इन कवियों ने वर्णों का ऐसा समुचित विन्यास किया, जिससे खड्गमुरज, कमलादि का आकार बनने लगा। इस क्षेत्र में रत्नाकर का हरविजय उल्लेखनीय है। इस काव्य में मुरजबन्ध, गोमूत्रिका-बन्ध सर्वतोभद्रबन्ध पद्मबन्ध इत्यादि सुप्रसिद्ध बन्धों का प्रयोग तो हुआ ही है साथ ही अखिलबन्ध, समजबन्ध, तूणीरबन्ध शंखाबन्ध इत्यादि प्रसिद्ध बन्धों के चित्र भी प्रयुक्त हुए। भारवि माघ की पद्धति के अनुसार ये बन्ध युद्ध वर्णन के अवसर पर ही प्रयुक्त होते हैं। इसके अतिरिक्त भारवि-माघ में द्व्यक्षरबन्ध जहाँ केवल अनुष्टुभों में प्रयुक्त किया है, वहाँ रत्नाकर ने वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, मन्दाक्रान्ता जैसे दीर्घ वृत्तों में प्रयुक्त कर अपने शब्द-कौशल को दर्शाया। आनन्दवर्धन की 'देवीशतक' क्षेमेन्द्र की 'वृहत्कथामंजरी,' अभिनन्द की 'रामचरित', अश्वघोष की बुद्धचरित, दशावतारचरित इत्यादि रमणीय चित्र काव्य के सुन्दर उदाहरण हैं।

अन्त में कह सकते हैं कि इस अलंकृत शैली में मुख्य तीन प्रकार के काव्य मिलते हैं—यमक एवं श्लेष प्रधान काव्य, प्रहेलिका प्रधान चित्रालंकारप्रधान काव्य।

कालिदास के काव्यों में तीनों का मंजुल समन्वय एवं उनकी रसपर्यवसायिता—

महाकवि के काव्य में पूर्वोक्त विवेचित तीनों शैलियों का मंजुल समन्वय मिलता है। उनकी कविता केवल अलंकार अथवा इतिवृत्त अथवा रस मात्र का ही आवरण पहन कर उपस्थित नहीं होती, वरन् त्रिधाराओं का अनोखा संक्रम प्रस्तुत करती है जिसका निर्वाह बड़ी ही सूझ बूझ के साथ किया गया है। कोई भी कवि केवल कथानक कल्पना के बल पर काव्य सर्जना नहीं कर सकता। उसके लिए रस-अलंकार की सहायता लेनी आवश्यक है। इसी प्रकार केवल अलंकार के सहारे भी काव्य प्रणयन नहीं हो सकता, उसमें कथानक रस का अस्तित्व होना आवश्यक है अन्यथा वह कृत्रिम और आडम्बर का भण्डार हो जायेगा। यही स्थिति भावों के सम्बन्ध में भी है, कोरी भावनाओं के आधार पर रचित काव्य में काल्पनिकता का

आविक्य हो जाने पर वह पाठक के लिए अविश्वसनीय हो जायगा। अतएव काव्य मे अलकार-इतिवृत्त एव भावो का सम्मिलित प्रयोग होना आवश्यक है। महाकवि कालिदास काव्य की इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। माधुर्य गुण का मधुर सन्निवेश, प्रसाद की स्निग्धता, पदो की सरस शैय्या, अर्थ का सौष्ठव एव अलकारो का स्वाभाविक प्रयोग इत्यादि कमनीय काव्य के समस्त गुण महाकवि की कविता मे अपना भव्य रूप धारण किए हुए हैं। उनकी कविता का प्रधान गुण वर्ण्य विषय तथा वर्णन शैली का मधुर सामजस्य उपस्थित करना है। जिन भावो को जिन शब्दो द्वारा प्रकट्न अधिक कलात्मक एव रुचिर होता है वे उन भावो की उन्हीं भावो द्वारा अभिव्यक्ति कर अपनी कला निपुणता का परिचय देते हैं। हम कह सकते हैं कि कालिदास की दृष्टि मे किसी भी कवि के लिए काव्य के इन तीनो मुख्याङ्गो (रस भाव अलकार कथानक) का समुचित ज्ञान होना आवश्यक है।

महाकवि कालिदास एक सवेदनशील भावुक कवि हैं। आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि प्रसङ्ग मे कहा है—महाकवियो की वाणी मे ध्वनि ऐसी शोभित होती है जिस प्रकार वह लावण्य-जो युवती के अग उसके गठन स्वरूप से सर्वथा भिन्न होता हुआ भी, उसमे ऐसा झलकता है जैसे मोती मे आभा।[1] ठीक इसी प्रकार काव्य के विभिन्न अवयवो (अलङ्कार रस गुण वृत्ति) मे भावो रसो का सौन्दर्य अपना एक अलग ही अनिर्वचनीय स्थान रखता है। भावो का जैसा हृदयग्राही और मार्मिक वर्णन कालिदास की कृतियो मे पाया जाता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। भाव सौन्दर्य की व्यापक परिधि मे कल्पना मर्म भावना, स्थायी और सचारीभाव रसानुभूति आदि का समावेश किया जा सकता है। यहाँ हम भाव सौन्दर्य के अन्तर्गत हृदय को रंजित करने वाले उन सभी अनुभूतियो का समाविष्ट करेंगे जिनसे काव्य मे रागतत्व की पुष्टि होती है।

कालिदास का विश्वप्रसिद्ध खण्ड काव्य मेघदूत भावो की गुरुता है। यक्ष के सन्देश कथन मे कवि ने विविध मानसिक भावो की अभिव्यक्ति अलकारो के माध्यम से बड़ी कुशलतापूर्वक की है।

रघुवश इतिवृत्त प्रधान काव्य है। रघुवशी नृपो के चरित्र का मुख्यत चित्रण होने के कारण कवि अत्यन्त भावुक हो गया है जिससे काव्य मे भावो का अपूर्व सग्रह दीख पड़ता है साथ ही अलकारो का सौन्दर्य भी स्वाभाविक रूप से लक्षित होता है।

---

१ ध्व० १।४

कुमारसम्भव में भी कथानक भाव-अलंकारों के सम्मिलन का भव्य चित्र उपस्थित है। काव्य का पूरा कथानक ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि ने उसका अपनी समाधि दशा मे साक्षात्कार किया था और काव्य प्रतिमा से उसे वाणी में उतारा, जिससे कुमारसम्भव कालिदास के आराध्य शिव का कालमय काव्य बन गया, उनका सारा इतिवृत्त कवि की प्रतिभा से जगमगा रहा है। अथ से इति तक यह भावों का नन्दनवन लगता है। अलङ्कार स्वतः बसन्त की अमराई में भ्रमरों की भाँति लदबदा रहे हैं।

इन तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि कालिदास के काव्य में तीनों प्रकार की शैलियों का सुन्दर समन्वय हुआ है। मानव हृदय की परिवर्तनशील प्रवृत्तियों के अध्ययन एवं उनके अभिव्यक्तीकरण में वे विशेष दक्ष हैं। लोक का उन्हें गहन अनुभव है और उन अनुभवों के मार्मिक पक्ष-ग्रहण करने में अपूर्व कुशल है। इसीलिए तो आनन्दवर्धन एवं जर्मन कवि गेटे ने कालिदास के भावों की उदात्तता एवं कमनीयता की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

एक भावुक हृदय के साथ-साथ कालिदास में कला शिल्प का गहन चिंतन विद्यमान है। उन्होंने अपने काव्यों में अपनी एक स्वतन्त्र काव्य शैली का निरूपण किया जो एक पूरे युग का प्रतिनिधित्व करती है। उनकी रसमयी सुकुमारमार्गी शैली संस्कृत साहित्य का अक्षुण्ण निधि है। कालिदास के काव्य में अलङ्कारों का भी समुचित प्रयोग हुआ है। साहित्य शास्त्र में अलङ्कार को रस-भावादि का उपकारक शब्द-अर्थ का शोभावर्धक धर्म कहा गया है। शैली काव्य शोभा की जननी है। रस-भावादि के परिपुष्टि का प्रथम सोपान अलङ्कार है। अलङ्कार के लिए सरस वाक्य अपेक्षित है नीरस वाक्य विचित्रता का ही केवल उद्घोष करता है। यद्यपि अलङ्कार रस-भाव में उत्कृष्टता लाते हैं तथापि रस-भाव सर्वत्र स्वतन्त्र अलङ्कार नहीं है। अलङ्कार रस भाव के बाधक नहीं पूरक हैं। अलङ्कार अर्थ को चमत्कारिक ढङ्ग से सुस्पष्ट करते हैं, सुस्पष्ट अर्थ भावों को पुष्ट करते हैं तथा पुष्ट भाव, रस को अभिव्यंजित करते हैं जिससे शब्दार्थ काव्यत्व को प्राप्त करते हैं।

रस-भाव के सम्राट कालिदास की कविता-कामिनी स्वल्प विरल किन्तु अनमोल अलङ्कारों से सुसज्जित है। यह अलङ्कार स्वाभाविक रूप में बल्कि कहना चाहिए स्वतः ही आ गये हैं। इसके अतिरिक्त अर्थान्तरन्यास प्रतिवस्तूपमा आदि अलङ्कारों में भी कवि ने उतना ही सौन्दर्य भर दिया है।

कवि उपमा में सिद्धहस्त है।[1] नन्दिनी गाय दिलीप और सुदक्षिणा के मध्य वैसी ही शोभायमान हो रही है जैसे अहर्निशि के मध्य सन्ध्या। इसमें कवि ने

१ 'उपमा कालिदासस्य'

नदियों की संख्या में उपमा देकर वध (रक्तता) साम्य प्रस्तुत किया। उनकी उपमायें रमणीय भी हैं। 'स्वयम्वर में इन्दुमती जिन जिन राजाओं को छोड़ती जाती है उनके मुख मण्डल निराशा की ऐसी कालिमा से ढकते जाते थे जैसे राजमार्ग के उन महलों पर जिन्हें रात्रि के समय आगे बढ़ने वाली दीपशिखा पीछे छोड़ती चली जाती है।' शास्त्रीय उपमायें श्रुतेः रिवाय स्मृति स्वगच्छत' में दिखाई पड़ती है। उनके काव्य में उपमाओं का विपुल भण्डार भरा पड़ा है। रघुवंश में गङ्गा यमुना का उपमामय वर्णन विश्व साहित्य में अपना स्थान रखता है।

उत्प्रेक्षाओं के उदाहरण मेघदूत में दर्शनीय है—'मेघाच्छादित आम्रकूट का वर्णन मध्येश्याम स्तन इवभुवः'। दृष्टान्त भी द्रष्टव्य है—'सागरमुज्झित्वा कुत्र मण्डन नाङ्गनानाम् प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता, क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते' इत्यादि। अनुप्रास का उदाहरण 'वन्यायवदस्य शर गूरण्य' में दिखाई पड़ता है। इन अलङ्कारों के सुन्दर प्रयोग से यह मालूम होता है कि कवि ने अलङ्कार का प्रयोग भावों में तीव्रता एवं उत्कर्ष लाने के लिए किया विचित्रमार्गी कवियों के समान पाण्डित्यप्रदर्शन नहीं।

भाव-अलङ्कारों के सफल निर्वाह के साथ साथ इतिवृत्त का चारुता भी लक्षित होता है—कालिदास इस तथ्य को अच्छी तरह समझते थे कि कोरा अलङ्कार-वादिता एवं रसवादिता के बल पर काव्य कल्पना ही व्यर्थ है। कथानक के अस्तित्व के बिना काव्य निष्प्राण हो जाता है। इसलिए कथानक काव्य का अपरिहार्य अङ्ग है। काव्यशास्त्रियों द्वारा दिये गये महाकाव्य के लक्षण में दण्डी ने कहा है—'महाकाव्य की कथावस्तु कवि कल्पना प्रसूत न होकर किसी प्रसिद्ध आख्यान अथवा ऐतिहासिक वृत्त के आधार पर होना चाहिए।

इस दृष्टि से कालिदास के काव्यों में सजीवता पूर्णरूपेण विद्यमान है। रघुवंश की कथा प्रसिद्ध रघुवंशियों के कथानक पर आधारित है जिसके बीज इतिहास पुराण में मिल जाते हैं। कुमारसम्भव में भी भारतीय धर्मग्रन्थों में वर्णित शिव-पार्वती का सुप्रसिद्ध कथानक को प्रस्तुत किया गया है।

कवि ने इन कथानकों को भी सरासन बनाकर रखा है और वे स्वयं रमणीय अर्थ बनकर काव्य बन गये हैं—उसकी प्रबन्धता एवं नैरन्तर्य में कहीं भी शिथिलता लक्षित नहीं होती। सर्वाङ्ग दृष्टि से वे चुस्त एवं सुव्यवस्थित हैं।

मेघदूत की कथा अवश्य काल्पनिक है। इसका कारण यह है कि गीतिकाव्य के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसकी कथा प्रसिद्ध एवं ऐतिहासिक ही हो। काव्य-

शास्त्रियों के अनुसार—'मानव जीवन के एक ही पक्ष का उद्घाटन अथवा किसी एक ही पटल का चित्रण गीतिकाव्य का प्रतिपाद्य होना चाहिए।' गीतिकाव्य के लक्षण की इस कसौटी पर मेघदूत खरा उतरता है। उसमें विरही यक्ष एवं यक्षिणी की विरह अवस्थाओं के एक ही चित्र का वर्णन हुआ है। ऋतुवर्णन में तो ऋतुओं का ही चित्रण हुआ है।

इस प्रकार कालिदास के काव्य में कथानक का सौन्दर्य भी उचित रूप में पाया जाता है। अतएव हम कह सकते हैं कि सम्पूर्ण संस्कृत महाकाव्यों की समस्त विशेषता सम्पूर्ण रसात्मकता अकेले कालिदास की कृतियों में पायी जाती है। अलङ्कार-भाव-कथानक क्या नहीं है, उनके काव्य में। उनके ग्रन्थ में तीनों ऐसे घुल-मिल गये हैं कि उनमें उनका अलग अस्तित्व दृष्टिगोचर नहीं होता। इतना ही नहीं इतिहास का पुट भी उनके काव्य में विद्यमान है। रघु के वंश में किस के बाद कौन राजा हुआ इसका पर्याप्त ज्ञान हम रघुवंश से मिलता है। उनके चरित्र, उनकी गतिविधियों, उनके धार्मिक, राजनैतिक, दार्शनिक आदर्शों पर पूर्ण परिचय मिलता है। शम्बूक की कथा, परशुराम इत्यादि पौराणिक पुरुषों की कथा जो इतिहास का मुख्य अङ्ग मानी जाती है, उनके काव्यों में इतस्ततः बिखरी पड़ी हैं।

किन्तु एक महत्त्वपूर्ण एवं मुख्य तत्त्व जो कालिदास के काव्य का प्राणतत्त्व है—रस-वह सर्वातिशायी है। उनके काव्य में अलङ्कारों का भव्य विन्यास कथानक की सूत्रबद्धता एवं भावों की सजीव अभिव्यक्ति होते हुए भी—उनका पर्यवसान रस में होता है। वह छोटी सी बात भी कहते तो उसमें भी रसात्मकता अवश्य विद्यमान रहता है। किसी श्लोक को बाह्य दृष्टि से पढ़ने पर तो पाठक अवश्य उनके वस्तु वर्णन अथवा अलङ्कार वर्णन की प्रशंसा करेंगे, किन्तु उस श्लोक के अन्तस्तल में जाने पर, उसमें किसी-न किसी रस का अस्तित्व अवश्य मिल जायगा। प्रकृति के वर्णन नगरी के वर्णन पढ़ने पर उसमें हमें वस्तु वर्णन की झाँकी दिखाई पड़ेगी किन्तु उसकी पर्यालोचना करने पर शृङ्गार अथवा अन्य रसों का पुट अवश्य मिलेगा। अलङ्कार एवं वस्तु का तो रस में सदैव पर्यवसान होता है किन्तु एक आश्चर्य की बात यह है कि उनके काव्य में रस (अङ्ग) का भी पर्यवसान दूसरे रस (अङ्गीभूत) में होता हुआ दिखाई पड़ता है। रघुवंश का अज विलाप, कुमारसम्भव के रतिविलाप के चित्रण में शृङ्गार रस मधुर अभिव्यक्ति होते हुए भी उसका पर्यवसान करुण रस में हुआ है। वास्तव में यह कालिदास की बहुश्रुतता एवं महनीयता का चरम परिपाक है।

महाकवि को रस सिद्ध कवि कहा जाता है। अलङ्कारशास्त्रियों ने ध्वनि के—वस्तु ध्वनि अलङ्कार ध्वनि एवं रसध्वनि—यह तीन भेद किए हैं जिनमें वस्तु

अलङ्कार व्यंग्य हीन हैं।[1] आचार्य आनन्दवर्धन ने कहा है कि 'यद्यपि व्यंग्य व्यंजक भाव अनेक प्रकार से सम्भव है तथापि काव्य नाटकादि प्रबन्धों में रस को प्राधान्य देकर तद्-गुण अलङ्कारों की योजना करना चाहिए। विश्वनाथ, मम्मट, पण्डितराज जगन्नाथ इत्यादि सभी काव्यशास्त्रियों ने रस को ही काव्य में सर्वोत्तम स्थान (काव्यात्मा) दिया है।

साहित्यशास्त्र में शृङ्गार, वीर करुण हास्य, रौद्र, भयानक, बीभत्स अद्भुत और शान्त—यह नौ रस माने गये हैं। इनमें से शृङ्गार (संयोग विप्रलम्भ) और, रसों का कालिदास के काव्य में मुख्य (अङ्गी) रूप से निर्वाह हुआ है अन्य रस सहायक (अङ्ग) रूप में प्रयुक्त हुए हैं किन्तु कवि ने इन सभी रसों के वर्णन में अपनी वैदग्धी का समान रूप से परिचय दिया है।

यह कहना निष्प्रयोजन ही होगा कि कवि ने छन्दों गुणरीतियों का वर्णन अपने भावों एवं रसों के अनुकूल किया है। ये तत्त्व रस में गतिशीलता लाने के लिए प्रभूत-शक्ति प्रदान करते हैं। विप्रलम्भ शृङ्गार का वर्णन करने के लिए कवि ने मन्दाक्रान्ता और प्रसाद गुण की योजना की है। करुण रस के लिए कवि ने वैतालीय छन्द का प्रयोग किया है। मानव हृदय की तथा प्रकृति की चंचलता का वर्णन करने के लिए कवि ने द्रुतविलम्बित छन्द का ही चयन किया। इसी प्रकार युद्ध के भाषण वर्णन में अनुष्टुप छन्द को चुना। यह कवि की बहुविज्ञता का ही परिणाम था।

इन सबसे बढ़कर कालिदास के काव्यों का एक मुख्य पक्ष और रह जाता है वह है भव्यात्मकता जिसने उन्हें महाकवि की सरणि में बैठा दिया। उनकी भावों की अभिव्यंजकता अन्यत्रों को एक अनिर्वचनीय अनुभूति प्रदान करता है। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा भारतीय साहित्य में ही नहीं विश्व साहित्य में उन्हें प्रथम स्थान प्रदान करती है। उन्होंने महाकाव्य गीतकाव्य नाटकरचना—सभी में अपनी प्रखर बुद्धि का समान रूप से परिचय दिया है। उनके काव्य में भाव भाषा रस छन्द अलङ्कार गुण रीति इत्यादि सभी अपने पूर्ण सामञ्जस्य के साथ उच्च आसन पर विराजमान हैं। सम्भव है शेक्सपियर एकमात्र नाट्यनैपुण्य अथवा चरित्र चित्रण में कालिदास से कुछ बढ़कर हों किन्तु भारतीय आदर्शों के अनुसार काव्य की अन्तरात्मा रस का जैसा पूर्ण अभिव्यक्ति कालिदास के काव्यों में हुई है वह वास्तव में अद्वितीय है। सभी विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। उनकी काव्य-कला की असामान्य अभिव्यंजकता को देखकर ही तो आचार्य शिरोमणि आनन्दवर्धन ने उन्हें महाकवि की उपाधि से विभूषित किया।

'येनास्मिन्नतिविचित्रकविपरम्परावाहिनि संसारे कालिदासप्रभृतयो द्वित्राः पञ्चषा वा महाकवय इति गण्यन्ते।' ध्व०

[1] का० प्र० ५

तृतीय अध्याय

कालिदास के काव्य मे रस-व्यङ्ग्य

रस-सिद्धान्त भारतीय काव्य मनीषियो एवं कलाविदो की महत्तम उपलब्धि है। रस शब्द मात्र से ही भारतीय मनीषा तथा कलाकार की हृत्तन्त्री झङ्कृत होकर आनन्दोल्लास की तरङ्गो से मुखरित हो उठती है। काव्य के वास्तविक स्वरूप को लेकर भारतीय काव्य-शास्त्र म अलङ्कारवाद रीतिवाद, वक्रोक्तिवाद औचित्यवाद, ध्वनिवाद तथा रसवाद की धाराओ का उद्भव एव विकास हुआ। इन समस्त धाराओ मे ध्वनिवाद तथा रसवाद की दो धारायें अधिकाधिक देशकालजयी होकर अमरत्व को प्राप्त हो गयी हैं।

रस शब्द का अर्थ—

भारतीय वाङ्मय मे रस शब्द का प्रयोग अनेक अर्थो मे हुआ है। ऐतिहासिक कालक्रमण रस के अर्थ वैदिककाल म प्रारम्भ हुआ। आदि मे यह शब्द किसी वस्तु के सार के लिए प्रयुक्त हुआ था और क्रमश इस शब्द से भाव सुख और आनन्द का बोध होने लगा। इस प्रकार आध्यात्मिक जगत् में जो ब्रह्मानन्द का वाचक था, वही काव्य-जगत् म ब्रह्मानन्द सहोदर काव्यतत्त्व' का वाचक हो गया।

रस की परिभाषा—

भिन्न भिन्न काव्य-शास्त्रियो ने रस की परिभाषा भिन्न भिन्न प्रकार से की है। भरत का प्रसिद्ध रस सूत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति रस की परिभाषा के रूप मे सर्वत्र उद्धृत किया जाता है। यद्यपि भरत के सूत्र म रस की परिभाषा नहीं अपितु रस की निष्पत्ति की प्रक्रिया की ओर संकेत मिलता है किन्तु अधिकांश काव्यशास्त्री, रस की परिभाषा के रूप मे इसी सूत्र को उद्धृत करते हैं।[1] अतएव यह सूत्र रस सिद्धान्त का मूल बीज बन गया है। अस्तु।

'विभाव, अनुभाव एव व्यभिचारी के संयोग से रस-निष्पत्ति (अर्थात् उनसे सम्बद्ध स्थायीभाव की आनन्दमयी अनुभूति) होती है।' इस सूत्र मे संयोग और निष्पत्ति दो शब्द महत्त्वपूर्ण हैं और जिस किसी भी आचार्य ने परोक्ष या अपरोक्ष रूप मे रस—

सिद्धान्त की आलोचना प्रत्यालोचना की है, उनका समस्त विवेचन इन्हीं [redacted] शब्दों के आधार पर है। अधिकांश विद्वान् यह स्वीकारते हैं कि संयोग का अर्थ है – स्थायीभाव के अनुकूल विभाव-अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों का सम्मिलन। भरत ने स्वयं 'निष्पत्ति' शब्द की कोई व्याख्या नहीं की। प्रसिद्ध व्याख्याता आचार्य लोल्लट, श्री शङ्कुक, भट्टनायक आदि ने 'निष्पत्ति' की अपने अपने ढङ्ग से व्याख्या की। भट्टलोल्लट निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति करते हैं अर्थात् उनके अनुसार अनुकर्ता नट में रस की उत्पत्ति होती है। श्री शङ्कुक 'निष्पत्ति' का अर्थ अनुमिति करते हैं अर्थात् दर्शक विभावादि द्वारा नट में रस का अनुमान करता है। भट्टनायक निष्पत्ति का अर्थ भुक्ति करते हैं अर्थात् दर्शक विभावादि के संयोग से रस का भोग करता है।

ध्वनिवादी आनन्दवर्धन ने रस को व्यंग्य माना तथा निष्पत्ति का अर्थ अभिव्यक्ति किया है। ध्वनिकार के अनुयायी अभिनवगुप्त ने रस स्वरूप को व्यंग्य मानते हुए उपर्युक्त निष्पत्ति प्रकार को अपने ग्रन्थ लोचन में बड़े अनुक्रम एवं विस्तार से समझाया। बाद में आचार्य मम्मट, विश्वनाथ तथा पण्डितराज जगन्नाथ आदि सभी आचार्यों ने निष्पत्ति की प्रायः यही परिभाषा स्वीकार की।

इस प्रकार भारतीय वाङ्मय में रस की परिभाषा त्रिविध हो सकती है। जो आचार्य रस को विषयगत या वस्तुगत मानते हैं—उनके अनुसार नाट्यसौन्दर्य या काव्य सौन्दर्य ही रस है। उसकी अनुभूति सामाजिक या पाठक की हृदयादि अनुभूतियों के रूप में होती है। नाट्याचार्य भरत, अलङ्कारवादी भामह, रीतिवादी वामन एवं दण्डी तथा वक्रोक्तिवादी कुन्तक के अनुसार रस का यही स्वरूप हो सकता है। इन आचार्यों के अनुसार रस आस्वाद्य है।

जो आचार्य रस को विषयिगत मानते हैं वे रस को वस्तु में नहीं अपितु व्यक्ति की चेतना में स्थापित करते हुए नाट्य सौन्दर्य या काव्यसौन्दर्य जनित आनन्दानुभूति को ही रस की संज्ञा देते हैं। आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट, विश्वनाथ तथा पण्डितराज जगन्नाथ आदि आचार्यों को रस का यही स्वरूप मान्य है। इस प्रकार आनन्दवर्धन से लेकर अद्यतन यही परिभाषा रस का विश्वजनीन-सी हो गया है। इनके अनुसार रस स्थायीभाव का आनन्दमय आस्वाद रूप है।

रस के अङ्ग—

रस के प्रमुख तीन अङ्ग हैं—विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव। इन सब के सामान्य गुणयोग से ही रस-निष्पत्ति सम्भव बताई गयी है।[1]

---

१ नाट्यशास्त्र, पृष्ठ ९०

विभाव—

लोक मे प्रचलित हेतु कारण अथवा निमित्त शब्दो के लिए रस-शास्त्र मे पृथक् रूप से 'विभाव' शब्द का ग्रहण किया गया है। शास्त्र मे वाचिक, आङ्गिक एवं सात्त्विक अभिनय के सहारे चित्तवृत्तियो का विशेष रूप से विभावन अथवा ज्ञापन कराने वाले हेतु कारण अथवा निमित्त को 'विभाव' कहते हैं। 'विभावन' का अर्थ केवल ज्ञापन नही अपितु उसका अथ आस्वाद योग्यता तक पहुँचाना भी है। अतएव हम कह सकते हैं कि विभाव वासना-रूप मे अत्यन्त सूक्ष्म रूप से अवस्थित रति आदि स्थायीभावो को आस्वादयोग्य बनाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं—आलम्बन तथा उद्दीपन। चित्तवृत्ति विशेष के विषयभूत विभाव को आलम्बन कहते हैं और उस निमित्त रूप सामग्री को जिससे जाग्रत भाव अधिकाधिक उद्दीप्त होता है—उद्दीपन विभाव कहते है।[1] आलम्बन के पुन दो भेद होते हैं--विषय तथा आश्रय। रत्यादिभावो के जाग्रत होने मे कारण स्वरूप विभाव ही विषय कहलाते हैं तथा जिस व्यक्ति मे स्थायी-भाव जागरित होते हैं वह उनका आश्रय होने से आश्रय कहलाता है।[2]

अनुभाव—

भावजागर्ति के पश्चात् होने वाले अङ्ग-विकारो को अनुभाव कहते है। इनकी व्युत्पत्ति के अनुसार (अनु पश्चाद् भाव उत्पत्ति यषाम् अथवा अनुपश्चाद् भावो यस्य सोऽनुभाव) स्थायी भावो के जागरित होने के पश्चात् उत्पन्न होने के कारण इन्हे कार्यरूप ही मानना चाहिए।[3] आचार्य विश्वनाथ ने रसोद्बोध की दृष्टि से विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी तीनो को ही कारण माना है।[4] पण्डितराज जगन्नाथ भी रस की अनुभावना कराने वाले कारणो को अनुभाव कहते हैं।

व्यभिचारी भाव—

व्यभिचारी शब्द मे वि+अभि+चर् धातु का योग दिखाई पड़ता है। अतएव वाक् अङ्ग तथा सत्वादि द्वारा विविध प्रकार के रसानुकूल सचरण करने वाले भावो को व्यभिचारी अथवा सचारी भाव कहते हैं।[5] व्यभिचारी भाव स्थायी भाव के

---

१ रसगङ्गाधर, पृष्ठ ३३
२ सा० कौ०, पृष्ठ ८
३ सा० द० ३।१३२-३३
४ सा० द० ३।१४
५ ना० शा० कौ० पृष्ठ ८४

परिपोषक तथा उन्हें रसावस्था तक पहुँचाने वाले होते हैं। अस्थिरता उनका विशेष गुण है। स्थायी भाव के साथ इनका सम्बन्ध वारिधि के साथ कल्लोलों का सा है। उनका आविर्भाव तिरोभाव होता रहता है।[१] इसलिए उन्हें अचिर, अनवस्थित जन्म-वाला तथा संचारी भी कहते हैं। स्थायित्व में सहायक मात्र कहे जा सकते हैं। 'काव्य प्रकाशकार' ने स्पष्टतः इन्हें 'स्थायीभाव का सहकारी' कहा है।[२] इनकी संख्या तैंतीस मानी गयी है।

स्थायी भाव—

स्थायी भाव मानव मन की सूक्ष्म वृत्तियों से सम्बन्धित अथवा वासना रूप से प्रमाता के चित्त में सदैव रहने वाले भावों को कहते हैं। कारण के अनुपस्थित रहने पर भी स्थायी भाव की सत्ता रहती है जब कि शेष भाव कारण के अभाव में निःशेष हो जाते हैं। काव्य में स्थायी भाव ही अनुकूल विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से रस रूप प्राप्त करने में समर्थ होता है।

स्थायी भाव अपने विरोधी अविरोधी किसी भी भाव से नष्ट नहीं होते।[३] ये स्वयं दूसरे भावों को अपने में अन्तर्हित कर लेते हैं। अन्य भावों को अपने वशवर्ती कर लेते हैं। इनमें चिरकालस्थायित्व आप्रबन्ध स्थायित्व अथवा अविच्छिन्न प्रवाह-मयता होती है। स्थायीभाव चर्वणीय एवं आनन्ददायी होते हैं। स्थायीभाव की वासनारूपता के सम्बन्ध में अभिनवगुप्त ने सर्वप्रथम विचार किया, जिसका अनुसरण परवर्ती आचार्यों ने किया। भरत ने इनकी संख्या आठ मानी है।[४] कालान्तर में इनकी संख्या नौ दस तक पहुँच गयी। इनके नाम हैं—रति, शोक, हास, उत्साह, क्रोध विस्मय जुगुप्सा भय तथा निर्वेद। निर्वेद यद्यपि एक व्यभिचारी भाव भी है किन्तु सात्त्विक निर्वेद (ज्ञानजन्य) शान्त रस का स्थायीभाव माना गया है।

रस भेद—

मानव के अन्तस में जितने स्थायी भावों की कल्पना की जाती है उतने ही काव्य में रसों की संख्या की गणना की गयी है। जैसा कि अभी कहा गया है कि

---

१ दश रूपक ४।७
२ काव्य प्रकाश ४।२७-२८ सूत्र ४३
३ दशरूपक ४।३४। सा० द० ३।१७४, रस० ग० पृ० ३१
४ अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ॥ नाट्य० द०
५ भरत नाट्यशास्त्र ६।१५ १६

आचार्य भरत ने 'नाट्य शास्त्र' में आठ रस[1] और आठ स्थायी[2] भावों की गणना की है। महाकवि कालिदास भी विक्रमोर्वशीय में 'अष्टरस'[3] का ओर संकेत करते हैं। भरत द्वारा आठ रस और आठ स्थायीभाव के सिद्धान्त का समर्थन करने वाले काव्याचार्य यह कहते हैं कि भरत 'शान्त' को रस के रूप में मान्यता नहीं देते और वे 'शम' अथवा 'निर्वेद' का स्थायी भाव के रूप में उल्लेख करते हैं। इस प्रकार भरत से लेकर आचार्य भामह और दण्डी तक (शान्त रस को छोड़कर) आठ ही रस का सिद्धान्त काव्यशास्त्र में मान्य रहा।[4] आरम्भ में नाटक का प्रमुख उद्देश्य लोकरंजन ही था। अतएव शान्तरस का सर्वाधिक विरोध नाट्याचार्यों द्वारा हुआ। शान्तरस का सर्वाधिक विरोध करने वालों में नाट्याचार्य धनंजय और धनिक प्रमुख हैं।

कालान्तर में नाटक और काव्य भी आध्यात्मिक तथा धार्मिक सदुपदेश देने के उत्कृष्ट माध्यम बन गए। रामायण-महाभारत से ब्राह्मणी परम्परा के महाकाव्यों के अतिरिक्त बौद्ध और जैन कवियों और नाटककारों ने अनेक धार्मिक काव्य और नाटकों की रचना की।[5] इस प्रकार जीवन में त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) साधना के स्थान पर चतुर्वर्ग (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) साधना का आदर्श प्रचलित होने पर मोक्ष जीवन का चरम पुरुषार्थ माना जाने लगा। जीवन दर्शन में मोक्ष की महत्ता सर्वोपरि होने पर नाटक और काव्य के रसों में भी मोक्ष से सम्बन्धित 'शान्तरस' और शम अथवा निर्वेद स्थायीभाव को काव्य और नाटक में स्थान मिला।

उद्भट[6] प्रथम काव्याचार्य है जो नौ रस और नौ स्थायी भावों की गणना करते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि 'उद्भट' ने ही भरत के 'नाट्यशास्त्र' में नौ रस, नौ स्थायीभाव तथा शान्तरस से सम्बन्धित श्लोकों को जोड़ दिया। इससे यह सिद्ध होता है कि अभिनव से बहुत पूर्व ही उद्भट के समय तक 'शान्त' को रस रूप में स्वीकार कर लिया गया था। रुद्रट ने नौ रसों की संख्या में 'प्रेयान्' एक और रस को मिला लिया। अभिनव गुप्त ने रसों की संख्या पर विशेष विवाद नहीं किया, फिर

---

१ भरत नाट्यशास्त्र ६।१५-१६

२ वही, ६।१७

३ कालिदास विक्रम० ११।१८

४ एन० आफ० आर० पी० पृष्ठ २२

५ वी० राघवन दि नम्बर आव रसाज (१९४० ई०) पृ० २३

६ एन० आफ० आर० पी० पृ० १३

भी उन्होंने शान्त रस को नाट्य और काव्य दोनों में प्रतिष्ठा की। आचार्य मम्मट भी शान्त को नवम रस स्वीकारते हैं।[1] अभिनवगुप्त ने यह भी संकेत किया है कि कुछ विद्वान् तीन रसों की और कल्पना करते हैं—स्नेह, वात्सल्य और भक्तिरस, किन्तु उन्होंने इनकी पृथक् सत्ता स्वतन्त्र नहीं मानी।[2] आचार्य हेमचन्द्र भी इसी मत के समर्थक हैं।[3]

आचार्य विश्वनाथ 'स्नेह स्थायीभाव के आस्वाद को वात्सल्य रस' मानते हैं।[4] काव्यप्रकाशकार ने 'वात्सल्य और भक्तिरस को 'भावध्वनि' में अन्तर्भूत कर लिया है।[5] आचार्य मम्मट की यह मान्यता प्राचीन परम्परा से तो अनुप्राणित है ही साथ ही युक्तिसंगत भी है। वैसे तो सहृदयों की किसी भी चित्तवृत्ति का आस्वाद चमत्कारजनक प्रतीत हो सकता है किन्तु उन सभी चित्तवृत्तियों के आधार पर यदि रस की गणना की जाने लगेगी तो अनन्त रस हो जायेंगे किन्तु इस संख्या-गौरव से कोई लाभ भी न होगा।

प्रबन्ध काव्य में रस-योजन—

प्रबन्ध काव्य में किसी पात्र के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का क्रमबद्ध चित्रण होता है। अतएव अनिवार्यतः कवि को विषय-गत होना पड़ता है। यह सत्य है कि प्रबन्ध काव्य में कवि को रस चित्रण करने में विस्तृत आयाम या परिवेश मिलता है। किन्तु सहृदय कवि प्रबन्ध के समस्त अङ्गों (वस्तु, चरित्र चित्रण, देशकाल, उद्देश्य) में अपनी अनुभूति को अनुस्यूत कर देता है इसलिए काव्य में निबद्ध वस्तु अथवा विषय ऐतिहासिक वस्तु या विषय से भिन्न हो जाते हैं। यह प्रबन्ध वस्तु भी कवि की अनुभूति से रंग जाती है। उसकी कल्पना और अनुभूति से उसे एक कलात्मक रूप प्राप्त होता है। इस प्रकार कवि वस्तु या विषय के प्रति न्याय करता हुआ भी अपनी रसाभिव्यक्ति में कथानक से सहायता लेता है। फलतः सहृदय पाठक अथवा श्रोता भी उसमें उसी प्रकार तन्मय हो जाता है जिस प्रकार कवि तन्मय हुआ था। महाकाव्य की अपेक्षा खण्डकाव्यों में कवि का परिवेश बहुत लघु होता है, क्योंकि उसमें मानव जीवन के एक पक्ष का ही चित्रण होता है। इसलिए कवि को जितनी

---

१ का० प्र० सूत्र ४७ पृ० १३८

२ अभिनव भारती १।३४२

३ काव्यानुशासन।

४ सा० द० ३।२५१

५ का० प्र० सूत्र ४८ पृ० १४०

तीव्रानुभूति होगी, जितनी उसके राग में सत्यता होगी, जितना उसके चित्रण में स्वाभाविकता होगी, जितनी उसके शब्द चित्रण में काव्यमयता होगी उतनी ही उसके काव्य में सजीवता आयेगी।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि काव्य में रस की सत्ता अनिवार्य है। रसवादियों के अनुसार बिना रस वर्णन के काव्य निष्प्राण, कृत्रिम और अस्थायी हो जाता है। भामह का मत है कि 'काव्य' का उद्देश्य केवल एक ही है—आनन्द।[१] काव्य में रस की प्रधानता का उपदेश करते हुए आनन्दवर्धन ने स्पष्ट कहा है कि—प्राधान्येन कवि की प्रवृत्ति का निबन्धन रस बन्ध में ही होना चाहिए। इतिवृत्त-वर्णन उसका उपाय ही है, जैसे आलोक चाहने वाले व्यक्ति के लिए दीपशिखा।[२] सुकवियों के व्यापार के मुख्य विषय रसादि हैं अतएव उन्हें उनके निबन्धन में सदैव अप्रमादी होना चाहिए।[३]

अङ्गीरस तथा अङ्गरस—

प्रबन्ध काव्य में एक नायक के अतिरिक्त अनेक सहायक तथा उपनायक होते हैं और कभी कभी प्रतिनायक भी होते हैं। इसी कारण नायक, उपनायक तथा प्रतिनायक से सम्बन्धित अनेक स्थायीभावों पर आधारित अनेक रसों का समावेश होता है। उन अनेक रसों में से जो सर्वाधिक प्रधान रस होता है, वही अङ्गीरस की कल्पना माना जाता है और जो गौण होता है उसे अङ्गरस माना जाता है। काव्य में अङ्गीरस की कल्पना मूलतः भरत से ही प्रारम्भ हो जाती है। आनन्दवर्धनाचार्य ने भी इस बात पर विशेष बल दिया कि महाकाव्यों में एक अङ्गीरस और अन्य सहायक रस होने चाहिए।[४] भामह[५] दण्डी,[६] रुद्रट[७] आदि आचार्यों ने भी अङ्गीरस और अङ्गरस का विवेचन किया है।

काव्य में कौन-कौन-सा अङ्गीरस होना चाहिए, इस विषय में विश्वनाथ

१ काव्यालङ्कार १।२
२ ध्व० पृ० ३९९
३ ध्व० ४।५
४ ध्व० ३।२१, पृ० ४१५
५ काव्यालङ्कार १।२१
६ का० १।१८
७ काव्या० १६।५

का मन्तव्य है कि शृङ्गार, वीर, शान्त रसों में से कोई एक रस प्रधान रस महाकाव्य में हो सकता है।[1]

(अ) कुमारसम्भव में अङ्गी रस—

'कुमारसम्भव' महाकवि कालिदास का प्रथम महाकाव्य माना जाता है। काव्य के नामकरण से यह ध्वनित हो जाता है कि इसमें कुमार कार्तिकेय के जन्म की कथा का वर्णन किया गया है। काव्य का मुख्य कथानक शङ्कर पार्वती के प्रेमाख्यान तथा विवाह के माध्यम से विकसित हुआ है। काव्य के प्रारम्भ से ही कवि का मुख्य उद्देश्य शिव-पार्वती का संयोग कराना रहा है। इसलिए सम्पूर्ण काव्य-कलेवर में शृङ्गार रस की ही धारा प्रवाहित हुई है। यह शृङ्गार पूर्वराग से प्रारम्भ होकर प्रेम की समस्त अवस्थाओं को पार करता हुआ अन्त में (शङ्कर पार्वती के) संयोग (विवाह) में पर्यवसित हो जाता है। इसलिए प्राय अब कुमारसम्भव में प्रधान रस या अङ्गीरस शृङ्गार को ही स्वीकार करना चाहिए।

साहित्य शास्त्र के आचार्यों ने शृङ्गार को श्रेष्ठ तथा अधिक व्यापक स्वरूप में स्वीकार किया है।[2] आनन्दवर्धन ने भी इसे मधुर रस माना है (शृङ्गार एव मधुर परः प्रह्लादनोरस)। शृङ्गार रस दो प्रकार का होता है—संयोग[3] तथा विप्रलम्भ[4]। किन्तु दोनों ही अवस्थाओं में इसका स्थायीभाव रति ही है जो विभावानुभाव तथा व्यभिचारी भाव से पुष्ट होकर शृङ्गार रस रूप में प्रतिफलित होता है। नायक नायिका परस्पर इसके आश्रय एवं आलम्बन होते हैं। उनके परस्पर दर्शन कटाक्ष प्रस्वेद, रोमाञ्च, अश्रु, भ्रूविक्षेपादि आङ्गिक व्यापार अनुभाव कहे जाते हैं। इसमें तैंतीसों व्यभिचारी भाव होते हैं।

'कुमारसम्भव' के नायक शङ्कर एवं पार्वती हैं। काव्य में एक बात अवधेय है कि प्रारम्भ के पञ्चम सर्ग तक पार्वती आश्रय हैं तथा शिव आलम्बन क्योंकि यहाँ तक के कथानक में शिव को प्राप्त करने के लिए पार्वती की ओर से प्रयत्न होता है, किन्तु पञ्चम सर्ग के उपरान्त (पार्वती-तपस्या सिद्धि के पश्चात्) आश्रय शिव हो जाते हैं और आलम्बन पार्वती, क्योंकि अब शिव को पार्वती प्राप्ति के लिए त्वरा होती है। इस प्रकार उभयनिष्ठ होकर रति पूर्ण शृङ्गार योग्य बनती है।

१ सा० द०, ६।३१६
२ ना० शा० ६।४५ पृष्ठ ३००
३ सा० द० ३।२१०, पृष्ठ १४८
४ सा० द० ३।१८७, पृष्ठ २३३

शृङ्गार प्रधान होने के कारण कुमारसम्भव प्रेम-प्रधान काव्य है। संस्कृत साहित्य के प्रेमाख्यान-प्रधान काव्यों का अनुशीलन करने के बाद उनमें मुख्यत चार प्रकार के प्रेम का स्वरूप सामने आता है।

प्रथम प्रकार के प्रेम की झाकी हमें राम सीता के जीवन में लक्षित होती है। यह प्रेम विवाहोपरान्त स्वाभाविक रूप से प्रारम्भ होता है तथा जीवन की विकट परिस्थितियों के आने पर और अधिक निखर उठता है।

दूसरे प्रकार का प्रेम गान्धर्व विवाह के प्रसङ्गों में देखा जाता है। नायक-नायिका का अकस्मात् मिलन होता है और उनमें परस्पर अनुराग उत्पन्न हो जाता है फिर प्राप्ति के लिए व्याकुलता होती है। इस प्रकार की प्रेमकथा विवाह तक चलती है और विवाहोपरान्त उसका प्रसङ्ग ही समाप्त हो जाता है।

तीसरे प्रकार का प्रेम रत्नावली-प्रियदर्शिका इत्यादि नाटकों में दृष्टिगोचर होता है। वस्तुत वह प्रेम नहीं वरन् वह राजाओं के अन्त पुर में भोग विलास का चित्रण-मात्र है। इसमें प्रयत्न कहीं नहीं केवल फल योग है। उदयन सम्बन्धी प्रेमाख्यान में प्राय इसी प्रकार का प्रेम मिलता है।

और चौथे प्रकार का प्रेम वह है जो चित्र-दर्शन, स्वप्न दर्शनादि से उत्पन्न होता है और फिर प्राप्ति के निमित्त प्रयत्न होता है तदनन्तर विवाह-चित्रण के साथ समाप्त हो जाता है जैसे—उषा अनिरुद्ध का प्रेम नल-दमयन्ती का प्रेम।

'कुमारसम्भव' में भी वर्णित प्रेम चौथे प्रकार का है। इस काव्य के प्रथम सर्ग में विभावरूप पार्वती के सौन्दर्य का चित्रण, शृङ्गार रस का उत्कृष्ट पोषक है। क्योंकि कवि ने प्राय उन्हीं अङ्गों का वर्णन किया है जो यौवन के आने पर अङ्गना में विशेष आकर्षक हो उठते हैं जैसे मुख, स्मित, स्तन, कटि जङ्घा गति इत्यादि।

पार्वती की बाल्यावस्था धीरे-धीरे व्यतीत हो गयी और उनके शरीर में यौवन फूट पड़ा है, ऐसा यौवन जो शरीर रूपी लता का स्वाभाविक-शृङ्गार है जो मदिरा के बिना ही मन को मतवाला बना देता है और जो कामदेव का बिना फूलों वाला बाण है।[1] ऐसे अपूर्व यौवन को पाकर उनका शरीर उसी प्रकार निखर उठता है, जिस प्रकार तूलिका से ठीक-ठीक रङ्ग भरने पर चित्र खिल-उठता है और सूर्य की किरणों का संस्पर्श पाकर कमल खिल उठता है।[2] यौवन के मारे

१ कुमारसम्भव १।३१
२ कुमारसम्भव १।३२

से युक्त हुई जब वे हाव भाव से चलती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो उनके बिछुओं से निकलने वाली मधुर ध्वनि को सीखने के लिए ललचाए हुए राजहंसों ने अपनी हाव-भाव भरी चाल उन्हें पहले ही सिखा दी हो।[1] नाभि में प्रविष्ट रोमों की नयी सूक्ष्म रेखा ऐसी प्रतीत होती है जैसे नीवी और मेखला के मध्य जड़ी मणि अपनी नीली ज्योति बिखेर रही हो।[2] उनकी कमर अति कृश है और नवयौवन के कारण उदर पर पड़ी तीन रेखायें ऐसा प्रतीत होता है मानो कामदेव के चढ़ने के लिए नवयौवना ने सोपान बना रखा हो।[3] उनकी बाहुएँ शिरीष पुष्प से भी अधिक सुकोमल हैं - इसलिए तो कामदेव ने शिव से हार जाने पर उनके गले में इन्हीं भुजाओं का फन्दा बनाकर डाल दिया था।[4] पार्वती की गोल गोल सुडौल ग्रीवा तथा उनके उच्चस्तन पर पड़ा गोल मणियों का हार दोनों ही एक-दूसरे के शोभा वर्धक हैं।[5] चंचल रात्रि में चंचलमना लक्ष्मी निवास हेतु जब चन्द्रमा में जाती थी तो वह कमल की कोमलता सौरभादि से वंचित हो जाती थी और दिन में कमल में जाती थी तो उसे चन्द्रमा के सुख से हाथ धोना पड़ता था किन्तु जब से पार्वती के मुख में बसी है तब से उसे दोनों का आनन्द एक साथ प्राप्त हो जाता है। उनके रक्त होठों पर फैली हुई मधुर मुस्कान की धवलिमा ऐसी प्यारी लगती है जैसे लाल कोंपलों के मध्य श्वेत पुष्प खिला हो अथवा स्वच्छ मूँगे के साथ जड़ा हो।[6] वे जब मधुर वाणी बोलती हैं तब ऐसा लगता था मानो अमृत की धारा प्रवाहित हो उठी है।[7] बड़े बड़े नेत्रों की चितवन, आंधी में कम्पित नील कमलों के समान चंचल हैं उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि यह कला उन्होंने हरिणियों से सीखी है अथवा हरिणियों ने उनसे।[8] उनकी लम्बी भौंहें बड़े प्रयत्नपूर्वक मानो तूलिका से बनायी गयी हैं, जिसे देखकर कामदेव भी अपनी धनुष की सुन्दरता का जो घमण्ड लिए फिरता था—वह चूर चूर हो गया।[9]

---

१ कुमारसम्भव १।३४
२ कुमारसम्भव १।३८
३ कुमारसम्भव १।३९
४ कुमारसम्भव १।४१
५ कुमारसम्भव १।४२
६ कुमारसम्भव १।४४
७ कुमारसम्भव १।४५
८ कुमारसम्भव १।४६
९ कुमारसम्भव १।४७

उनके केशों की अनुपम सुन्दरता को देखकर हरिणियाँ भी अपने चँवरों पर इठलाना भूल जाती हैं।

कवि द्वारा पार्वती को विश्व की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी चित्रित करना सकारण था—बात यह थी कि विश्व के सृजनकर्ता ब्रह्मा जी पृथ्वी पर की सारी सुन्दरता समग्र रूप से एक स्थान पर देखना चाहते थे। इसीलिए तो उन्होंने सुन्दर अङ्गों में आने वाली सौन्दर्य की समस्त वस्तुओं को एक कर, बड़े ही यत्नपूर्वक उन्हें सब अङ्गों पर यथास्थान सज्जित कर सुन्दरता की एकमात्र मूर्ति पार्वती का निर्माण किया था।[२]

ऐसी दिव्य सौन्दर्य की अधिष्ठात्री पार्वती एक दिन जब अपने पिता हिमालय के साथ बैठी थीं, तो उसी समय कामचर नारद का आगमन होता है और उन्हें देखकर यह भविष्यवाणी करते हैं कि यह कन्या अपने प्रेम से शङ्कर की एकमात्र अर्धाङ्गिनी बनेगी।[३] नारद की यह उक्ति पार्वती के मन में शिव के प्रति प्रेम अंकुरित करने के लिए शृङ्गार का उद्दीपन बनती है, जैसे अन्य प्रेमाख्यानों में दूत, द्विज और वन्दीजनों के वचन उद्दीपन का कार्य करते हैं। किन्तु महाकवि इतने से ही सन्तुष्ट नहीं होता। जिस भूमि में उसने प्रेम अंकुरित किया है, उसको उस प्रेमांकुर के योग्य बनाने के लिए विविध परीक्षा लेता है। सर्वप्रथम तो यही कि नारद जैसे देवर्षि की त्रिकालसत्य वाणी सुनकर भी पिता हिमालय को कवि इतना विनीत एवं निरभिमानी नहीं बनाता कि वे अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को भूल कर कन्या को लेकर शिव के पास पहुँच जाते और उसे शिव के चरणों में समर्पित कर देते। ऐसा करने पर न प्रेमाख्यान बनता, न भूमि की योग्यता का पता चलता। अतः कवि कहता है कि 'हिमालय ने विचार किया, कि जब तक स्वयं महादेव जी कन्या माँगने नहीं आते, तब तक अपने आप उन्हें कन्या देने जाना उचित नहीं। क्योंकि जहाँ सज्जन लोगों को निरादर का भय रहता है, वहाँ वे अपने काम में किसी मध्यस्थ की सहायता लेते हैं।'"[४]

इस प्रकार आलम्बन को याचक रूप में प्रेम का आश्रय बनाने के लिए कवि ने एक दूर की मंजिल रखी है, जिस बीच प्रेमाग्नि में तपकर पार्वती ऐसी निखर उठेंगी कि परवर्ती प्रेमाख्यान के लिए आदर्श 'पति देवता' रूप में कही जायेंगी। इसी प्रसङ्ग में शङ्कर को कवि इस रूप में संयोग में आलम्बन बनाता है जिसकी साधना—

१ कुमार सम्भव १।४८ २ कुमार सम्भव १।४९
३ कुमार सम्भव १।५० ४ कु० स० १।५०

स्त्री लोग के वचन चंचल हैं। तब इसमें आश्चर्य क्या होता है? नारद ने तो आग लगा ही दी।

पिता साधन-सम्पन्न थे। शैलाश्रय में उनकी प्रतिष्ठा थी। निरन्तर तपोदान, स्वर तपस्या का फल देने वाले[1] भगवान् शङ्कर के तप में विघ्न करने होने पर भी अपनी पुत्री को सुश्रूषा की अनुमति देने के लिए राजी कर लेते हैं। वस्तुतः प्रेमाख्यान को औचित्य प्रदान करने के लिए ही कवि की कल्पना ने यह कथानक वर्णित किया है।

शिव धीरोदात्त नायक हैं। पार्वती जैसी कि अनिन्द्य सौन्दर्य अनुपम यौवन नितान्त एकान्त में उपासना के लिए प्रस्तुत सुन्दरी को भी सुश्रूषा के लिए निर्विकार चित्त से आना देते हैं — क्योंकि जो उच्च धीर महात्मा होता है उसका मन विकार उत्पन्न करने वाली वस्तुओं के बीच रहकर भी विचलित नहीं होता। अतः पार्वती प्रतिदिन नियमपूर्वक गिरीश की परिचर्या करने लगती हैं। पार्वती वहाँ रहकर नियम से प्रतिदिन पूजा के लिए फूल चुनकर विधि से वेदी को स्वच्छ कर नित्य कर्म के लिए जल और कुश लाकर बिना थकावट के उनकी सेवा करने लगती हैं क्योंकि महादेव के माथे पर बैठे हुए चन्द्रमा की शीतल किरण पार्वती की थकान सदैव मिटाती रहती है।[4]

पार्वती की यह परिचर्या शङ्कर के प्रति प्रेम का अनुभाव रूप है जिसमें प्रेम के प्रति उनकी आस्था व्यक्त होती है।

इसी बीच देवलोक में एक विशेष घटना घटती है जिसका सम्बन्ध संयोग से इन्हीं दोनों व्यक्तियों (शङ्कर-पार्वती) से है। इन्द्र की आज्ञा से मदन शिव को पार्वती के प्रति स्नेहमय बनाने के लिए प्रयत्न करने आता है क्योंकि शिव-पार्वती के संयोग से ही देवताओं का सेनापति उत्पन्न हो सकता है।[5] इसलिए मदन रति-वसन्त को साथ लेकर पूरे आटोप के साथ उस तपोवन में प्रवेश करता है जहाँ भगवान् स्थाणु का आश्रम है और वहाँ वसन्त अपने पूरे मादक प्रभाव के साथ व्याप्त हो जाता है।

---

१ कु० स० १।५७   २ कु० स० १।५९

३ विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ॥ १।५९

४ गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादैः ॥ १।६०

५ अमी हि वीर्यप्रभवं भवस्य जयाय सेनान्यमुशन्ति देवाः ॥ ३।१५

६ स माधवेनाभिमतेन सख्या रत्या च साशङ्कमनुप्रयातः ।
अङ्गव्ययप्रार्थितकार्यसिद्धिः स्थाण्वाश्रमं हैमवतं जगाम ॥ ३।२३

मलयानिल बहने लगता है,[१] सुन्दरियों के चरण स्पर्श की बिना प्रतीक्षा किए अशोक किसलय से आपूर्ण हो उठता,[२] (साल की मजरियों पर भ्रमरों की पंक्ति इस प्रकार बैठी है मानो वह मदन का नाम लिख रही हो), कचनार, सुगन्ध न रहने पर भी अपने रूप सौन्दर्य से चित्ताकर्षित कर लेता है, पलाश के फाके, लोहित पुष्प वनस्थली नायिका के शरीर पर नायक वसन्त द्वारा किए गए नखक्षत के समान दिखाई पड़ते हैं।[५] रसाल के अकुर का आस्वादन कर कषाय कण्ठ कोकिल, मधुर कूक करने लगा जो मानो मानिनियों को मान छोड़ने के लिए मदन महाराज की आज्ञा है।[६] इस प्रकार उस तपोवन के तपस्वी उस अकाल वसन्त समृद्धि को देखकर बड़े कठिनाई से अपने मन को वश में रख सके।[७] और तो-और तिर्यक एवं सभी स्थावर-जङ्गम वसन्त के उस प्रभाव से विचलित हो उठते हैं। भौंरा अपनी प्यारी भौंरी के साथ एक ही फूल की कटोरी में मकरन्द पान करने लगा, काला हरिण अपनी हरिणी को सींग से खुजलाने लगा, जो उसके स्पर्श का सुख लेती हुई बैठी है। हथिनी प्रेमपूर्वक पराग सुवासित जल अपने सूँड़ से निकालकर पिलाने लगती है।[८] किन्नर-राज गानों के बीच अपनी प्रियतमा के मुख का चुम्बन करने लगता है।[९] वृक्ष भी अपनी झुकी हुई डालियों को फैला-फैलाकर लताओं का आलिङ्गन करने लगते हैं।[११] किन्तु अप्सराओं के गीत नृत्यादि भी शिव पर आशिक प्रभाव न डाल सके, क्योंकि शिव सच्चे योगिराज थे। इन बाह्य आकर्षण से वे तनिक भी विचलित नहीं होते और ध्यान में लीन रहते हैं क्योंकि जो अपने मन को वश में कर लेते हैं उसकी समाधि को कोई भङ्ग नहीं कर सकता।[१२]

वसन्त का यह सारा वर्णन उद्दीपन विभाव रूप में हुआ है।

इधर कामदेव शङ्कर का सेवक नन्दी की आँख बचाकर शिव के समाधि-स्थल में पहुँच जाता है किन्तु उनके दुर्धर्ष रूप को देखकर मदन इतना भयभीत हो उठता है, कि उसके हाथ से उसके धनुष बाण छूटकर कब गिर पड़े उसे पता ही न चल

१ दिग्दक्षिणा गन्धवह ३।४२५
२ कु० स० ३।२६ ३ कु० स० ३।२७
४ [illegible] स० ३।२८ ५ कु० स० ३।२९
६ कु० स० ३।३२ ७ कु० स० ३।३४
८ कु० स० ३।३६ ९ कु० स० ३।३७
१० कु० स० ३।३८ ११ कु० स० ३।३९
१२ कु० स० ३।४०

गया।[1] इसी समय पार्वती अपनी सखियों के साथ शिव-पूजा निमित्त वहाँ आती हैं। उनका शृंगार लालमणि को भी लज्जित करने वाले अशोक के पत्तों के, सुनहरे कर्णिकार के, उज्ज्वल सिन्दुवार के वासन्ती आभूषणों से सुसज्जित है।[2] प्रातःकाल के सूर्य के समान लाल वस्त्र धारण किए हुए[3] तथा कटि में केसर-पुष्पों की मेखला पहने हुए[4] अनुपम सुन्दरी पार्वती को देखकर कामदेव को किंचित् धैर्य मिलता है और उसकी गुप्त शक्ति पुनः जाग्रत हो उठती है।[5] इसी समय पार्वती शिव को प्रणाम कर उनकी अर्चना कर, उनके गले में कमल की माला पहनाती हैं और इधर कामदेव ठीक समय समझकर अपना सम्मोहन नामक अचूक बाण धनुष पर चढ़ा लेता है।[6] पार्वती को देखकर महादेव के हृदय में कुछ हलचल-सी होने लगती है और वे पार्वती के बिम्ब के समान रक्त ओष्ठों पर अपनी ललचाई आँखें डालने लगते हैं।[7] परन्तु तत्काल ही महादेव जी सावधान हो जाते हैं और इन्द्रियों की चंचलता को वश में कर लेते हैं। मन में उत्पन्न हुए विकार का कारण जानने के लिए जब वह चारों ओर दृष्टिपात करते हैं तो देखते हैं, कि कामदेव वश अपना बाण उन पर चलाने वाला है।[8] तप में बाधा डालने वाले काम पर शिव इतना क्रोधित होते हैं कि उनके त्रिनेत्र से अग्नि-ज्वाला निकल पड़ती है और कामदेव तत्क्षण ही भस्म हो जाता है।[9] यह दृश्य देखकर पार्वती अपने रूप सौन्दर्य के प्रति बड़ी ही खिन्न हो उठती हैं। किन्तु अनुराग सद्भ की कामना इतनी प्रगाढ़ थी कि वह तपस्या द्वारा शिव को प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय करती हैं।[10] क्योंकि ऐसा निराला प्रेम तथा ऐसा निराला पति बिना तपस्या के नहीं प्राप्त हो सकता।

इस प्रकार तपोबल से शिव का प्रेम प्राप्त करने के लिए पिता द्वारा प्रदत्त समस्त सुख-ऐश्वर्य (भौतिक सुख) का त्याग कर एक पूर्ण तपस्विनी का वेश धारण करती हैं। दृढ़निश्चया पार्वती बहुमूल्य हार के स्थान पर प्रातःकाल के सूर्य के समान लाल वल्कल लपेट लेती हैं,[11] तथा वेणी के स्थान पर जूड़ा बना लेती हैं।[12] कमर में मूज की तिहरी मेखला तथा कोमल हाथों में रुद्राक्ष की माला ले लेती हैं।[13]

---

१ कु० सं० ३।५१
२ कु० सं० ३।५३
३ कु० सं० ३।५४
४ कु० सं० ३।५५
५ कु० सं० ३।५२
६ कुमार सम्भव ३।६५
७ कुमार सम्भव ३।६७
८ कुमार सम्भव ३।६९
९ कुमार सम्भव ६।७१
१० कुमार सम्भव ५।२
११ कुमार सम्भव ५।८
१२ कुमार सम्भव ५।९
१३ कुमार सम्भव ५।१०

पिता के गृह मे पर्यङ्क पर शयन करते समय पुष्पो से अङ्गो के दब जाने पर सीत्कार कर उठने वाला पार्वती अब अपने हाथो का तकिया बनाकर भूमि पर ही बैठे-बैठे सो जाती है।[१] तप के समय वे ऐसी शान्त दिखाई पड़ती हैं मानो उन्होंने अपना हाव-भाव कोमल लताओ को एवं चंचल चितवन हरिणियो को दे दी हो।[२] इस प्रकार पार्वती बड़े ही नियमपूर्वक अपनी तप-साधना प्रारम्भ करती हैं किन्तु कुछ दिनों के पश्चात् जब इन प्रारम्भिक नियमो से तप में इच्छित सफलता नही मिलती तो वह अपने शरीर की कोमलता का विचार त्यागकर और भी कठोर तपस्या आरम्भ करती हैं।[३] उनकी यह शारीरिक कोमलता तपस्या की आग मे तपती हुई, शिव के प्रति उनके रतिभाव को और भी अधिक व्यक्त करती है। पार्वती ने मुनियो के समान कठोर बाना ले लिया।[४] गर्मी के कष्टप्रद दिनो मे भी वह चारो ओर आग जला कर उसके बीच खड़ी रहने लगी तथा नेत्र घातक सूर्य के प्रकाश को जीतकर सूर्य की ओर एकटक हो देखने लगी।[५] किन्तु इस कठोर तप बेला में भी उनका मुख-कमल सूर्य की किरणो से तपकर कुम्हलाया नही वरन् कमल के समान खिल उठता है। क्योंकि प्रिय की प्राप्ति का उनमे उत्साह है। वर्षा के दिनो मे वह बरसे हुए जल को ही पीकर रह जाती हैं तथा रात्रि मे चन्द्र-किरणो से ही सन्तोष कर लेती हैं। इतना ही नही घनघोर वर्षा का झञ्झावातयुक्त रात्रियो मे वह खुले मैदान मे प्रस्तर खण्ड पर ही पड़ी रहती हैं।[६] पौष की रात्रियों में भी जब शीतल पवन तुषारपात करता हुआ प्रवाहित होता था तब पार्वती पूरी रात जल मे बैठकर व्यतीत कर देती हैं और चकवा चकवी का जोड़ा जो एक दूसरे से वियुक्त होकर करुण क्रन्दन करता है, उन्हें धैर्य बँधाया करती हैं।[८] अब तक स्वयं झड़कर गिरे हुए पत्तो को खाना ही तप की पराकाष्ठा समझी जाती रही किन्तु हमारी प्रियम्वदा ने तो उसे भी छोड़ दिया है[९] और अपर्णा बन गयी हैं। इस प्रकार अपने सुकोमल अङ्गो को तपस्या की आग मे अहर्निश सुखाकर पार्वती ने कठिन शरीर से घोर तप-सिद्धि करने वाले तपस्वियो की तपस्या को भी अवर कर दिया है।[१]

पार्वती की उपयुक्त सारी चेष्टायें शिव के प्रति रति भाव की अनुभाव विभाव रूप ही कही जायेंगी। इस तपस्या से कैलाशपति की समाधि भी दहल उठती है और

---

१ कुमार सम्भव ५।१२ २ कुमार सम्भव ५।१३
३ कुमार सम्भव ५।१८ ४ कुमार सम्भव ५।१९
५ कुमार सम्भव ५।२० ६ कुमार सम्भव ५।२२
७ कुमार सम्भव ५।२५ ८ कुमार सम्भव ५।२६
९ कुमार सम्भव ५।२८ १० कुमार सम्भव ५।२९

वे ब्रह्मचारी वेश धारण कर तपोवन में स्वयं उपस्थित होते हैं, क्योंकि अभी मौलिक (५।५१) पराकाष्ठा बना था। पार्वती वहाँ ही श्रद्धा से अतिथि का सत्कार कर तपोवन में संलग्न होती है। ब्रह्मचारी आतिथ्य स्वीकार कर उनसे कुशल क्षेम पूछते हैं— हे देवि ! आपको इस तपोवन में हवन योग्य समिधा, कुशा तथा स्नान योग्य जल मिल जाता है न ? तथा आप शरीर की शक्ति के अनुसार ही तप कर रही हैं न ? क्योंकि धर्म के जितने भी काम हैं उनमें शरीर रक्षा सर्वप्रथम काम है। पुनः तपस्या का कारण जानने के लिए पूछते हैं कि वंशों के बीच में आपका जन्म हुआ है। शरीर भी आपका त्रैलोक्यातिशायी सुन्दर है, धन का पूर्ण सुख प्राप्त है फिर भी आपको तप करने की क्या आवश्यकता आ पड़ी।[2] यदि आप स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा से तप कर रही हैं तो तपस्या व्यर्थ है क्योंकि आपके पिता हिमालय का जितना राज्य है उतने में तो देव बसा करते हैं। और यदि आप योग्य पति पाने के लिए तपस्या कर रही हैं तो भी तपस्या व्यर्थ है क्योंकि संसार में ऐसा कोई पुरुष नहीं है जिसको प्राप्त करने के लिए आपको इतना कष्ट झेलना पड़े।[3] अच्छा यह तो बताइए कि आप यह तपस्या कब तक करती रहेंगी। मैंने ब्रह्मचर्य की अवस्था में बहुत सी तपस्या इकट्ठी कर रखी है आप उसका आधा भाग लेकर अपनी इच्छा पूरी कर लीजिए किन्तु इतना तो बताइए कि वह पुरुष कौन है[4] ?

शिव के इन प्रश्नों में बहुत दबाने पर भी पार्वती के प्रति अनुराग कहीं-कहीं फूट ही पड़ा है तथापि यह पार्वती-गत रतिभावना को जानने के लिए उद्दीपन का काम करते हैं जैसे अग्नि को सुलगाने के लिए डाला गया घृत।

ब्रह्मचारी के इस आत्मीयता पूर्ण वचन को सुनकर पार्वती लज्जित हो उठती हैं और मुँह से कुछ नहीं कह पातीं। अतएव नेत्रों को किंचित् घुमाकर सखी को बोलने के लिए संकेत करती हैं। यहाँ नेत्र टेढ़ा करना अनुभाव तथा लज्जा व्यभिचारी भाव की सुन्दर व्यंजना हुई है। तपस्या का कारण सखी द्वारा कहलाकर यहाँ पर कवि ने लज्जा के अवगुण्ठन में आवृत पार्वती के भी इस वचन का एक बहुत बड़ा अवसर निकाला है और सखी मुख से पूर्वराग विप्रलम्भ की सारी अवस्थाओं का मार्मिक वर्णन विश्वस्त रूप से प्रिय के सम्मुख करवाया है। पार्वती तपस्या का कारण बताते हुए सखी ब्रह्मचारी से कहती है—

---

१ कुमार सम्भव ५।३३

२ कुमार सम्भव ५।४१

३ कुमार सम्भव ५।४५

४ कुमार सम्भव ५।५०

५ कुमार सम्भव ५।५१

"कामदेव ने शिव के ऊपर जो बाण चलाया, वह तो उनके हुङ्कार मात्र से ही लौट गया, किन्तु भस्मीभूत हुआ, काम का वही बाण मेरी प्रिय सखी के हृदय में लगकर भारी घाव कर गया है"।[1]

यहाँ कार्यावस्था व्यंग्य हो रहा है।

"तभी से इनकी प्रेमाग्नि इतनी तीव्र हो गयी है कि वेणी में हरिचन्दन से लगाने पर और शिलाखण्ड पर लेट रहने पर इन्हें किसी प्रकार चैन नहीं मिलता"[2]

यहाँ सञ्ज्वरावस्था व्यंग्य हो रही है।

जब यह महादेव जी के गीत गाने लगती हैं तो इनके करुण स्वर सुनकर वनवासिनी किन्नरी राजकुमारियाँ भी रोने लगती हैं।[3]

यहाँ प्रलापावस्था व्यंग्य हो रही है।

रात्रि के प्रथम प्रहर में ही आँख लगी नहीं कि शीघ्र ही चौंककर यह बड़बड़ाती हुई जाग उठती हैं कि—हे नीलकण्ठ! तुम कहाँ जा रहे हो और स्वप्न में पास में अपनी बाहुएँ फैलाती हैं, मानो शिव जी के कण्ठ में हाथ डालकर उन्हें रोक रही हो।[4]

यहाँ उन्मादावस्था व्यंग्य हो रही है।

निद्रावस्था में ही उठकर यह स्वनिर्मित शङ्कर के चित्र को ही वास्तविक शङ्कर समझकर उलाहना देने लगती है कि—"आप तो सर्वव्यापी हैं, फिर आप मेरे हृदय की पीड़ा को क्यों नहीं जान पाते—जो आपको सच्चे मन से प्यार करता है।[5]

यहाँ प्रतिकृति-स्थान अवस्था व्यंग्य हो रहा है।

भावों की इन उक्तियों में प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं का सुन्दर चित्रण है तथा इन अवस्थाओं के माध्यम से व्यक्त अनुभावों द्वारा शिव-विषयक रति की सुन्दर व्यंजना हुई है। जिस समय सखी तप के कारणों का निवेदन कर रही थी, उस समय में शङ्कर के प्रेम भाव बहुत कुछ व्यक्त से होने लगे किन्तु अपने हृदय को बिना व्यक्त किए वह पार्वती से फिर पूछते हैं—'क्या यह सत्य है अथवा विनोद'।[6] इसमें शिव की उत्कण्ठा अभिव्यक्त होती है किन्तु अत्यन्त लज्जाशीला पार्वती कुछ बोल नहीं पातीं। कुछ क्षण पश्चात् लज्जा के कठोर आवरण को भे

---

१ कुमार सम्भव ५।५४
२ कुमार सम्भव ५।५५
३ कु० स० ५।५६
४ कु० स० ५।५७
५ कु० स० ५।५८
६ कु० स० ५।६२

कर किस प्रकार कहता है¹— यह तो मैं उन्हीं (शङ्कर) की प्राप्ति करने के लिए कर रहा हूँ।"² पार्वती के वचन सुनकर शङ्कर जी पार्वती के प्रेम की परीक्षा लेने के लिए शिव की बड़ी निन्दा करते हुए कहते हैं—'आप भी किस अयोग्य से प्रेम करने लगीं। विवाह के मङ्गल-सूत्र से सुशोभित आपका यह हाथ शङ्कर के सर्प लिपटे हाथ को किस प्रकार छू सकेगा।³ हंस छपी चुँदरी और और छपी रक्त की बूँदें टपकती खाल पहने महादेव जी का कोई मेल नहीं हो सकता।⁴ महावर लगे अपने पैरों को श्मशान की भूमि में कैसे रखोगी।⁵ मतवाले हाथी को छोड़कर बूढ़े बैल पर बैठकर जब आप पतिगृह जायेंगी तो सभी आपका परिहास करेंगे।⁶ श्रेष्ठ वर में जो गुण माने जाते हैं उनमें से एक गुण भी महादेव जी में नहीं हैं अतएव महादेव को पति बनाना आपके लिए उचित नहीं है। इस प्रकार (शङ्कर) महादेव जी को सब प्रकार से अयोग्य सिद्ध करते हैं।

ब्रह्मचारी के यह परीक्षा वाक्य स्त्रीशक्ति को मर्यादित करने में पहचान का कार्य करते हैं। ये उद्दीपन रूप में हैं और इनसे सञ्चारी भाव क्रोध का उदय होता है।

ब्रह्मचारी की अप्रिय उक्तियों को सुनकर पार्वती क्रोधातुर हो उठती है। अतिशय क्रोध के कारण वह काँपने लगती है और कठोर वचन कहती हैं।⁷ आप निश्चय ही महादेव जी को भली प्रकार नहीं जानते क्योंकि जो मूर्ख लोग होते हैं वे महात्माओं के असाधारण कार्यों की निन्दा करते हैं।⁸ अकिंचन होते हुए भी समस्त सम्पत्तियाँ उन्हीं से उत्पन्न होती हैं। वह त्रिलोक के स्वामी हैं। उनका वास्तविक स्वरूप संसार में कोई नहीं समझ सकता।⁹ संसार में जितने रूप दिखाई पड़ते हैं सब उन्हीं (शिव) के हैं इसलिए उनका शरीर गहनों से चमकता हो अथवा सर्पों से लिपटा हो, हाथी की खाल धारण किए हो अथवा वस्त्र धारण किए हो, गले में नरकपाल की माला पहने हो या मस्तक पर चन्द्रमा धारण किए हो¹⁰ यह सब कुछ भी विचारणीय नहीं है कि वे कैसे हैं कैसे नहीं हैं। उनके शरीर का स्पर्श प्राप्त कर चिता की राख भी पवित्र हो जाती है उनके नृत्य में गिरी हुई भस्म को देवगण बड़ा

---

१ कु० सं० ५।६३ २ कु० सं० ५।६४
३ कु० सं० ५।६६ ४ कु० सं० ५।६७
५ कु० सं० ५।६८ ६ कु० सं० ५।७०
७ कु० सं० ५।७४ ८ कु० सं० ५।७५
९ कु० सं० ५।७७ १० कु० सं० ५।७८

श्रद्धापूर्वक मस्तक पर लगाते हैं।[1] खैर, आपने उन्हें जैसा सुना, वे वैसे ही सही, परन्तु मेरा मन तो उन्हीं में रम गया है। जब किसी का मन किसी में लग जाता है, तब वह जनश्रुति पर ध्यान नहीं देता।[2] पार्वती के इन वचनों से शिव के प्रति उनके एकनिष्ठ प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। उनका यह स्नेह भावना मञ्जिष्ठा राग की अवस्था तक पहुँच चुकी है और अब वह शिव की तनिक भी निन्दा नहीं सुन सकती हैं। अतएव जब यह देखती हैं ब्रह्मचारी फिर कुछ कहना चाहता है तो वह अपनी सखी से कहती हैं—इस ब्रह्मचारी के होंठ फड़क रहे हैं और यह कुछ कहना चाहता है। इससे कह दो कि अब यह कुछ भी न बोले क्योंकि जो बड़ों की निन्दा करता है केवल उसे ही पाप नहीं लगता जो सुनता है उसे भी पाप लगता है।[3] इतना कहकर पार्वती चलने के लिए ज्यों ही पैर उठाती हैं किन्तु यह क्या? परीक्षित की जगह स्वयं आराध्य अपने वास्तविक रूप प्रकट कर मधुर मुस्कान सहित उनका हाथ पकड़ लेते हैं।[4]

अब शिव को देखकर पार्वती के जो भाव उठे, उनको अभिव्यक्ति देने के लिए कालिदास की सारी काव्य प्रतिभा एक साथ मुखरित हो उठी है। ऐसा प्रसंग किसी महाकवि को अपने काव्य में देखने का सौभाग्य नहीं मिला है। भावों के सन्धि की यह मनोरम अभिव्यक्ति कालिदास की अनुपम निधि है। इस गङ्गा-जमुनी में अवगाहन कर सहृदय समाज अनन्त काल तक आनन्दमग्न हुआ करेगा। शिव को देखकर पार्वती के शरीर में कँपकँपी छूटने लगती है और वह स्वेद परिपूरित हो जाती हैं, उनके पैर वहीं रुक जाते हैं तथा किंकर्तव्यविमूढ़ हो न आगे ही बढ़ पाती हैं न खड़े ही रह पाती हैं।[5] शिव जी कहते हैं—हे सुन्दरी! आज से तुम मुझे तप द्वारा खरीदा हुआ अपना दास समझो।[6]

जैसा कि कहा गया है कि पार्वती-तपस्या प्रसङ्ग में सर्वत्र अनुभावों की ही अभिव्यक्ति हुई है। ब्रह्मचारी द्वारा तप कारण पूछने तथा शिव निन्दा करना ये प्रसङ्ग उद्दीपन विभावान्तर्गत आते हैं। पार्वती द्वारा ब्रह्मचारी को बुरा-भला कहना, वहाँ से उठकर जाने लगना, तत्पश्चात् कँपकँपी छूटना, स्वेद प्रस्रवण होना, अनुभाव हैं, असूया, मोह, स्तम्भ, जड़ता व्यभिचारी भाव हैं। अब वियोग की कालरात्रि समाप्त होती है, संयोग तो हो ही गया, किन्तु अभी वियोग का उषाकाल में ही दोनों को

---

१ कु० स० ५।७६ | २ कु० स० ५।८२
३ कु० स० ५।८३ | ४ कु० स० ५।८४
५ कु० स० ५।८५ | ६ कु० स० ५।८६

करना पड़ता। जैसा कि पहले कह चुके हैं—अब आश्चर्य चकित होकर पार्वती है। अतः कठोर तप साधना से पार्वती ने शीघ्र ही शिव को प्राप्त कर लिया किन्तु उनके साथ शीघ्र ही चला जाना उचित न था। तथा कन्या पक्ष से वचन लिए बिना विवाह पूर्व शिव का सम्पर्क हो सके ऐसा नहीं अपितु सामाजिक व नियमों का भी उपयुक्त माना है। व्यक्ति का अपनी पुत्री के गुण से भार में बन्धा है कि उसका विवाह करना या न करना भार उस पर है। अतः लौकिक आचार अनुसार विवाह करना उचित है या उनसे उनका आदर आना चाहिए।[1]

कालिदास की सभी नायिकाओं में पार्वती उत्तम प्रेम के रूप में आदर्श की उन्नायक है। वसन्त ... कहा है —गौरव। प्रेम में व्याकुल होकर भी उसने अपने मन में कुछ नहीं कहा था। इस बात को सुनकर महर्षि जी कितना स्पष्ट और कितना व्याकुलता हुई होगी यह केवल उनका प्रेम ही जान सकता था। वह पहले ही अनिच्छापूर्वक तथास्तु कहकर पार्वती को पत्नी रूप में स्वीकार करने की अनुमति दे चुके हैं।[2] सप्तर्षि अरुन्धती को स्मरण करते हैं तथा उनसे विवाह की सूचना देकर हिमराज के पास में जाने के लिए निवेदन करते हैं।[3] तत्पश्चात् वह प्रसन्नतापूर्वक गिरिराज के पास आते हैं तथा बड़ी विनम्रतापूर्वक भगवान् शिव एवं पार्वती के विवाह के लिए प्रार्थना करते हैं।[4] हिमराज तथा मेना ... अब ऋषियों की बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। किन्तु गृहस्थ विवाह जैसे शुभ कार्यों में पत्नी की अनुमति लेना उचित समझते हैं अतएव वह अपनी पत्नी मेना से स्वीकृति लेकर —अपनी पुत्री की ओर देखते हैं किन्तु पार्वती कुछ भी न कहकर मुख नीचा किये लीला कमल के पत्र गिनने लगती है।[5] कुमारसम्भव का यह दृश्य बड़ा ही मार्मिक तथा सहृदय हृदय हारी बन रहा है। अपने पूज्य पिता तथा सप्तर्षियों के समक्ष पार्वती किस प्रकार अपने विवाह करने की बात कह सकती है इसलिए वह मुख सिर नीचा कर लेती है और कमल के पत्ते गिनने लगती है। इससे विवाह के प्रति उनकी स्वीकृति की अभिव्यक्ति हो जाती है। यहाँ कमल पत्र गणना अनुभाव तथा अवहित्था व्यभिचारी भाव की सुन्दर व्यंजना हुई है।

हिमराज की अनुमति के पश्चात् विवाह की तिथि तीन दिन पश्चात् निश्चित होती है। यह तीन दिन उनके लिए युग है। शिवजी जो पार्वती को प्राप्त करने के लिए

---

१ कु० सं० ६।१

२ कु० सं० ६।२

३ कु० सं० ६।३

४ कु० सं० ६।३८

५ कु० सं० ६।८८

६ कु० सं० ६।८४

अधीर हैं, उनके लिए कवि ने जान-बूझकर कर बीच में तीन दिन का समय रखा है।[1] भगवान् शङ्कर देवात्मा हैं, उनके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं। वह चाहते तो एक दिन में विवाह हो सकता था, किन्तु कवि पार्वती के साथ भी काव्य न्याय (Poetic justice) करना चाहता है। जिस पार्वती ने शिव को प्राप्त करने के लिए वर्षों घोर तप किया तथा कष्ट सहा उस पार्वती को प्राप्त करना सहज ही न था। उसे प्राप्त करने के लिए शिव को भी तपस्या करनी पड़ेगी, कष्ट सहना पड़ेगा, जिससे वह वियोग व्यक्ति की व्याकुलता का अनुभव कर सके।

प्रेम में जब तक नायक नायिका दोनों में समान व्याकुलता नहीं होगी, तब तक उनका प्रेम अनन्य नहीं कहलायेगा। अतः शिव पार्वती की प्रेम-भावना में और अधिक निखार लाने के लिए महाकवि ने विवाह के लिए तीन दिन का समय रखा। तभी तो वह कहता है— पार्वती जी से मिलने के लिए महादेव जी इतने उतावले हो उठे कि तीन दिन भी उन्होंने बड़ी कठिनाई से व्यतीत किए। जब महादेव जी जैसा (जितेन्द्रिय) का प्रेम में यह दशा होती है तब भला दूसरे लोग अपने मन को कैसे संभाल सकते हैं।[2]

वियोग की कठिन वेला समाप्त हुई और विवाह का शुभ मुहूर्त आ ही गया। विवाह अवसर पर पार्वती के रूप-शृङ्गार का एक बार पुनः विशद चित्रण हुआ है। इस प्रसंग को पिष्टपेषण न समझना चाहिए। कुमार सम्भव में पार्वती का रूप वर्णन कई स्थलों पर किया गया है, किन्तु सब जगह उसका आधार भिन्न भिन्न है। यहाँ पार्वती के सौन्दर्य वर्णन विवाहयोग्य बताने के लिए हुआ है, विवाह के समय मङ्गल स्नान करने से पार्वती का शरीर अत्यन्त निर्मल हो गया है तथा विवाह के वस्त्र पहन हुए वह स्वच्छ तथा कास के पुष्पों से आच्छादित पृथ्वी के समान सुशोभित हो रही है।[3] स्त्रियों ने अगर चन्दन के धुएँ से उनके बाल सुखा कर बालों में पुष्प गूँथ दिए, पुष्पों की माला जूड़े में लपेट दी,[4] शरीर पर अङ्गराग लगा दिया तथा लाल वर्ण गोरोचन से उनका शरीर सज्जित कर दिया।[5] कानों से लटकते हुए जौ के अंकुर तथा लोध्र पुष्प एवं गोरोचन लगे हुए उनके गोरे-गोरे गाल बड़े ही आकर्षक प्रतीत होते हैं। स्वर्णाभूषण धारण कर पार्वती का स्वाभाविक सुन्दरता तो द्विगुणित हो उठता है। अपने इस सजीले रूप को दर्पण में देखकर स्वयं पार्वती

१ कु० स० ६।९३ | २ कु० स० ६।९४
३ कु० स० ७।११ | ४ कु० स० ७।१४
५ कु० स० ७।१५ | ६ कु० स० ७।१७

को ठगी-सी रह जाती है[१] और शिव से मिलने के लिए उतावली हो उठती हैं।
यहाँ पार्वती द्वारा उतावली हो उठना इत्यादि अनुभाव तथा औत्सुक्य विस्मय व्यभिचारी भाव की सुन्दर व्यंजना हुई है। कालिदास के शङ्कर भी सौन्दर्य में पार्वती से किसी प्रकार कम न थे। शृङ्गार के लिए लायी हुई सामग्रियों के स्पर्श मात्र से ही उनके शरीर पर लगी चिता की भस्म अङ्गराग बन गया, कपाल ही गले के आभूषण बन गए, हस्तिचर्म ही दुकूल बन गया।[२] मस्तक पर स्थित त्रिनेत्र ही हरताल का सुन्दर तिलक बन गया, चन्द्रमा ही चूड़ामणि बन गया।[३] अङ्गों पर स्थित सर्प उन-उन अङ्गों के आभूषण बन गए। मस्तक में स्थित चन्द्रमा चूड़ामणि बन गया।[४] जो उनकी अद्भुत विभूतियाँ थीं वे सब उनके सहज सुन्दर विरूप को और मनोरम करने के लिए अलङ्कार बन गयीं। बारात लेकर शङ्कर बड़े धूम धाम से इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान करते हैं। वर के उस अप्रतिम रूप की चर्चा जन जन में हो रही है। पौर स्त्रियाँ तो उनके रूप लावण्य को देखकर अपनी सुध-बुध ही भुला बैठती हैं। हिमवान बड़े ही आदरपूर्वक उनका सत्कार करते हैं तथा सेवक गण शिव को पार्वती के समीप ले जाते हैं।[५] जैसे शरद के आने पर लोग प्रसन्न हो जाते हैं वैसे ही चन्द्रमुख वाली पार्वती को देखकर शङ्कर के नेत्र रूपी कुमुद खिल उठते हैं। पार्वती तथा शङ्कर जी के नेत्र कुछ क्षण के लिए मिलकर फिर छूट जाते हैं और इस प्रकार एक दूसरे को देखकर उनके हृदय में बड़ी लज्जा आती है।[६] इसी बीच पुरोहित ने पार्वती का हाथ शिव के हाथ में रख दिया। हाथ पकड़ते ही पार्वती रोमाञ्चित हो जाती हैं और महादेव जी की अँगुलियों से भी प्रस्वेद होने लगता है।[७] अग्नि के चारों ओर जब वे परिक्रमा करने लगते हैं तब एक दूसरे को छूने के कारण पार्वती एवं शङ्कर जी आँख मूँद कर उस स्पर्श का आनन्द लेने लगते हैं।[८] शिव पार्वती के सात्विक भावों से उनका परस्पर रतिभाव बड़े मनोरम ढङ्ग से अभिव्यक्त हुआ है।

परस्पर नेत्र मिलन, गात्र स्पर्श, पसीना छूटना, तथा रोमाञ्चित होना इत्यादि अनुभाव हैं—हर्ष, मोह, व्रीड़ा इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं।

विवाह पश्चात् अब शिव-पार्वती की रति (भाव) संयोग में परिणित हो जाती है। कवि ने उनके संयोग शृङ्गार वर्णन को बड़े ही व्यापक रूप से किया है। कुमार

१ कु० स० ७।१२ — २ कु० स० ७।३३
३ कु० स० ७।३३ — ४ कु० स० ७।३४
५ कु० स० ७।७४ — ६ कु० स० ७।७५
७ कु० स० ७।७६ — ८ कु० स० ७।८०

सम्भव का अष्टम सर्ग संस्कृत साहित्य का यथार्थ शृङ्गार छलकता घट कहा गया है। इस सर्ग के प्रारम्भ में ही कवि पार्वती का चित्रण मुग्धा नायिका[1] रूप में करता है। एकान्त में जब कभी शिव जी उनसे कुछ पूछते हैं तो वह लज्जा के कारण कुछ भी नहीं कह पाती।[2] जब वे अंचल खींचते हैं तो वह भागने लगती हैं। जब वह आलिङ्गन करना चाहते हैं तो वह शान्त बैठी रहती हैं तथा जब चुम्बन करना चाहते हैं तो अपना अधर ही उनकी ओर नहीं बढ़ाती। एकाएक जब शिव जी उनके समक्ष आ जाते हैं तो वह भयभीत हो घबरा उठती हैं। अकेले में जब शिव जी उनके वस्त्र खोलते हैं तो वह दोनों हाथों से उनके नेत्र बन्द कर देती हैं।[3] जब दर्पण में वह अपने शरीर के सम्भोग चिह्नों को देखती हैं तब शङ्कर जी की छाया पड़ते ही बड़ी लज्जित हो उठती है।[4]

यहाँ शिव की चेष्टाएँ अनुभाव रूप हैं तथा पार्वती की चेष्टाएँ उद्दीपन रूप। सम्भ्रम, चपलता, व्रीडा व्यभिचारी भाव हैं।

धीरे-धीरे पार्वती का मुग्धात्व मिटने लगता है और अब ईषत् प्रगल्भा मध्या नायिका[5] का स्वरूप पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है। अब उनकी सारी सकोच और झिझक समाप्त होने लगती है। जब शिव जी उनका आलिङ्गन करते हैं तो वह प्रसन्न होती है—अधर चुम्बन करते हैं तो वह अपना मुँह नहीं हटाती और जब उनकी मेखला खोलते हैं तो वह आधे मन से ही उनका हाथ रोकती हैं। थोड़े ही दिनों में उनकी गतिविधियों से यह पता चलने लगता है कि वे आपस में घुल-मिल गये हैं तथा उनका प्रेम अब 'गूढमितरतराश्रमम्' हो जाता है।[6]

शृङ्गार के इन स्थलों पर अनुभावों व्यभिचारियों की ही छटा सर्वत्र व्यंजित होती है। बीच-बीच में प्रकृति का रम्य चित्रण नायक-नायिका के प्रेम में अधिक तीव्रता लाने के लिए उद्दीपन विभाव रूप में किया गया है।[8] इस सर्ग के सभी श्लोक अति शृङ्गारिक हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने 'वात्स्यायन कामसूत्र' का गहन अध्ययन किया था। सर्गान्त में तो पार्वती का वह रूप सामने आता है जो उसे 'स्मरान्धा प्रगल्भा' की कोटि में रख छोड़ता है[9] और इधर शङ्कर भी दक्षिण नायक के समान उन्हें सब प्रकार से प्रसन्न करते रहते हैं।[10]

---

१ दशरूपक २ — २ कुमार सम्भव ८।२
३ कु० स० ८।८ — ४ कु० स० ८।७
५ कु० स० ८।११ — ६ दश रूपक ३।१८, पृ० २०३
७ कु० स० ८।१५ — ८ कु० स० ८।३०-७३
९ प्रांप कु० सं० ८।७९ ८० — १० कु० सं० ८।१६

यही वह स्थल है जहाँ जिसके कारण साहित्य के आचार्यों ने कवि द्वारा वर्णित शङ्कर पार्वती के रति-वर्णन के अनौचित्य प्रवाह पर अंगुली उठाई है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कुमार सम्भव में दाम्पत्य प्रेम की विशद व्यंजना हुई है किन्तु शृङ्गार भावना के शुद्ध एवं विलासमय चित्रों की भी कमी नहीं है। किन्तु वे सभी चित्र जो कहीं कहीं पुनीततर भावना मिश्रित हैं विश्वात्मा शिव के प्रति भक्ति भावना के लिए विधात सिद्ध होते हैं। फिर भी 'कुमार सम्भव' में शृङ्गार का साङ्गोपाङ्ग चित्रण परम्परा निर्वाह के लिए सफलतापूर्वक किया गया है। शृङ्गार का स्वाद भी मनोरम पर कवि की बहुश्रुत लगनी में छूटने नहीं पाया है। इस काव्य में कालिदास ने शृङ्गार-चित्रण में जो स्वाभाविक-मधुरता पायी है वह उनकी अन्य कृति में न बन पायी। इसका एक यह भी कारण है कि कुमार सम्भव उनके आराध्य का चरित्र चित्रण था अतः उनका मन ही नहीं आत्मा भी रम उठा था और उनकी प्रतिभा अतिशय मुखरित हो उठी थी जिससे प्रत्येक वर्णन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। न ऐसी नायिका की सी रूप हो उन्हें मिला और न ही ऐसा नायक मिला जो मदन का शामिता होकर भी मदन शामित हो। इसी कारण से सम्भवतः वे संयोग शृङ्गार वर्णन करने के समय में भी कहीं-कहीं अतिशय कर गये और मर्यादा की रेखा भी पार कर गये किन्तु इसमें कवि की भावुकता अतिशय ही कारण है और कुछ नहीं।

रघुवंश में अङ्गीरस

रघुवंश महाकवि कालिदास का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इस काव्य में महाकवि ने सूर्यवंश में उत्पन्न महाराज रघु का तथा उनसे चलने वाले राजवंश का काव्यात्मक वर्णन किया है। यह संस्कृत साहित्य का अनोखा तथा अनुपम महाकाव्य है। एक वंश के अनेक नायक महाकाव्य के नायकों के रूप में इसी काव्य में देखे जाते हैं। सम्भवतः इसी को देखकर बाद के साहित्याचार्यों ने महाकाव्य का यह लक्षण किया—

एकवंशभवाभूपा कुलजा बहवोऽपि वा। सा० द० ६।३१६

अनेक नायकों के चरित से आपूर्ण होने हुए भी इस महाकाव्य का अथ से इति तक प्रधान रस वीर है और उसी के विविध रूप इसमें चित्रित हुए हैं। कोई दानवीर है तो कोई युद्धवीर कोई धर्मवीर है तो कोई दयावीर और कोई दान और धर्म दोनों में वीर है। इस प्रकार प्रत्येक नायक अपूर्व साहस निर्भीकता, शौर्य एवं

---

१ महाकवि कालिदास-पं० देवीदत्त शर्मा

शक्तिमत्ता से युक्त हैं। उनके चरित्र में दान, धर्म, दया, करुणा, अनुग्रह इत्यादि उदात्त गुणों का अपूर्व संग्रह दिखाई पड़ता है। अस्तु

रघुवंश के प्रथम उन्नायक महाराज दिलीप धर्मप्रवण नायक हैं। इस महाकाव्य में दिलीप का वर्णन केवल रघुवंश के प्रवर्तक महाराज रघु के हेतु भूमि नरेश के रूप में किया गया है। साथ ही उनके दिव्य गुणों की प्रशंसा दर्शाने के लिए की गयी है कि जिससे रघु के गुणों का महनीय स्थान स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया जा सके। जैसा कि कवि ने स्वयं कहा है—

रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यं तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम्।
न कारणात् स्वात् बिभिदे कुमारः प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात्॥

इस प्रकार महाराज दिलीप के सत्त्वगुणों का रघु के दिव्य गुणों के बखान के लिए भूमिका रूप में हुआ है।

वंशधर कोई पुत्र न होने से महाराज अत्यन्त दुःखी रहा करते हैं अतएव पुत्र-प्राप्ति के लिए कुछ उपाय करने के लिए अपनी प्रिय पत्नी साम्राज्ञी सुदक्षिणा सहित गुरु वशिष्ठ के पास जाते हैं और उनसे अपने आगमन का प्रयोजन बताते हैं।[1] मुनि वशिष्ठ अपने दिव्य चक्षु द्वारा सभी कारणों को ज्ञात कर, दिलीप को अनिन्द्या नन्दिनी की सेवा में पत्नी सहित तत्पर हो जाने का उपदेश देते हैं।[2] महाराज उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर बड़ी ही निष्ठापूर्वक, मनसा वाचा-कर्मणा मुनि की होम धेनु नन्दिनी की सेवा में पत्नी सहित तत्पर हो जाते हैं।[3] पुत्र के लिए वह कठिन शारीरिक यातना को भी प्रसन्नतापूर्वक सहते हैं और गुरु की धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न करने वाली गौ के पीछे पीछे उसकी परछाई के समान लगे रहते हैं।[4] किन्तु परम अभीष्ट पुत्र-प्राप्ति का लाभ होने से पूर्व ही उनकी एक ऐसी परीक्षा होती है जिससे महाराज दिलीप अतिमानव के रूप में दिखाई पड़ते हैं। मायासिंह गौ को किसी भी तरह पर छोड़ना स्वीकार नहीं करता है। तब उनका क्षत्रिय धर्म जाग्रत हो उठता है और वे पुत्र-प्राप्ति के भी मूलभूत अपने शरीर को गौ के बदले में अर्पित कर देते हैं।[5] धेनु की प्राणरक्षा के लिए उन्हें न यश चाहिए न राज्य, न स्वर्ग, न पितृलोक। धर्म की रक्षा के लिए महाराज अपने त्रिवर्ग को भी त्यागने के लिए तैयार हो जाते हैं।[6] राजा की एकनिष्ठ भक्तिभावना को देखकर नन्दिनी अतिप्रसन्न हो उन्हें पुत्रलाभ का अमोघ वरदान देती है।[7]

---

१ रघुवंश १।२४ — २ रघुवंश १।८१
३ वही, ३।१ — ४ वही २।६
५ वही, २।५६ — ६ वही, २।५७ — ७ वही, २।६२

इस प्रकार यहाँ आश्रय दिलीप एवं आलम्बन सिंह है। उसके द्वारा गौ का अपना हिंसा का शिकार बनना उद्दीपन विभाव है। सिंह को बद्ध करने के लिए राजा द्वारा बाण चलाने के लिए तत्पर होना, गौ छोड़ने के लिए करुण याचना करना तथा देह त्याग करना इत्यादि अनुभाव हैं तथा दैन्य, मोह, जड़ता, चिन्ता इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं।

इस प्रकार नन्दिनी के इस प्रसङ्ग में दिलीप के धर्मवीर का उत्कृष्ट स्वरूप व्यञ्जित होता है। ये ऐसे अनुपम वीर हैं जिन्होंने मार्ग में दिलीप के व्यापार की भी सुन्दर व्यञ्जना हुई है। कवि ने उनके दया भाव का आलम्बन बनाया गया गाय को कातर आँखें बताया है जिससे दयावीर दिलीप का करुणावरुणालय उमड़ पड़ता है।

दिलीप के पश्चात् गुणी वीर महापुरुष अब इक्ष्वाकु वंश के सिंहासन का स्वामी बनता है जो अपने नैसर्गिक गुणों से वंश का कर्ता कहलाता है क्योंकि महाराज दिलीप ने नन्दिनी से अनन्त कीर्ति से सम्पन्न वंश का कर्ता ही पुत्र रूप में माँगा था। रघु के वीरोचित गुणों के कारण इक्ष्वाकुवंश अब रघुवंश के नाम से चल पड़ता है।

यौवन का प्रारम्भ होने से पूर्व ही कवि ने रघु के वीर चरित्र की व्यञ्जना हेतु इनका पराक्रम करने वाला युद्धवीर का स्वरूप समक्ष उपस्थित किया है। इन्द्र द्वारा अपने पूज्य पिता जी के अश्वमेध-यज्ञ का अश्व अपहरण कर लिए जाने पर कुमार रघु क्रोधारक्त हो उठते हैं और उच्च गम्भीर स्वर में इन्द्र को ललकारते हुए कहते हैं—हे देवेन्द्र! विद्वानों का कथन है कि यज्ञ का भाग सर्वप्रथम आपको ही मिलता है और मेरे पिता जी आपके लिए ही यज्ञ कर रहे हैं फिर आप उनकी यज्ञ क्रिया में विघ्न क्यों डाल रहे हैं।[4] हे त्रैलोक्य-स्वामिन्! यज्ञ-कार्यों में विघ्नकर्ताओं का दण्डित करना ही आपको शोभा देता है, किन्तु यदि आप ही यज्ञ में बाधा डालेंगे तो संसार में धर्म तो ही हो विलुप्त जायेगा। इसलिए, हे इन्द्रदेव! आप मेरे पिता के यज्ञ का अश्व छोड़ दीजिए, क्योंकि वेद का मार्ग दिखाने वाले महात्माओं को ऐसा कलङ्कित कार्य करना शोभा नहीं देता।''[5] रघु के इन गर्वपूर्ण वचनों को सुनकर इन्द्र आश्चर्य-चकित रह जाते हैं और रथ घुमाकर कहते हैं—'हे राजकुमार! तुम्हारा कथन सत्य है किन्तु शत्रुओं से अपने यश की रक्षा करना यशस्वियों का परम कर्त्तव्य है। मैंने सौ यज्ञ करने का जो विश्वप्रसिद्ध यश अर्जित किया है उसे तुम्हारे

१ रघुवंश २।५२
२ रघुवंश २।६४
३ वही, ३।४३
४ वही ३।४४
५ वही ३।४५
६ वही, ३।४६

पिता निरस्कृत करना चाहते हैं।[१] हम देवगण जिन नामों से विश्वविख्यात हैं, उस सत्ता को कोई अन्य धारण नहीं कर सकता।[२] इसलिए हे कुमार! तुम इस अश्व को छुड़ाने का प्रयत्न मत करो। सगर के पुत्रों के मार्ग पर पैर मत रक्खो।[३]

उद्दीपन विभाव रूप इन्द्र के इन वचनों को सुनकर रघु उत्साहित हो उठते हैं, और स्मित हास्य सहित इन्द्र से कहते हैं—"यदि आप का यही दृढ़ निश्चय है, तो शस्त्र उठाइए। रघु को परास्त किए बिना आप सफल नहीं हो सकते।" यह कहकर रघु बड़ी तत्परता से अपने अचूक बाण से इन्द्र के वक्षस्थल पर प्रहार करते हैं।[४] पुनः उस पराक्रमी रघु ने स्वनामांकित एक बाण द्वारा इन्द्र की भुजा पर प्रहार किया[५], और मयूरपङ्ख वाले दूसरे बाण से उनकी ध्वजा को काट दिया। ध्वजा भेदन हो जाने में इन्द्र इससे क्रोधित हो उठते हैं मानो किसी ने उनकी सुर-राजलक्ष्मी का ही शिर कचच्छेदन कर दिया हो।[७] इस प्रकार परस्पर विजिगीषु रघु और इन्द्र का तुमुल युद्ध होता है जिसे देखकर देवगण भी विस्मयाविष्ट हो उठते हैं।[८] इसी बीच रघु बड़े कौशल के साथ अपने अर्धचन्द्र बाण से इन्द्र धनुष का डोरा काट डालते हैं।[९] धनुष की डोरी कट जाने पर इन्द्र क्रोध से तमतमा उठते हैं और वे अग्नि के समान देदीप्यमान वज्र से रघु पर प्रहार करते हैं।[१०] वज्र से आहत रघु पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं किन्तु क्षण भर में ही वे पुनः इन्द्र से युद्ध करने के लिए आ डटते हैं।[११] कुमार की इस असीम वीरता को देखकर इन्द्र अति सन्तुष्ट होते हैं और कहते हैं[१२]—"मेरे कठोर वज्र की असह्य चोट को सहने वाले, हे राजकुमार! मैं तुम्हारी वीरता से अति प्रसन्न हूँ। इस अश्व के अतिरिक्त, तुम्हारा जो भी इच्छित हो मुझसे माँगो।"[१३]

यहाँ वीर के आश्रय रघु हैं। इन्द्र आलम्बन विभाव हैं तथा इन्द्र द्वारा अश्व-हरण उद्दीपन विभाव है। रघु द्वारा बाण संचालन, भुजाच्छेदन, ध्वजाच्छेदन, धनुर्भेदन,

---

१ रघुवंश ३।४७ — २ रघुवंश ३।४८
३ वही ३।५० — ४ वही, ३।५१
५ वही, ३।५३ — ६ वही, ३।५५
७ वही, ३।५६ — ८ वही ३।५७
९ वही ३।५९ — १० वही, ३।६०
११ वही ३।६१ — १२ वही ३।६२
१३ वही, ३।६३

तथा इन्द्र को युद्ध के लिए आह्वान इत्यादि अनुभाव हैं। अमर्ष, चपलता, मद इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं।

कुमार रघु यौवन के प्रथम चरण में हैं। महाराज दिलीप, अपने इस योग्य और पूर्ण समर्थ पुत्र पर युवराज की सत्ता का भार सौंपकर मुनिवृत्ति का अनुसरण करते हैं। धर्मात्मा नीतिज्ञ और कुमार प्रतापी महाराज रघु बड़ी कुशलता से उत्तर कोशल राज्य का संचालन करते हैं। शरद् ऋतु के आगमन पर, शुभ मुहूर्त में एक ओर राज्य की रक्षा हेतु अपनी पूर्ण नियन्त्रित शक्ति रखकर रघु दिग्विजय के लिए निकल पड़ते हैं। सर्वप्रथम वे पूर्व दिशा में पहुँचते हैं। विजयी रघु मार्ग में स्थित किन्हीं राजाओं से कर लेकर उन्हें मुक्त कर देते हैं किन्हीं को सिंहासन च्युत कर देते हैं और किन्हीं को युद्ध में ध्वस्त कर देते हैं।[1] इस प्रकार मार्ग के सभी कण्टकों को दूर करते हुए वे सुह्य देश पहुँचते हैं। किन्तु सुह्य देश के राजाओं ने विजयी रघु की उपासना को स्वीकार कर अपने प्राणों की रक्षा की।[2] फिर वङ्गीय राजाओं को भी पराजित कर रघु गङ्गासागर के द्वीपों में अपनी विजय पताका स्थापित करते हैं।[3] तत्पश्चात् वे कलिङ्ग देश पहुँचते हैं। कलिङ्ग नरेश अपनी गज सेना के साथ रघु का डटकर सामना करता है।[4] किन्तु जिस प्रकार स्वामी के जल में राज्याभिषेक कर राजाओं को राज्यलक्ष्मी मिलती है उसी प्रकार शत्रुओं की बाण वर्षा में स्नान कर रघु को विजय-लक्ष्मी प्राप्त होती है।[5]

इतने वीर महाप्रतापी रघु युद्ध के समय भी धर्म का अञ्चल क्षण भर के लिए नहीं छोड़ते हैं। उनका युद्ध धर्म युद्ध होता है और उनकी विजय धर्म विजय होती है। उनके इस धार्मिक स्वरूप की व्यञ्जना कवि ने उन्हें 'धर्मविजयी नृप'[7] कहकर की है। रघु पराजित शत्रुओं के साथ भी सद्व्यवहार करते हैं इसीलिए बन्दी बनाए गए महेन्द्र पर्वत के राजा द्वारा अधीनता स्वीकार कर लेने पर रघु उन्हें स्वतन्त्र कर देते हैं और उनका राज्य उन्हें वापस कर देते हैं।[8]

यहाँ वीर रस के आश्रय रघु हैं। विभिन्न राजगण आलम्बन हैं। रघु द्वारा उन्हें परास्त करना, उखाड़ फेंकना, सिंहासन च्युत करना, विजय-पताका फहराना, पुनः राज्य वापस कर देना इत्यादि अनुभाव हैं।

---

१ रघुवंश ४।२६	२ रघुवंश ४।३३
३ वही, ४।३५	४ वही, ४।३६
५ वही, ४।४०	६ वही ४।४१
७ वही, ४।४३	८ वही ४।४३

पूर्व दिशा स्थित राजाओं का भलीभाँति दमन कर, रघु दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करते हैं। जिस दक्षिण दिशा में महाप्रतापी सूर्य का तेज भी मन्द पड़ जाता है वहीं अक्षुण्ण तेज वाले रघु की प्रबल शक्ति के सम्मुख पाण्डय नरेश न ठहर सके और वे अपने संचित धन को संचित यश के समान रघु को भेंट कर देते हैं।[1] तत्पश्चात् रघु पश्चिम दिशा की ओर मुड़ते हैं किन्तु पहले से ही रघु के शक्तिशाली पराक्रम के वशीभूत वहाँ के राजा तो उनकी अधीनता स्वीकार कर उन्हें पर्याप्त कर ही प्रदान करते हैं।[2] रघु यवनियों के मुख-कमल पर आसव का मद न सह सके।[3] तत्पश्चात् घुड़सवार राजाओं के साथ रघु का घनघोर युद्ध होता है। किन्तु अजेय रघु के सम्मुख कोई राजा नहीं ठहर पाता, और रघु अपने भल्लबाणों से शहद के छत्ते की भाँति यवनों के सिर काट काट कर पृथ्वी पाट देते हैं।[4] पराजित यवनगण लौह के टोप उतार-उतार कर रघु के चरणों में अर्पित कर देते हैं और उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर लेते हैं।[5] सिन्धु देश में, रघु शक्तिशाली हूणों का दमन कर[6] काम्बोज-निवासी राजाओं को भी अपने वश में कर लेते हैं और परास्त राजगण रघु को तुरङ्ग, द्रव्य और धन प्रभूत मात्रा में भेंट करते हैं।[7] इस प्रकार महाराज रघु तीन दिशाओं में अपनी विजय पताका फहराने के बाद अन्त में उत्तर दिशा की ओर जाते हैं। हिमालय पर स्थित पर्वतीय राजाओं के साथ उनका भयङ्कर युद्ध छिड़ता है। रघु की सेना बाण-वर्षण करती है तो पर्वतीय सेना प्रस्तर प्रहार करती है। और इस प्रकार जब लौह और प्रस्तर आपस में टकराते हैं तो अग्नि उत्पन्न हो जाती है।[8] रघु निरन्तर बाण-वर्षा कर उत्सव संकेत-नामक किन्नरों के छक्के छुड़ा देते हैं।[9] पराजित पर्वतीय राजगण रत्नों की राशि रघु को भेंट करते हैं। वहाँ से रघु असम में पहुँचते हैं। उनकी असंख्य सेनाओं के पैरों से उठी हुई अपरिमित धूल से सूर्य भी लुप्त हो जाता है।[10] उस भयंकर धूल को देखकर भयभीत असम नरेश ने अपनी जिन गजों की सेना से बड़े-बड़े शत्रुओं का नाश किया था, उन्हीं गजों को पराक्रमी रघु को उपहार रूप में भेंट कर दिया।[11] जिस प्रकार भक्त पुष्प-माला से अपने आराध्य की पूजा करता है, उसी प्रकार कामरूप के नरेश स्वर्ण-पीठिका पर स्थित रघु-चरणों की छाया की रत्नों

---

१ रघुवंश ४।४९   २ रघुवंश ४।५०
३ वही ४।६१   ४ वही, ४।६३
५ वही, ४।६४   ६ वही, ४।६८
७ वही, ४।७०   ८ वही, ४।७७
९ वही, ४।७८   १० वही, ४।८२
११ वही, ४।८३

स जचना करते हैं।[1] इस प्रकार विजयी रघु सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर अपनी राजधानी अयोध्या लौट आते हैं।

दिग्विजय के इस प्रसङ्ग में अधिकांशतः अनुभावों का ही विस्तृत विवरण दिया गया है। तत्-तत्-देश निवासी नृप-गण आलम्बन विभाव हैं और उनके कार्य उद्दीपन विभाव हैं। रघु द्वारा राजाओं पर बाण-वर्षा करना, परास्त करना इत्यादि अनुभाव हैं तथा अमर्ष वितर्क, मद इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं।

युद्धवीर और धर्मवीर के अतिरिक्त रघु के चरित्र का एक पक्ष और है वह है उनकी अपूर्व दानवीरता का। विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्व दान कर देने के पश्चात् रघु के पास मिट्टी का पात्र ही शेष बच जाता है। इसी समय गुरुदक्षिणार्थी वरतन्तु शिष्य कौत्स रघु के पास आता है। यशस्वी रघु उनका विधिपूर्वक आतिथ्य सत्कार कर विनम्र स्वर में कहते हैं—'हे भगवन्! आपके आगमन मात्र से मेरा हृदय तृप्त नहीं हुआ है, इसलिए मुझे कुछ सेवा करने की आज्ञा दीजिए।'[2] रघु के उदार वचनों को सुनकर तथा उनके हाथ में मृत्पात्र देखकर कौत्स के समस्त मनोरथ शिथिल हो जाते हैं और वे कुछ चिन्तित स्वर से कहते हैं[3] हे राजन्! पूज्यों के प्रति श्रद्धा आपके वंश का धर्म ही है और आप उसमें पूर्वजों को भी अतिशयित करते हैं। मैं आपके पास कुछ धन माँगने आया था किन्तु मुझे आने में कुछ विलम्ब हुआ इसी का मुझे खेद है।[4] हे राजन्! आपने अपना सब कुछ दान कर दिया है अब केवल शरीर ही आपके पास शेष रह गया है।[5] चक्रवर्ती होते हुए भी अकिंचन होकर आप क्षीणकला वाले चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहे हैं।[6] हे महाराज! आपका कल्याण हो। अब मैं कहीं अन्यत्र से गुरुदक्षिणा का धन प्राप्त करूँगा। चातक भी निगलितजल मेघ से याचना नहीं करता।'[7]

कौत्स के इन वचनों को सुनकर रघु बड़े दुःखित होते हैं। गुरुदक्षिणा के लिए याचक रघु के पास से खाली हाथ लौट जाएँ यह यश के लिए तथा रघुवंश के लिए भी अभूतपूर्व कलङ्क था। अतः रघु कौत्स से प्रार्थना करते हैं कि हे द्विजवर! आप जैसा श्रेष्ठ वेदविद् मेरे द्वार से निराश होकर लौट जाएँ—यह अत्यन्त अनुचित

---

१ रघुवंश ४।८४ — २ रघुवंश ५।११

३ वही ५।११ — ४ वही, ५।१२

५ वही ५।१४ — ६ वही, ५।१५

७ वही, ५।१६ — ८ वही, ५।१७

है अत आप दो तीन दिन विश्राम कीजिए तब तक मैं आपकी दक्षिणा का येन-केन प्रकारेण प्रबन्ध करता हूँ।[2] इस प्रकार दान की महत्ती प्रेरणा से उत्साहित होकर रघु कुबेर पर आक्रमण करने का दृढ निश्चय करते हैं,।[3] किन्तु रघु के शक्तिशाली प्रताप से भयभीत कुबेर उनकी इस इच्छा को जानकर स्वय ही रात्रि मे उनके कोष मे अप्रत्याशित धन-वर्षा कर देते हैं। हर्षित रघु वह सम्पूर्ण धनराशि कौत्स को दे देते हैं।

वस्तुत यह दानशीलता की पराकाष्ठा है। याचक के मनोरथ से भी अधिक दान देने वाले रघु के दान की यह महनीय गरिमा है। यहाँ रघु आश्रय और कौत्स आलम्बन हैं। कौत्स का रघु के पास धन मांगने के लिए आना किन्तु धन-प्राप्ति की कोई सम्भावना न देखकर अन्य के पास जाने का इच्छा प्रकट करना, उद्दीपन विभाव है। रघु द्वारा उन्हे न जाने देना, कुबेर के राज्य मे चढाई का विचार करना इत्यादि अनुभाव है तथा विषाद, अमर्ष, चिन्ता, वितर्क, ग्लानि इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं।

कौत्स के अमोघ वरदान से रघु को अज-जैसा पुत्र प्राप्त होता है। अज रूप, बल और वीर्य में अपने पिता के समान ही हैं।[4] अज के जीवन मे, यद्यपि अतिलौकिक पिता के कुमार होने के कारण तथा पूर्व से ही पिता द्वारा दिग्विजय मे समस्त भूमण्डल को अधिकृत कर लेने के कारण, प्रारम्भ मे शौर्य का प्रवाह कम दीख पडता है। ऐसा प्रतीत होता है कि परम वीर रघु मे सर्वाङ्ग वीर रस का वर्णन करने के पश्चात् महाकवि रस में कुछ परिवर्तन चाहते थे, जिससे एकश्रुति (Monotony) या मनहूसियत कुछ कम हो। और वीर के पार्श्व मे शृङ्गार ही सुशोभित होता है अत कवि ने अपने अभिनव मनोनीत नायक अज के लिए, युद्धवीर के रूप मे उन्हे चित्रित करना चाहते हुए भी, शृङ्गार की मनोरम पृष्ठभूमि की आयोजना की। इन्दुमती स्वयंवर के लिए अज प्रस्थान करते हैं। विवाह, शृङ्गार-रस का सौराज्य माना जाता है। अत उसके नामोल्लेख मात्र से शृङ्गार के प्रति साधारणीकरण के लिए सहृदय चित्त उन्मुख हो ही जाता है। किन्तु वीरानुरागी महाकवि ने इस भय से कि कहीं सहृदय-गण मेरे लाडले राजकुमार को शृङ्गार के मोम का पुतला न समझ ले एक शौर्य-प्रसङ्ग उपस्थित किया।

---

१ रघुवंश ५।२४ २ रघुवंश ५।२५
३ वही ५।२८ ४ वही, ५।२६
५ वही ५।३५

इन्दुमती स्वयंवर के लिए गमन करती हुई श्रान्त अज की सेना, नर्मदा नदी के तट पर अपना पड़ाव डालती है। उसी समय सहसा एक मदोन्मत्त वन्य गज नर्मदा के जल में निकल पड़ता है।[१] वह हाथी ज्यों-ज्यों तीर की ओर बढ़ने लगता है त्यों-त्यों अपने शुण्डदण्ड को फैलाकर तथा पुनः सङ्कुचित कर चिंघाड़ता हुआ लहरों को चीरने लगता है और सेवार को अपने साथ खींचता हुआ तट पर आ पहुँचता है।[२] उस पर्वत-प्राय वन्यगज को देखते ही सब तुरङ्ग बन्धनों को छिन्न भिन्न करके भागने लगते हैं तथा कई धुरे टूटकर यत्र-तत्र बिखर जाते हैं तथा स्त्रियाँ भयभीत हो अपने संरक्षण के लिए व्याकुल हो उठती हैं।[३] वह हाथी भागी अज को ही लक्ष्य करता हुआ आने लगता है। उसे देखकर विवेकी अज यह विचार करते हैं कि यह वन्यगज है, इसका वध करना उचित नहीं है अतएव वे अपने धनुष को किंचित् खींचकर, भागते हुए गज के मस्तक पर हल्का-सा प्रहार करते हैं ताकि वह लौट जाए।[४]

यहाँ अज का वीरोचित उत्साह ही व्यंग्य है। यहाँ अज आश्रय हैं वन्यगज आलम्बन है। गज द्वारा अज की ओर झपटना उद्दीपन विभाव है। अज द्वारा बाण-सञ्चालन अनुभाव है तथा मति वितर्क आदि व्यभिचारी भाव हैं।

इसके पश्चात् स्वयंवर में अज ने जिस प्रकार अपने अनुपम सौन्दर्य तथा श्रेष्ठ आभिजात्य एवं नैसर्गिक गुणों के कारण जय-माल प्राप्त की उसे हम शृङ्गार के प्रसङ्ग में देखेंगे। परिणयबद्ध अज, सौन्दर्य की एकमात्र अधिष्ठात्री उस कन्या रत्न (इन्दुमती) को लेकर जब अपनी राजधानी की ओर चलते हैं तो मलिन चित्त अभिमानी नृपगण जिन्होंने बाह्य रूप प्रदर्शन द्वारा अपने मनोविकारों को छिपाए रखा था, वक्र ग्रह की भाँति अज के प्रति दुर्भावना रखी थी प्रत्युत युद्ध के लिए उनके (अज के) मार्ग में एकत्र होते हैं और उस युद्ध में जो सम्भवतः राम रावण-युद्ध के पूर्व उस वंश में सर्वाधिक भयङ्कर युद्ध हुआ। अकेले अज सारी सेना को अपनी अलौकिक शक्ति तथा गन्धर्व-कुमार-द्वारा प्रदत्त अस्त्र से किस प्रकार पराजित करते हैं इसे कवि ने बड़े आकर्षक ढङ्ग से चित्रित किया है। उसका विवरण कुछ इस प्रकार कहा जा सकता है—अज तथा विरोधी राजाओं में भीषण युद्ध छिड़ जाता है। पैदल-पैदलों से रथवाले-रथवालों से घुड़सवार घुड़सवारों से, गजसवार-गजसवारों से भिड़ जाते हैं।[५] घोर तूर्यनाद के कारण परस्पर शब्द सुनाई नहीं पड़ता

---

१ रघुवंश ५।४३   २ रघुवंश ५।४५
३ वही, ५।४८   ४ वही ५।५०
५ वही, ७।३७

है। अतः बाणों पर अङ्कित अक्षरों से ही योद्धागण अपने नामों का परिज्ञान कराते हैं।[1] घोड़ों के टापों से उठी अपार धूल राशि के कारण, सूर्य भी तिरोहित हो जाता है, और सघन अन्धकार व्याप्त हो जाने के कारण सैनिक अपने शत्रुओं को भी नहीं पहचान पाते, अतः वे अपने-अपने राजाओं का नाम लेकर परस्पर युद्ध करते हैं। युद्ध-भूमि में विजृम्भित रज-अन्धकार में शस्त्रों से क्षत अश्वों, गजों तथा योद्धाओं के शरीर से निःसृत रुधिर-प्रवाह भी बालारुण के समान प्रतीत होने लगता है।[3] इस प्रकार युद्ध-भूमि में इतना अधिक रक्तपात होता है, कि उत्थित अपार धूल राशि भी शान्त हो जाती है।[4] शस्त्र प्रहार के कारण मूर्च्छित हो जाने से अनेक योद्धाओं को उनके सारथी किसी प्रकार वापस ले आते हैं।[5] जिन धनुर्धारियों के हाथ शस्त्र-सञ्चालन में निपुण थे, उनके बाण यद्यपि शत्रुओं के बाणों के बीच में ही दो टूक हो जाते हैं, तथापि उनमें इतना वेग रहता है कि वे लक्ष्य पर पहुँच ही जाते हैं।[6] तेज चक्रों से छिन्न हाथीवालों के सिर बहुत देर के पश्चात् पृथ्वी पर गिरते हैं क्योंकि उनके लम्बे-लम्बे केश श्येन (बाजों) के नखों में उलझ जाने के कारण वे ऊपर ही टँगे रह जाते थे।[7] प्राणों की भी चिन्ता न करने वाले कवचधारी योद्धा जब अपनी तलवार से हाथियों के दाँतों पर प्रहार करते हैं तब परस्पर अग्नि-स्फुलिङ्ग निकलने के कारण भयाकुलित हाथी शुण्डादण्ड के जल से अग्नि शान्त करने लगते हैं।[8] इस प्रकार वह युद्धक्षेत्र मृत्यु देवता के उस मदिरालय सा प्रतीत होने लगता है, जिसमें कटे हुए सिर ही मानो फल हों, च्युत शिरस्त्र ही प्याले हों तथा प्रवाहित रक्त ही मदिरा हो।[9] जिन योद्धाओं के सारथी कालकवलित हो जाते हैं वे स्वयं रथ चलाकर युद्ध करने लगते हैं, किन्तु जब उनके अश्व भी क्षत हो जाते हैं तो रथ से उतरकर पैदल ही गदा से युद्ध करने लगते हैं और जब उनकी गदाएँ भी भग्न हो जाती हैं तो वे मल्ल युद्ध करने लगते हैं।[1] यद्यपि विरोधी शत्रुओं की सेना अज की सेना को परास्त कर देती है तथापि रथारूढ महापराक्रमी अज प्रलयकाल में भगवान् वाराह के समान शत्रुसेना का भेदन करते हुए आगे बढ़ते चले जाते हैं।[11] वे इतनी शीघ्रता से बाण-सञ्चालन करते हैं कि कब तूणीर में हाथ डाला और कब बाण निकाला, यह पता ही नहीं चलता। अद्वितीय वीर

---

१ रघुवंश ७।३८ २ रघुवंश ७।४१
३ वही ७।४२ ४ वही, ७।४३
५ वही, ७।४४ ६ वही, ७।४५
७ वही, ७।४६ ८ वही, ७।४८
९ वही ७।४९ १० वही, ७।५२
११ वही, ७।५५

अज अत्यन्त रोष से चबाने के कारण रक्त ओष्ठ वाले तथा भौंहों को विकुंचित कर अपनी ओर वेग से बढ़ते हुए राजाओं के शिरश्छेदन से पृथ्वी को आच्छादित कर देते हैं।[1] अज के निस्सीम शौर्य को देखकर, अत्यन्त मत्सर वाले राजगण क्रोधित हो उठते हैं और वे बचे हुए अपने रथ घोड़े तथा पैदल सैन्य सहित शस्त्र अस्त्रों से पूरे प्रयत्न से एक साथ अज पर प्रहार करना प्रारम्भ कर देते हैं। राजाओं के असंख्य अस्त्र-वर्षण से अज का रथ ढक जाता है और जैसे निहाराच्छादित प्रभात का पता धुंधले सूर्य को देखकर होता है, वैसे ही अज का पता उनके रथ के ध्वजाग्रभाग को देखकर होता है।[2] तब रघुकुल कामवर् रमनाय अज प्रियंवद द्वारा प्रदत्त गान्धर्व अस्त्र राजाओं पर छोड़ते हैं।[4] अस्त्र विमोचन मात्र से ही उन राजाओं के हाथ ऐसे स्तम्भित हो जाते हैं कि वे बाण संचालन करने में असमर्थ हो जाते हैं। उनके शिरस्त्र गिरकर कंधों पर झूल जाते हैं तथा सम्पूर्ण सेना ध्वजा के सहारे खड़ी हो जाती है। इस प्रकार इस विवाहोत्तर शौर्य पराकाष्ठा में अज पूर्ण सफल होते हैं।

यहाँ अज आश्रय हैं तथा राजगण आलम्बन। राजाओं का मार्ग रोककर खड़े हो जाना उद्दीपन विभाव है। अज द्वारा बाण-संचालन, राजाओं को शक्तिहीन बना देना, शिरश्छेदन गान्धर्वबाण प्रयोग इत्यादि अनुभाव हैं तथा अमर्ष चपलता वितर्क इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं। इन सबसे अज का युद्ध विषयक उत्साह व्यंजित होता है। युद्ध के इस दीर्घ प्रसङ्ग में सहृदयों में कहीं वैरस्य न उत्पन्न हो जाए अतएव महाकवि ने बड़ी निपुणता से शौर्य के प्रसङ्ग में भी बीच बीच में विनोद का पुट दिया है। परस्पर युद्ध रत दो वीरों का चित्रण विचित्र अद्भुत ढङ्ग से किया गया है 'दो वीर एक दूसरे के प्रहार से एक साथ मारे जाते हैं। दोनों देवता होकर जब स्वर्ग पहुँचते हैं तब वहाँ एक ही अप्सरा पर दोनों आसक्त हो जाते हैं और इस प्रकार वहाँ भी वे परस्पर युद्ध करने लगते हैं।'[5]

इसके पश्चात् कवि ने विजयोल्लास से भरे वीर अज का भी एक दो चित्र प्रस्तुत किया है जिस पर शृङ्गार कितना लट्टू हो सकता है इसका अनुमान सहृदय-गण ही लगा सकते हैं—(राजाओं को परास्त कर देने के पश्चात्) स्वेद बिन्दुओं से आच्छादित ललाट वाले तथा शिरस्त्र उतार देने के कारण बिखरी मौलियों वाले अज धनुष के एक सिरे पर अपना एक हाथ न्यस्त कर युद्ध के कारण भयभीत इन्दुमती के

---

१ रघुवंश ७।५८   २ रघुवंश ७।५९
३ वही, ७।६०   ४ वही, ७।६१
५ वही, ७।५३

समीप आकर कहते हैं— 'वैदर्भी ! चलो, देखो तो युद्धभूमि में राजा लोग इस प्रकार सोये पड़े हैं कि बालक भी उनके शस्त्र छीन सकते हैं। देखो न, इसी पौरुष के बल पर ये तुम्हें मेरे हाथ से छीनने चले थे।'[1]

यहाँ युद्ध में विजयी आश्रय अज का वीरोचित उत्साह ही व्यक्त हो रहा है। कुछ समय पश्चात् प्रिया की असामयिक मृत्यु ने अज के हृदय में शोक का अथाह सागर भर दिया, जिसे पार करना अज के लिए असम्भव हो गया। जब उनका यह शोक-रोग भिषजामसाध्य हो जाता है तब महाराज सूर्यवंश की परम्परा के अनुसार राज्य का भार पुत्र पर सौंप कर शरीर त्याग कर देते हैं।

अज पुत्र दशरथ बड़े महारथी, जितेन्द्रिय तथा दक्ष प्रजापालक हैं। उनसे राज्य में प्रजा सब प्रकार से सुखी और धनधान्य से पूर्ण है।[2] रघुवंश में वर्णित दशरथ के जीवन में कुछ नवीनता नहीं दीख पड़ती। कवि ने दशरथ से लेकर राम तक की कथा का वर्णन वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही किया है। दशरथ के जीवन में हमें धर्म विषयक उत्साह तथा दया विषयक उत्साह का ही मुख्य रूप में पल्लवन होता हुआ दिखाई पड़ता है। कौशिल्या, सुमित्रा कैकयी आदि तीन रानियों के होते हुए भी महाराज पुत्र सुख से सर्वथा वंचित हैं। इसलिए गुरुजनों की आज्ञा से अपने वंश की परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए वे पुत्रेष्टि यज्ञ करते हैं। यह एक धार्मिक कृत्य है। यज्ञ की सफल समाप्ति पर देवताओं के पुण्य वरदान-स्वरूप चार पुत्र रत्नों का जन्म होता है। महाराज अपने पुत्रों को इतना स्नेह करते हैं कि एक क्षण के लिए भी उन्हें अपने नेत्र से विलग नहीं करते। अतएव जब मुनि विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राम-लक्ष्मण को लेने आते हैं, तब राजा अत्यन्त विह्वल हो जाते हैं। उन्होंने अपने पुत्रों को बड़ी ही तपस्या से प्राप्त किया है, इसलिए उनको अलग करना उनके लिए अत्यन्त कष्टकर कार्य है। फिर भी मुनि के यज्ञ रक्षा जैसे महत्कार्य को सम्पन्न होने देने के लिए महाराज तत्काल राम लक्ष्मण को मुनि के साथ भेजना स्वीकार कर लेते हैं, क्योंकि 'रघुकुल की सदा से यह रीति चली आयी है कि कोई प्राण भी माँगे तो वे विमुख नहीं होते।'[3] इस प्रसङ्ग में धर्म विषयक उत्साह की सुन्दर व्यंजना हुई है।

---

१ रघुवंश ७।६६
२ रघुवंश ८।६३
३ वही, ९४
४ वही, १०१४
५ वही, ११।२

दशरथ द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ करना तथा विश्वामित्र के साथ राम लक्ष्मण को भेजना अनुभाव है।

धर्म विषयक उत्साह का चरम निदर्शन महाराज द्वारा कैकेयी को दिये गये वचन पालन के प्रसङ्ग में वर्णित होता है। राम के लिए चौदह वर्ष के वनवास की जो कठोर माँग कैकेयी ने दशरथ के समक्ष रखी उसे सुनकर उनका वत्सल हृदय चीत्कार कर उठता है और वे विमूढ़ हो जाते हैं।[1] किन्तु दृढ़ प्रतिज्ञ राजा दशरथ अपने वचन की रक्षा के लिए अपने प्राण का कोई मूल्य नहीं समझते और राम को राज्य-निर्वासन की आज्ञा दे देते हैं। बाद में राम के वियोग में राजा को बड़ा दुःख होता है और वे शरीर त्याग मात्र को ही अपनी बुद्धि का ठीक उपाय समझते हैं।[2]

यद्यपि राजा दशरथ के धर्म विषयक उत्साह का कथन उनके दया विषयक उत्साह का स्वरूप प्रजापालन अथवा लोकानुरञ्जन के प्रसङ्ग में दिखाई पड़ता है। विरोधी राजाओं के साथ भी वे कभी भी कठोर आचरण नहीं करते हैं। कवि कहता है कि उनके द्वारा अनेक राजाओं का कल्याण भी हुआ और अकल्याण भी। जो राजा उनकी आज्ञा बिना विरोध के स्वीकार कर लेते हैं उनके साथ वे दया का व्यवहार करते हैं किन्तु जो उनसे टक्कर लेने जाते हैं उनका वे सर्वनाश करके शान्त होते हैं।

शिकार का व्यसन तो राजाओं को रहता ही है। किन्तु शिकार के क्षण भी महाराज क्रूर नहीं बन पाते और उनका हृदय सदैव स्नेह की निर्मल धारा से सिक्त रहता है। उनके इस दयालु प्रकृति की व्यञ्जना कवि ने बड़े ही सुन्दर ढंग से की है—इन्द्र के समान शक्तिशाली राजा दशरथ ने देखा कि वे जिस हरिण को मारना चाहते हैं, उसकी सहचरी सहसा बीच में आकर खड़ी हो गयी है। वे स्वयं इतने मृदुल-आत्मा तथा प्रेमी हृदय थे कि अपने हरिण के लिए हरिणी का यह प्रेम देखकर उनका हृदय दया से ऐसा अभिभूत हो जाता है कि वे आकर्णकृष्टमपि बाण को उतार लेते हैं।[4] वे अन्य हरिणों को भी अपने बाण का लक्ष्य बनाना चाहते हैं, किन्तु हरिणों के भयाकुलित नेत्रों को देखकर अपनी प्रिया के चञ्चल नेत्रों का स्मरण हो जाने के कारण उनके हाथ बाण सञ्चालन में शिथिल पड़ जाते हैं।[5]

---

१ रघुवंश १२।४   २ रघुवंश १२।१०

३ वही, ९।९   ४ वही ९।५७

५ वही, ९।५८

यहां आश्रय दशरथ हैं। वाण-सधान के लिए उद्यत होना किन्तु न चलाना, दया में पूर्ण हो जाना इत्यादि अनुभाव हैं, तथा स्मृति, मोह मति, इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं। इस प्रकार यहाँ दया विषयक उत्साह की ही सफल व्यंजना हुई है।

महाराज दशरथ के पश्चात् सूर्य-कुल में राम का अवतार होता है। रघुवंश के मुख्य नायक के विवेचन में, विद्वानों ने कई प्रकार की मीमांसायें प्रस्तुत की हैं। विशेषकर रघु और राम के तुलनात्मक व्यक्तित्व के विषय में कुछ विद्वानों ने रघु को, इस महाकाव्य में महाकवि द्वारा प्रधान रूप से वर्णित, नायक स्वीकार किया है। अत उनका कहना है कि उन्हीं के नाम के आधार पर इस महाकाव्य का नाम 'रघुवंश' रक्खा गया है। उनके युद्ध तथा दान की कथा कल्पित हो सही किन्तु महाकवि ने बड़े विस्तार तथा अनुराग के साथ उसका चित्रण किया है। साथ ही दूसरे विद्वान् जो इस महाकाव्य का प्रधान नायक राम को मानते हैं रघु से लेकर दशरथ तक के वर्णन को उसकी भूमिका मानते हैं तथा परवर्ती कुश से लेकर अग्निवर्ण तक के वर्णन को उपसंहार। उन विद्वानों के अनुसार कालिदास को पूर्वापरीय से एकदम पृथक राम का अभिनव कल्पना से तलाम वर्णन करना अभीष्ट था। राम का जो स्वरूप आदि कवि वाल्मीकि ने अपने रामायण में प्रस्तुत किया है वह विश्वप्रथित था किन्तु महाकवि की अप्रतिम प्रतिभा ने उस चरित्र में भी जिन विशिष्ट ज्योतिर्मयी रेखाओं का आकलन किया उससे राम इस काव्य के नायक बन गये। और तो और कारुण्य के सम्राट भवभूति ने भी अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति उत्तररामचरित के लिए रघुवंश के राम को उधार ले लिया।

राम के जीवन में महापुरुषत्व एवं दिव्यत्व के लक्षण शैशव काल में ही प्राप्त होने लगते हैं जिससे यह प्रतीत होने लगता है कि किसी उद्देश्य (Mission) को लेकर यह महापुरुष अवतरित हुआ है। अभी राम बाल्यावस्था की ही डेहरी को लाँघ पाये हैं कि उनके अतिमानवीय गुणों से परिचित विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा हेतु उन्हें लेने आते हैं।[1] पिताश्री की आज्ञा से विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण वन के लिए प्रस्थान करते हैं। अभी थोड़ा ही मार्ग तय कर पाये हैं कि कवि राम के शौर्य का प्रसङ्ग उपस्थित करता हुआ कहता है—मार्ग में उन्हें सुकेतु-कन्या ताड़का राक्षसी मिलती है, जिसने मार्ग को ध्वस्त कर डाला है, और जिसके शाप की कथा महर्षि विश्वामित्र ने पहले ही राम को सुना दी थी।[2] उसे देखते ही दोनों कुमार धनुष को

१ रघुवंश ११।१४ २ रघुवंश ११।१५

पृथ्वी पर टकराकर हाथियों को पछाड़ता है।[1] दोनों राजकुमार के धनुष की डोरी की टंकार के श्रवण मात्र से ही कराल कुम्भ धारण किए अमावस्या की रात्रि के समान काली-कलूटी ताड़का उनके समक्ष इस प्रकार खड़ी हो जाती है मानो बगलों-पंक्ति से युक्त काली घटा हो।[2] अपने नाद वेग से मार्ग के वृक्षों को कम्पित करती हुई निनाद करती हुई अट्टहास धारण किए हुए ताड़का राम पर टूट पड़ती है।[3] उसी समय लोगों के समान अपनी भुजाओं को उठाए हुए ताड़का को देखकर निर्भय राम स्त्री वध के प्रति घृणा तथा बाण द्वारा एक साथ छोड़ते हैं।[4] राम के अग्निज्वाला बाण से विद्ध होकर ताड़का की शिला के समान कठोर वक्षस्थल विदीर्ण हो जाता है और वह भूमि पर गिर पड़ती है। उसके पतन से सम्पूर्ण वन ही नहीं अपितु यमराज के नगर में अजित रावण का राज्य भी कम्पित हो जाता है।[5] राम के अद्भुत पराक्रम से प्रसन्न होकर महर्षि विश्वामित्र राम को राक्षसों का संहारक दिव्यास्त्र मन्त्र सहित प्रदान करते हैं[6]।

यहाँ राम आश्रय हैं तथा ताड़का आलम्बन। ताड़का द्वारा भयङ्कर गर्जन तीव्र गति से आगमन राम पर आक्रमण इत्यादि उद्दीपन विभाव हैं राम द्वारा शर-सन्धान अनुभाव है। अमर्ष गर्व धृति मति इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं।

अविराम शक्ति सम्पन्न राम-लक्ष्मण बड़ी तत्परता से समस्त विघ्नों से यज्ञ की रक्षा कर ही रहे थे कि इसी बीच यज्ञ-वेदी पर रक्त बिन्दुओं को देखकर त्रस्त ऋत्विगण यज्ञ करना समाप्त कर देते हैं। यह देखकर राम उत्तेजित हो उठते हैं और विघ्न का कारण ज्ञात करने के लिए जैसे ही आकाश में दृष्टिपात करते हैं वैसे ही अपने वीर भाव का आलम्बन बनी गिद्ध के पंखों के समान हिलती हुई ध्वजाओं से युक्त राक्षसों की सेना को देखते हैं।[8] फिर क्या था राम शीघ्र ही अपना वायव्यास्त्र सन्धान कर और पर्वत से भी विशाल ताड़का पुत्र मारीच को बाण से उखाड़ कर वैसे ही दूर फेंक देते हैं जैसे कोई पुराना पीला पत्ता हो।[9] सुबाहु नामक दूसरे राक्षस को भी जो अपनी माया से इतस्ततः संचरण कर रहा था बाण से टुकड़े-टुकड़े करके राम आश्रम के बाहर मार गिराते हैं।[10] यज्ञ के समस्त विघ्नों को समाप्त कर दिए

---

१ रघुवंश ११।१६ — २ रघुवंश ११।१६
३ वही, — ४ वही ११।१७
५ वही ११।१६ — ६ वही ११।२१
७ वही ११।२५ — ८ वही ११।२६
९ वही, ११।२८ — १० वही ११।२९

जाने पर ऋषिगण दोनों कुमारों के अद्भुत विक्रम की भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। मुनि विश्वामित्र क्रतु की क्रियाएँ सम्पादित करते हैं।[१]

यहाँ मारीच तथा सुबाहु आलम्बन हैं। मन पर खून की बूँदों का गिरना उद्दीपन विभाव है। राम द्वारा वायव्य अस्त्र संधान करना, राक्षसों का वध करना इत्यादि अनुभाव हैं तथा चपलता, अमर्ष व्यभिचारी भाव हैं।

इसी समय मिथिला-पति जनक एक स्वयंवर की आयोजना करते हैं। उनका निमंत्रण प्राप्त कर विश्वामित्र राम लक्ष्मण सहित मिथिला पुरी को प्रस्थान करते हैं। मार्ग में ही कवि राम के अलौकिक और दिव्य स्वरूप की व्यंजना हेतु गौतम पत्नी अहिल्या उद्धार का प्रसङ्ग उपस्थित करता है,[२] जिससे फलस्वरूप राम का पौरुष भी दैदीप्यमान हो उठता है।

स्वयंवर में राम ने शिव-धनुष भङ्ग कर अपने जिस दिव्य पराक्रम और शक्तिमत्ता का परिचय दिया वह उनके वीरोचित गुणों के सर्वथा अनुकूल है किन्तु शिव का धनुष भङ्ग हो जाने से क्षत्रियों के संहारक परशुराम की क्रोधाग्नि भभक उठती है और वे राजधानी की ओर लौटते हुए, अकस्मात् प्रकट हो राम का मार्ग अवरोध करते हैं। पिता की मृत्यु पर क्रोध में क्षत्रियवंश का नाश करने की अकाट्य प्रतिज्ञा करने वाले परशुराम को देखकर दशरथ बड़े ही चिन्तित हो जाते हैं किन्तु राम तनिक भी भयभीत नहीं होते। क्योंकि कालिदास के सभी नायक प्रायः निडर होते हैं। नायक का निर्भय होना उसके लक्षण में सम्मिलित है। इधर युद्ध के लिए उद्यत परशुराम मुट्ठी में धनुष पकड़कर उँगलियों से बाण नचाते हुए निर्भय राम से कहते हैं मेरे पिता का वध करके क्षत्रियों ने मुझसे शत्रुता मोल ली, उन्हें अनेकों बार मारकर मेरे क्षुब्ध हृदय को शान्ति मिली। किन्तु तुम्हारे इस पराक्रम को सुनकर मेरे शरीर में क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी है।[३] पहले संसार में 'राम शब्द' के उच्चारण से, लोग मुझे ही समझते थे, किन्तु तुम्हारे उत्कर्ष के कारण वह अर्थ तुम्हारे नाम के साथ जुड़ने लगा है— यह देखकर मुझे लज्जा होती है।[४] जिस शक्तिशाली परशुराम का अस्त्र पर्वतों से टकराकर भी कुण्ठित नहीं हुआ—उसके आज तक दो ही शत्रु अपराध कर्ता हुए, एक मेरे पिता का कामधेनु के वत्स का हरणकर्ता सहस्रबाहु, और दूसरा मेरी कीर्ति का विध्वंसक तू।[५] अतः क्षत्रियों के विनाश द्वारा मेरा पराक्रम मुझे

---

१ रघुवंश ११।३०
२ रघुवंश ११।३४
३ वही, ११।६३
४ वही, ११।७०
५ वही, ११।७१
६ वही, ११।७३
७ वही, ११।७४

तक मामा नहीं देता, अब तक मैं तुम्हें पराजित नहीं कर सकता।[१] हे राम ! शिव जी के जिस धनुष को तोड़कर तुम मदान्ध बने हो, उसकी कठोरता तो विष्णु जी ने पहले ही हर ली थी। अत उसे तोड़कर तुम अपने झूठे शौर्य का दम्भ मत भरो, क्योंकि जिस वृक्ष की जड़ को नदी की प्रचण्ड धारा ने पहले से ही खोखला कर दी उसे वायु के मृदु झोंके से पतित हो जाने में क्या समय लगता है ? अत देखो राम ! हमारा युद्ध तो बाद में होगा, पहले तुम मेरे इस धनुष को प्रत्यचा युक्त करो। यदि तुम धनुष को प्रत्यचायुक्त करने में समर्थ हो जाओगे तो मैं अपनी पराजय स्वीकार कर लूंगा।[२] परशुराम की इन गर्वोक्तियों को सुनकर और राम मधुर मुस्कान सहित धनुष को इस प्रकार हाथ में ले उठा लेते हैं, मानो परशुराम के वचनों का वही समय उत्तर हो।[३] तदनन्तर राम ने धनुष का एक भाग पृथ्वी पर निक्षिप्त कर जैसे ही उस पर डोरी चढ़ाते हैं वैसे ही त्रिपुरारि परशुराम उस अग्नि के समान निष्प्रभ हो जाते हैं जिसमें केवल धूम ही शेष रह गया है।[४]

यहाँ राम के युद्धवीर की सुन्दर व्यंजना हुई है। परशुराम आलम्बन हैं उनकी गर्वोक्तियाँ तथा राम को तोड़ने के लिए धनुष देना उद्दीपन विभाव है। राम द्वारा क्षणभर में धनुष को डोर चढ़ा देना मधुर मुस्कान इत्यादि अनुभाव हैं। अमर्ष विषाद मद चिन्ता, असूया इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं।

राम के युद्ध विषयक उत्साह की सफल व्यंजना रावण के युद्ध प्रसङ्ग में हुई है। पापी राक्षस रावण द्वारा अपनी प्रिय पत्नी सीता के अपहरण कर लिए जाने पर राम वानरों की विशाल सेना लेकर रावण की नगरी लङ्का पर आक्रमण कर देते हैं और उसे चारों ओर से घेर लेते हैं।[५] राक्षसों और वानरों का भयङ्कर युद्ध प्रारम्भ हो जाता है और राम रावण के जयघोष से दसों दिशाएँ विजृम्भित हो उठती हैं।[६] इसी बीच लक्ष्मण द्वारा सूपणखा का नासिकाच्छेदन कर दिये जाने से रावण की क्रोधाग्नि और भभक उठती है। और वे (राम और रावण) दोनों ही रणस्थल पर डटते हैं मानो दोनों को अपनी वीरता प्रदर्शन का आज ही शुभ अवसर प्राप्त हुआ हो।[७] शीघ्र ही रावण की सेना राम की वीर सेना से परास्त होकर काल कवलित हो जाती

---

१ रघुवंश ११।७४
२ रघुवंश ११।७६
३ वही ११।७७
४ वही, ११।७६
५ वही ११।८१
६ वही १२।७१
७ वही, १२।७२
८ वही, १२।८७

है और अकेला रावण बच जाता है।[1] जिस रावण ने इन्द्रादि लोकपालों को भी विजित किया था, अपने सिर को काटकर शिव को अर्पित कर दिया था तथा कैलाश पर्वत को उत्क्षिप्त कर दिया था, उस सत्ववीर्य और शौर्य से सम्पन्न रावण को देख कर राम ने यह समझ लिया है कि यह कम पराक्रमी नहीं है।[2] अभी युद्ध हो ही रहा था कि क्रोधी रावण राम की वाम-भुजा में शर प्रहार करता है और इधर राम का शर भी रावण के वक्षस्थल छेदन में सफल हो जाता है। दोनों योद्धा एक दूसरे को ललकारते हुए तथा अस्त्र को शस्त्र से काटते हुए युद्ध करते हैं। उनका क्रोध भी बढ़ता जा रहा है जैसे विजय प्राप्त करने के लिए शास्त्रार्थ करने वालों का क्रोध बढ़ता है।[4] कभी राम अधिक पराक्रमी प्रतीत होते हैं तो कभी रावण। किन्तु राम कोई साधारण धनुर्धारी नहीं हैं। रावण-वध के लिए अपना अमोघ ब्रह्मास्त्र धनुष पर चढ़ा लेते हैं और क्षणभर में रावण के दसों सिरों का इस सफाई के साथ छेदन कर देते हैं कि रावण के उन सिरों को तनिक भी कष्ट नहीं होता।[5]

यहाँ राम आश्रय तथा रावण आलम्बन है। रावण द्वारा राम पर शर-सन्धान उद्दीपन है। राम द्वारा ब्रह्मास्त्र सन्धान, शिरश्छेदन, आकाश से देवताओं द्वारा पुष्प-वर्षण इत्यादि अनुभाव हैं तथा हर्ष चपलता, तर्क, अमर्ष व्यभिचारी-भाव हैं।

रघुवंश में राम रावण के युद्ध का वर्णन बड़े ही साधारण ढङ्ग से किया गया गया है। अज तथा विरोधी राजाओं के युद्ध प्रसङ्ग में कवि ने अपनी जिस युद्ध-लिप्सु प्रवृत्ति का परिचय दिया वह फिर किसी भी प्रसङ्ग में मुखरित न हो सकी। इसका एकमात्र कारण यही कहा जा सकता है कि महाकवि यह भली-भाँति जानते थे कि राम-रावण का युद्ध तो लोक प्रसिद्ध है और लोग उससे अच्छी तरह से परिचित हैं। इस तथ्य की ओर उन्होंने स्वयं संकेत भी किया है। अतः उस प्रसङ्ग में कुछ विशेष कहना अनैतिहासिक हो जाता है। इसलिए कालिदास ने उसे कोई महत्व न देकर शीघ्रता से कुछ परिमित श्लोकों में ही युद्ध कथा को समाप्त कर दिया है।

मनस्वी और पराक्रमी राम के जीवन का एक पक्ष और है, वह है धर्मवीर का। लोक धर्म की रक्षा के लिए वह अपनी प्रियतर वस्तु का त्याग करने में तनिक भी विचलित नहीं होते हैं। प्राणेभ्योऽपि प्रियतरा अपनी पत्नी सीता पर, जिसके लिए

---

१ रघुवंश १२।८८ — २ रघुवंश १२।८९

३ वही १२।९० — ४ वही, १२।९२

५ वही, १२।९९ — ६ वही, १२।८७

उन्हें रावण जैसे दुराग्रही से भी मोर्चा लेना पड़ा, और असंख्य कष्ट झेलने पड़े, प्रजा द्वारा लगाए गए कलङ्क को सुनकर वैदेही के प्रेम में पगा राम हृदय तप्त लौहघन से आहत लौह के समान विदीर्ण हो जाता है। कर्त्तव्याकर्त्तव्य के बीच दोलायमान उनका चित्त यह निश्चय ही नहीं कर पाता कि वह निर्दोष प्रिया का त्याग कर दें, अथवा लोकापवाद की उपेक्षा कर दें।[1] किन्तु मनस्वी तथा धैर्यवान राम तत्काल ही यह निश्चय कर लेते हैं कि सीता-त्याग द्वारा ही अपवित्र कलङ्क का परिमार्जन हो सकता है क्योंकि यशस्वियों को अपना यश अपने शरीर से भी अधिक प्रिय होता है फिर स्त्री आदि भोग्य वस्तुओं की क्या गणना ?[2] इस प्रकार अपने हृदय को किसी प्रकार संयत करके विपन्न राम लक्ष्मण से कहते हैं—मैं यद्यपि सदाचारी होने के कारण पवित्र हूँ किन्तु जैसे भाप से दर्पण मलिन हो जाता है वैसे ही सूर्यवंश मेरे कारण कलङ्कित हो रहा है। जिस प्रकार हाथी आलान से खोलकर उस उखाड़ फेंकने की चेष्टा करता है वैसे ही अब मैं इस अपयश को सहन नहीं कर सकता।[3] सीता गर्भिणी है किन्तु कलङ्क प्रक्षालनार्थ पितृ आज्ञा से जिस प्रकार मैंने राज्य का त्याग कर दिया था वैसे ही सीता का भी परित्याग कर दूँगा।[4] पुनः लक्ष्मण को आज्ञा देते हुए यथाधर्मा राम कहते हैं—तुम्हारी गर्भिणी भाभी तपोवन-दर्शन की इच्छुक है, अतः तुम इसी बहाने इन्हें वाल्मीकि आश्रम में छोड़ आओ।[5] इस वाक्य को कहते समय राम को कितनी असीम वेदना हुई होगी इसे केवल उनका शोक संतप्त हृदय ही जान सकता है। किन्तु वर्णाश्रम धर्म की रक्षा तो करनी ही है अतः अपने शोक को किसी प्रकार निगृहीत कर वे राज्य कार्य में व्यस्त हो जाते हैं।

वस्तुतः यह राम के धर्म विषयक उत्साह की पराकाष्ठा ही है। प्रजा द्वारा लगाया गया कलङ्क उद्दीपन विभाव है—सीता का त्याग करना अनुभाव तथा शोक, वितर्क, श्रम, मति, धृति व्यभिचारी भाव हैं।

सीता का त्याग करने के पश्चात् अब राम एकमात्र पृथ्वी के ही पति रह गये हैं।[6] वे अभी राज्य कर ही रहे थे कि एक बड़ी अनहोनी घटना घटित होती है। एक ब्राह्मण कुमार की अकाल मृत्यु हो जाती है। ब्राह्मण अपने बालक पुत्र के मृत

---

१ रघुवंश १४।३३ — २ रघुवंश १४।३४
३ वही १४।३५ — ४ वही १४।३७
५ वही १४।३८ — ६ वही १४।३६
७ वही १५।४५ — ८ वही, १५।३८

शरीर को राजा के द्वार पर रखकर करुण क्रन्दन करने लगता है।[1] हे पृथ्वी! तुम दशरथ के हाथ से मुक्त होकर राम के हाथ में आकर बड़े कष्ट में पड़ गयी हो। तुम्हारी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी है।[2]

प्रजापालक राम ब्राह्मण के शोक की कथा सुनकर अत्यन्त लज्जित हो जाते हैं, क्योंकि इक्ष्वाकुवंशीय किसी भी राजा के राज्य में किसी की भी अकाल मृत्यु नहीं सुना गया था।[3] महाराज, ब्राह्मण को आश्वासन देते हैं कि 'तुम थोड़ा देर ठहरो, मैं अभी तुम्हारा शोक दूर किए देता हूं।' यह कहकर वे यमराज को विजित करने की इच्छा से पुष्पक विमान का स्मरण करते हैं।[4] धनुष लेकर ज्यों ही वे चलने को उद्यत होते हैं त्यों ही उन्हें यह आकाशवाणी सुनाई पड़ती है[5]—'हे राजन्! तुम्हारी प्रजा में कुछ दोष आ गया है। उसे खोज कर दूर करने से ही तुम्हारा उद्देश्य पूरा होगा। इस आप्त वचन को सुनकर राम चतुर्दिशाओं में गतिशील हो जाते हैं। भ्रमण करते हुए वे एक स्थान पर देखते हैं कि—एक पेड़ की शाखा पर उलटा लटका हुआ एक मनुष्य नीचे मुख किए धुआं पीकर तप कर रहा है। धुएँ के कारण उसके नेत्र रक्त हो गये हैं।[6] राम उससे पूछते हैं - 'आपका क्या नाम है और आप किस वंश के हैं?' वह तपस्वी उत्तर देता है - 'मैं देवपद लाभ के निमित्त तप कर रहा हूँ। मेरा नाम शम्बूक है और मैं शूद्र हूँ।[7] यह सुनकर महाराज विचार करते हैं कि शूद्रों का तप करने का अधिकार नहीं है। इस अनधिकारी के ही कारण मेरी प्रजा में अनवस्था फैल रही है। अतः शीघ्र ही उसका वध करने का निश्चय करते हैं।[8] वे शस्त्र से उसका शिरश्छेदन कर देते हैं। राम से दण्डित होकर शूद्र को वह शुभ गति मिल जाती है जो उस कठोर तप करने पर भी नहीं मिल सकती थी।[9]

यहां राम आश्रय हैं शम्बूक आलम्बन। ब्राह्मण कुमार की अकाल मृत्यु और पिता द्वारा करुण रोदन उद्दीपन है। राम द्वारा मृत्यु का कारण जानने के लिए तत्पर होना, ब्राह्मण को धैर्यावलम्ब कराना शूद्रवध करना इत्यादि अनुभाव तथा व्रीडा, वितर्क अमर्ष चिन्ता, विषाद व्यभिचारी भाव हैं। इस प्रकार यहां धर्म-विषयक उत्साह की सुन्दर व्यंजना हो रही है।

---

१ रघुवंश १५।४२
२ रघुवंश १५।४३
३ वही, १५।४५
४ वही, १५।४६
५ वही, १५।४४
६ वही, १५।४९
७ वही, १५।५०
८ वही, १५।५१
९ वही, १५।५३

इसके पश्चात्, रघुवंश में लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न यद्यपि प्रतिष्ठित नायक के रूप में नहीं अपितु उपनायक के रूप में ही सामने आते हैं किन्तु महाकवि ने उनके प्रसङ्ग में भी वीररस की ही प्रधानता दी है और इस प्रकार उन्हें घटना विशेष का नायक बनाकर अङ्गीरस की प्रधानता को नष्ट नहीं होने दिया है। वाल्मीकि रामायण में भरत और लक्ष्मण के चरित्र का तो पूर्ण विकास हुआ है किन्तु शत्रुघ्न के वीरोचित गुणों की चर्चा नहीं के बराबर हुई है। अतएव महाकवि ने इस सर्वथा उपेक्षित नायक (शत्रुघ्न) को अपने काव्य में स्थान दिया और उस चरित्र को ऐसा बाना पहनाया—कि सहृदयगण उससे भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते।

लवणासुर द्वारा उत्पीड़ित तपस्विगण अपने दुःख-निवारणार्थ राम की शरण में उपस्थित होते हैं। अवतारी राम मुनियों की रक्षा का भार शत्रुघ्न को सौंपते हैं मानो शत्रुघ्न द्वारा शत्रु का संहार कराकर उनका 'शत्रुघ्न' नाम चरितार्थ कर देना चाहते हों।[1] निर्भय शत्रुघ्न राम की आज्ञारूपी आशीर्वाद प्राप्त कर वन की ओर प्रस्थान कर देते हैं। महात्मा शत्रुघ्न स्वयं इतने पौरुषवान् थे कि सेना उनके लिए व्यर्थ ही थी। फिर भी महाराज राम की आज्ञा मानकर सेना को वे साथ ले लेते हैं।[2] जिस समय वे मधूपघ्न नगर में पहुँचते हैं उसी समय रावण भगिनी कुम्भीनसी का पुत्र लवणासुर अनेक पशुओं का वध करके इस प्रकार वन से आ रहा था मानो वन ने उसे यह कर के रूप में दिया हो।[3] शस्त्ररहित लवणासुर को अकेला देखकर उसके वध का यही उचित अवसर समझकर शत्रुघ्न उसे चारों ओर से घेर लेते हैं क्योंकि जो शत्रु के शक्तिहीन होने पर प्रहार करता है, वह अवश्य ही विजयी होता है।[4] शत्रुघ्न को देखकर लवणासुर गरज उठता है—'आज मेरे भोजन की सामग्री कम थी यह देखकर ब्रह्मा ने डर कर मेरा भोजन पूरा करने के लिए तुम्हें यहाँ भेज दिया है। यह कह कर वह शत्रुघ्न का वध करने के लिए एक भारी पेड़ उखाड़ लेता है। ज्यों ही वह उस वृक्ष को शत्रुघ्न पर फेंकता है त्यों ही वीर शत्रुघ्न बीच में ही उसके टुकड़े कर डालते हैं। वृक्ष के नष्ट हो जाने से लवणासुर एक भयङ्कर शिला से शत्रुघ्न पर प्रहार करता है पर शत्रुघ्न ऐन्द्र अस्त्र से उसे भी चूर चूर कर देते हैं। तथा अन्त में क्रोधित लवणासुर अपनी दक्षिण भुजा ऊपर उठाए हुए शत्रुघ्न पर झपटता है।[7] शीघ्र ही

---

१ रघुवंश १५।६
२ रघुवंश १५।९
३ वही १५।१५
४ वही १५।१७
५ वही १५।१८
६ वही, १५।२०
७ वही, १५।२१

शत्रुघ्न अत्यंत निपुणता से उस पर वैष्णव शर संचालन करते हैं। वैष्णव बाण से विद्ध होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ता है।[1] इस प्रकार जब लवणासुर का शत्रुघ्न ने वध कर डाला तो उन्हें यह सन्तोष हुआ कि अब मैं मेघनाद का मारने वाले तेजस्वी लक्ष्मण का सचमुच सगा भाई हूँ।[2] अपना कार्य पूर्ण हुआ देखकर तपस्विगण उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं, और अपनी प्रशंसा सुनकर शत्रुघ्न शील के कारण लज्जित हो जाते हैं।[3]

यहाँ शत्रुघ्न आश्रय हैं तथा लवणासुर आलम्बन। लवणासुर द्वारा आत्म-विकत्थना करना, वृक्ष प्रहार करना, शिला-प्रहार करना तथा शत्रुघ्न पर झपटना उद्दीपन विभाव है। शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर को घेर लेना, अस्त्र से प्रहार करना-अनुभाव तथा अमर्ष मति, चपलता, व्रीडा व्यभिचारी भाव हैं।

पुरुषोत्तम राम के अपने परम धाम को प्राप्त कर लेने के पश्चात् कुश राजगद्दी पर आसीन होते हैं। राम-पुत्र कुश अपने पिता के समान ही पराक्रमी, जितेन्द्रिय, तथा तेजस्वी हैं। कुशल शासक कुश अभी अपने योग्य गुणों द्वारा प्रजानुरंजन कर ही रहे थे कि ग्रीष्मऋतु का आगमन होता है, और कवि उनके वीर-स्वरूप की व्यंजना हेतु जलक्रीडा का प्रसङ्ग उपस्थित करता है—

ग्रीष्म ऋतु में सरयू के शीतल जल में सुखद स्नान का आनन्द लेने के लिए कुश अपनी रानियों के साथ जल में उतरते हैं। सरयू की तरङ्गों में राजहंस युगल तैर रहे हैं, और लताओं से झड़े हुए पुष्प प्रवाहित हो रहे हैं।[4] अभी कुश जलक्रीडा का सुख ले ही रहे थे, कि ऋषि अगस्त्य द्वारा प्रदत्त जैत्र आभूषण, जिसे राम ने राज्याभिषेक के साथ कुश को दिया था, जल में गिर पड़ता है।[5] जल विहार के पश्चात् जब कुश को यह ज्ञात होता है कि उनका दिव्याभूषण जल में गिर गया है तो वे बड़े दुःखी होते हैं, और धीवरों को आभूषण-अन्वेषण की आज्ञा देते हैं।[6] अथक प्रयत्न के बाद भी जब आभूषण नहीं मिल पाता, तब धीवरगण राजा के पास आकर सविनय निवेदन करते हैं कि 'हे देव! कठोर परिश्रम करने पर भी हम आभूषण को न प्राप्त कर सके, ऐसा लगता है कि जल निवासी कुमुद नामक नाग ने लोभ से उसे हरण कर लिया है।'[7] यह सुनकर कुश के नेत्र क्रोधारक्त हो जाते हैं, और तट पर

---

१ रघुवंश १५।२१
२ रघुवंश १५।२८
३ वही १५।२७
४ वही, १६।५४
५ वही, १६।७२
६ वही, १६।७४
७ वही, १६।७६

ही स्थित हो व नागा को नाश करने वाला गरुडास्त्र चढ़ा लेते हैं। धनुष के चढ़ते ही सरयू का जल क्षोभित हो उठता है और इस प्रकार गर्जन करने लगता है जैसे गह्वर में कोई गज चिंघाड़ रहा हो।[1] जल को समुद्र के समान मथा जाता हुआ देखकर घर जाते भयभीत हो उठते हैं, और उसका अपनी कन्या के साथ नागराज कुमुद जल में प्रकट होते हैं जैसे कोई कल्पवृक्ष निकल आया हो। कुमुद के हाथ में आभूषण देखकर कुश ने गरुडास्त्र उतार लिया क्योंकि सज्जनगण उन पर क्रोध नहीं करते जो नम्र होकर आगे आते हैं। प्रणाम कर कुमुद कहता है— आप नागों का वध करने वाले विष्णु के ही द्वितीय रूप हैं। अतः आप पूजनीय हैं। फिर मैं भला आपसे कैसे वैर कर सकता हूँ।

यहाँ आश्रय कुश है तथा आलम्बन कुमुद नाग। नाग द्वारा आभूषण चुरा लेना उद्दीपन विभाव है। सहसा क्रोधित हो जाना आँखों का रक्त हो जाना गरुडास्त्र चढ़ाने के लिए उद्यत होना इत्यादि अनुभाव हैं तथा अमर्ष मति, आवेग व्यभिचारी भाव।

इसके पश्चात् रघुवंश में सूर्यवंशी राजाओं का कोई विस्तृत वर्णन नहीं प्राप्त होता। कवि ने कुछ सीमित श्लोकों में ही उनका कथन परिगणनमात्र कर लिया है अथवा एक दो श्लोकों में विशेषणों के माध्यम से उनकी युद्धवीरता धर्मवीरता दानवीरता तथा दयावीरता इत्यादि की ओर संकेत मात्र कर दिया है। अतिथि निषध, नभ पुण्डरीक, क्षेमधन्वा देवानीक अहीनगु पारियात्र शिल, उन्नाभ, वज्रनाभ शङ्खण व्युषिताश्व विश्वसह हिरण्यनाभ, कौसल्य, ब्रह्मिष्ठ पुत्र पुष्य, ध्रुवसन्धि सुदर्शन इत्यादि राजाओं का वर्णन काव्यात्मक न होकर वर्णनात्मक ही रह गया है।

रघुवंश के अन्तिम सम्राट् अग्निवर्ण का विस्तृत परिचय कवि ने दिया है। अग्निवर्ण बड़ा ही विलासी और कर्तव्यच्युत राजा है। देश में सर्वत्र शान्ति होने के कारण उसकी कामुकता और भी बढ़ जाती है और राज्यकार्य से विमुख होकर वह अन्तःपुरवासी हो जाता है। अग्निवर्ण रघुवंशी राजाओं के वीर स्वरूप का अपवाद कहा जा सकता है। किन्तु भोज ने शृङ्गार प्रकाश में शृङ्गाररस के सोलह भेदों में एक भेद शृङ्गार वीर मानकर उसको भी रस के अन्तर्गत स्थान दे दिया है[4] और इस प्रकार रघुवंश के मुख्य रस वीर की अक्षुण्णता नष्ट होने से बच जाती है।

---

१ रघुवंश १६।७७, ७८
२ रघुवंश १६।७९, ८०
३ वही, १६।८२
४ शृङ्गार प्रकाश भोज

मेघदूत मे रस व्यजना—

महाकवि कालिदास का प्रतिभाविलास खण्डकाव्य 'मेघदूत' विप्रलम्भ-शृङ्गार का अद्वितीय सजना है। काव्य का नायक प्रवासित यक्ष है जो राज्य काय मे प्रमाद दिखाने के कारण अलकापति कुबेर द्वारा प्रिया से दूर जाने के लिए अभिशप्त होता है। अब प्रमी यक्ष अपनी नवोढा पत्नी म वियुक्त ही नही होता, अपितु उसे सर्वाधिक कठोर दण्ड यह मिलता है कि शाप की अवधि म वह अपनी पत्नी से कदापि नही मिल सकता। अत वह घर से प्रवासी हो जाता है और दूर दक्षिण की विन्ध्य श्रेणियो के मध्य कही रामगिरि आश्रमो में जा बसता है।

काव्य का प्रधान रस विप्रलम्भ-शृङ्गार है। 'काव्यानुशासन' के अनुसार विप्रलम्भ शृङ्गार की निरुक्ति इस प्रकार है—'सम्भोगसुखास्वादलाभेन विशेषेण प्रलम्यत आत्माऽनेति विप्रलम्भ'। तात्पय यह है कि नायक नायिका के परस्परानुराग म मिलन राहित्य ही विप्रलम्भ है। इसीलिए नाट्यदपणकार कहते हैं— परस्परानुरक्तयोरपि विलासिनो पारतन्त्र्यादर घटन चित्तविश्लेषणे वा 'विप्रलम्भ'। आचाय विश्वनाथ विप्रलम्भ के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहते हैं—इसमे नायक-नायिका का परस्परानुराग हुआ करता है किन्तु परस्पर मिलन नही होने पाता।[१]

वियोग मे रति का भाव लगा रहता है और यही रति भाव विप्रलम्भ शृङ्गार को करुण से भिन्न बनाता है। पुनर्मिलन की आशा वियोग मे सयोग का सुख स्वप्न दिखाता है। सयोग मे जो आनन्द प्रियजन के मिलन से होता है वह वियोग मे प्रियजन के चिन्तन तथा गुणकथनादि के माध्यम से होता है। इसमे प्रतिक्षण नायक का स्मरण होता रहता है। इस स्मरणजन्य सयोग म जो सुख है वह उस प्रत्यक्ष सयोग म भी अधिक श्रेष्ठता देता है। इसमे गुरुजनो की लज्जा का न भय है, न वियोग का उत्साह शून्य करने वाला शङ्का। इसलिए लोग वियोग को सुखद माना करते हैं।[२] यदि वियोग म यह सुख न होता तो दुख सहकर भी प्राणी वियोग म मग्न क्यो रहते ?

विप्रलम्भ शृङ्गार के चार भेद हैं—पूवराग, मान, प्रवास और करुण।[३] पूवराग के अनेक कारण उपनिबद्ध किए गए हैं जिसमे श्रवण, प्रत्यक्ष दशन चित्रदशन, स्वप्न दशन, दैवपारतन्त्र्य, मानव-पारतन्त्र्य इत्यादि हैं। इसमे दस प्रकार की क्रमिक काम या

---

१ सा० द० ३।१८७ २ कबीर

३ सा० द० ३।१८८ पृ० २३२

प्रेम दशायें सम्भव हैं—अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, सम्प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मृति (मरण)। प्रवास का अभिप्राय है कार्य वश, शाप वश अथवा सम्भ्रमवश नायक का देशान्तर-गमन। प्रवास विप्रलम्भ में नायिका की आठ प्रकार की चेष्टाएँ हुआ करती हैं—अङ्गमालिन्य, वस्त्रमालिन्य, एकवेणी धारण, निश्वास, उच्छ्वास, रोदन, भूमिपतन आदि।[1] और इसमें दस प्रकार की दस काम-दशायें दृष्टिगोचर होती हैं—अङ्गों का असौष्ठव, सन्ताप, पाण्डुता, कृशता, अरुचि, अधृति, अनालम्बनता, तन्मयता, उन्माद तथा मूर्च्छा।

मेघदूत में शापज प्रवास का ही विस्तृत वर्णन किया गया है। प्रिया के मधुर कल्पनाओं में ही सदैव निमग्न रहने वाले प्रवासी यक्ष के लिए मिलन की आतुरता रहते हुए भी प्रिया-समागम दुर्लभ हो जाता है और उसकी विरह विह्वलता वासना परिपक्व बुद्धि को विफल बना डालती है। वह अवधिविप्रयुक्त यक्ष किसी प्रकार शाप के अभी कुछ ही मास व्यतीत कर पाया था कि आषाढ़ के प्रथम दिन ही पर्वत की सानु पर मेघ को आश्लिष्ट करते देखकर उसकी विरह-वेदना पुनः उद्दीप्त हो उठती है और वह प्रिया के पास अपना शुभ सन्देश भेजने के लिए व्याकुल हो उठता है। विरह की असहायता ने यक्ष को इतना दीन बना दिया है कि वह अपनी सुध-बुध खो बैठता है। उसकी विचार शक्ति इतनी निर्बल हो गयी है कि वह चेतन-अचेतन का भी निर्णय नहीं कर सकता। अन्य कोई उपाय न देखकर विवश यक्ष जलद से ही प्रिया के पास प्रणय-सन्देश ले जाने की आशा भरी प्रार्थना करने लगता है।[2] पूर्वमेघ में अलकापुरी जाने तक के मार्ग का विस्तृत परिचय देने के पश्चात् उत्तरमेघ में अपनी प्रिया का विस्तृत परिचय देता हुआ कहता है हे मेघ! दुबली-पतली, शिखर पंक्ति के समान दाँतों वाली, पके हुए बिम्बाफल के समान ओष्ठों वाली, क्षीण कटिवाली, चकित हरिणी के नयनों के समान नेत्र वाली, गहरी नाभि वाली, नितम्बभार से मन्द गतिवाली, स्तनों से कुछ झुकी हुई, स्त्रियों में जो ब्रह्मा की प्रथम रचना (सब सुन्दरी) वहाँ [illegible] मेरी प्रिया समझना।

नायिका प्रसंगों में इस प्रकार का वर्णन करना कालिदास का अभ्यास सा बन गया है। जो विश्व में ब्रह्मा की सर्वश्रेष्ठ रचना, अनिन्द्य सुन्दरी होती है उसे ही कवि अपने काव्य का आलम्बन (नायिका) बनाता है।

---

१ दश रूपक ४।२०४ २ सा० द० ३।२०५
३ पू० मे० २ ४ पू० मे० ७

मेघदूत वस्तुत यक्ष की अपनी प्रेम-कहानी है, जो विरही है। अत कवि ने बडी कुशलता के साथ विप्रलम्भ रति का चित्रण किया है। राम गिरि पर बैठा यक्ष स्वय रति विप्रलब्ध, क्षीणदेह विरह की प्रतिमूर्ति बना है।[1] पति-वियोग मे व्याकुल अपनी पत्नी की जिस वियोगावस्था की वह कल्पना करता है और जिसका उसने स्वय भूयोभूय अनुभव किया है तथा जिसके स्पष्टीकरण के लिए वह मेघ मे भी कहता है कि 'तुम केवल मेरे कहने मे न मान लो वरन् तुम स्वय उसे जाकर देख लेना—' यहा विप्रलम्भ का चित्रण उभयनिष्ठ किया गया है। प्रारम्भ म नायिका के ही विरह का वर्णन हुआ है अत यहा यक्ष आश्रय और यक्षिणी आलम्बन बनते हैं। यक्ष अपनी पत्नी के रति का जो चित्रण करता है वह केवल रति भाव को उभयनिष्ठ बनाने के लिए ही है।

विरहिणी यक्षिणी ने प्रिय के वियोग म बहुमूल्य वस्त्राभूषणो का त्याग कर मलिन वस्त्र तथा एक-वेणी धारण कर लिया है। अब न तो उसे विषय के प्रति आकर्षण है और न शृङ्गार के प्रति मोह,—क्योकि उन सब का आलम्बन प्रिय तो प्रवासी हो गया है और अब मिलना तो दूर रहा देखना भी दुर्लभ हो गया है। सारा जगत् शून्य हो गया है। दिन भर वह चुप रहती है। प्रिय के बिना तो अब विरह के दिन बडी कठिनाई से व्यतीत होते हैं। अत्यधिक विरह-वेदना से हिमहत कमलिनी के समान उसके मुख की कान्ति भी विवर्ण हो गयी है।[2]

विप्रलम्भ के भुक्तभोगी महाकवि ने विरहविधुरा यक्षिणी का शिशिर मथिता पद्मिनी के रूप में जो हृदय-द्रावक चित्र खींचा है—उसमे प्रवास का परिपोषण सचमुच बहुत प्रगाढ एव मर्मस्पर्शी हो उठा है। यक्षिणी को तुषार से मारी कमलिनी के समान कहने से उसकी क्षीणता की स्पष्ट व्यजना हो रही है, साथ ही शोक विषाद, चिन्ता इत्यादि व्यभिचारियो की भी सु दर व्यजना हो रही है।

यक्ष को अपने प्रेम के प्रति असीम विश्वास है और वह यह निश्चय रूप म जानता है कि 'मेरे वियोग म मेरी पत्नी अत्यधिक रोदन के कारण सूजी हुई आँखो वाली, निश्वासोच्छ्वास के कारण पाक अधरोष्ठवाली, एक पार्श्व से लटा हुई तथा लटकते हुए केशो के कारण स्पष्ट मुख न दिखाई देने वाली, मेघाच्छादित हो जाने के कारण क्षीणप्रकाश वाले चन्द्रमा के समान बडी ही दीन दशा को धारण कर रही होगी। कभी तो वह देवताओ की आराधना कर रही होगी कभी अनुमान से मग्न

---

१ पू० मे० २   २ उ० मे० २३

३ उ० मे० २४

चित्र बना रही होगी और क्या पिंजरस्थ सारिका से पूछ रही होगी कि हे मधुर-वचना ! क्या तुझे कभी अपने प्रिय की याद आती है क्योंकि तू तो उनकी प्यारी थी ?[1]

इस सारिका सम्भाषण के माध्यम से यक्षिणी की उत्कण्ठा की सुन्दर व्यंजना हो रही है। प्रारम्भ के इन श्लोकों में विरहिणी यक्षिणी की चेष्टाओं का ही परिचय मिलता है।

यहाँ मल्लिनाथ ने भी प्रवासावस्था में विरह वेदना की दस काम दशाओं का उल्लेख किया है—वे इस प्रकार हैं—नयनप्रीति मन सङ्ग संकल्प जागरण कृशता अरति लज्जा त्याग उन्माद मूर्च्छा और या मृत्यु। इनमें से नयनसङ्ग और चक्षु-प्रीति तो संयोग से पूर्व होना है और यहाँ यक्ष यक्षिणी का संयोग तो हो चुका था अतः इस दशा का वर्णन कवि ने नहीं किया है। इस प्रकार प्रथम तथा अन्तिमावस्था के अतिरिक्त अन्य सभी दशाओं का चित्रण कालिदास अनुपम रूप में प्रस्तुत करते हैं। यक्ष मेघ से कहता है—'हे सौम्य ! मलिन वसन अङ्क में वीणा को रखकर मेरे नाम वाले गीत को उच्च स्वर में गाने की इच्छुक वह प्रिया अश्रुबिन्दुओं से आर्द्र वीणा के तारों को जैसे तैसे पोछकर (किन्तु मेरा स्मरण हो जाने के कारण) पुनः पुनः स्वरचित स्वरों के आरोहावरोह को ही भूलती हुई दिखाई देगी।[3]

यहाँ 'मन सङ्ग' दशा का चित्रण है।

फिर संकल्पावस्था—का चित्रण करते हैं—मेरे विरह के प्रथम दिन से ही वह देहली पर नित्य पुष्प रखकर गिन रही होगी कि अब विरह के कितने मास शेष रह गये हैं अथवा वह मेरे साथ किए गए रति सुख का मन ही मन आनन्द ले रही होगी क्योंकि प्रियतम के विरह में स्त्रियों के प्राय ऐसे ही विनोद हुआ करते हैं।

'जागरावस्था' का भी वर्णन इस प्रकार हुआ है—हे मेघ ! कार्यों में व्यस्त रहने के कारण तुम्हारी सखी को दिन में मेरा दुःसह्य विरह न पीड़ित करता होगा, किन्तु रात्रि में मनोविनोद का कुछ उपाय न होने के कारण समय बड़े कष्ट से व्यतीत होता होगा इसलिए अधरात्रि के समय उस साध्वी को मेरे सन्देश से पर्याप्त सुख पहुँचाने के लिए भवन के झरोखे में स्थित होकर देखना क्योंकि उस समय वह पूर्ण निद्रा न आने के कारण भूमि पर पड़ी मिलेगी।[5]

---

१ उ० मे० २५ २ मल्लीनाथकृत मेघदूत के ३३२ श्लोक की टीका प्रसंग मे।
३ उ० मे० २६ ४ उ० मे० २६ ५ उ० मे० २८

हे भाई ! मेरी प्रिया जिन्हें गवाक्ष के समय पूर्ण रति-सुख का आनन्द लेती हुई व्यतीत करती थी, उन्हीं विरह के कारण दीर्घ रातों को मानसिक व्यथा से क्षीण विरह शय्या पर एक ही करवट लेटी हुई, पूर्व में क्षितिज में केवल एक कलामात्र शेष रहने वाली चन्द्रमा की आकृति के समान दुर्बल होकर विरह के उष्ण अश्रुओं को बहा-बहा कर व्यतीत कर रही होगी।[1] यहाँ कार्श्यावस्था का वर्णन हुआ है।

यहाँ यक्षिणी की विरह वेदना का बड़ा ही सुन्दर चित्रण कवि ने किया है। उसकी दशा केवल एक कला-शेष बचे चन्द्रमा के समान हो गयी है। जिस प्रकार प्रभात होने पर चन्द्रमा की अन्तिम कला भी नष्ट हो जाती है उसी प्रकार यक्ष का तात्पर्य यह है कि यदि मेरी पत्नी को शीघ्र ही मेरा कुशल सन्देश न मिलेगा तो वह चन्द्रमा की अन्तिम कला के समान शीघ्र ही मर जायेगी।

गवाक्ष मार्ग से प्रवेश करती हुई अमृत के समान शीतल चन्द्र किरणों के और पूर्व प्रीति के कारण प्रिया मुख करेगी किन्तु विरह के कारण नेत्र के किरणें उसे तप्त करने लगेंगी तो असह्य दुःख के कारण आँसुओं से भारी बनी पलकों से नेत्र बन्द करती हुई बादलों से आच्छादित दिन में न विकसित और न अविकसित स्थलकमलिनी के समान न जागती हुई और न सोती हुई मेरी प्रिया दिखाई देगी।[2] यहाँ 'विषय-द्वेष या अरतिदशा' का वर्णन हुआ है।

हे मेघ ! विरह काल में आजकल कोरे जल से स्नान करने के कारण सूखे और बिना सँवारे हुए बाल, उसके गाल पर बार बार लटक कर किसलय जैसे मृदु होठों को मुरझा देने वाले निःश्वासों से हिल रहे होंगे। स्वप्न में किसी प्रकार मेरा सम्भोग प्राप्त हो सके यह समझकर आँखों में नींद बुला रही होगी किन्तु निरन्तर प्रवाहित होने हुए अश्रु उसकी आँखें नहीं लगने देती होंगी।[3] यहाँ लज्जा त्याग का वर्णन हुआ है।

हे मित्र ! विरह के प्रथम दिन से ही कुसुम माल को त्यागकर एक वेणी धारण कर लिया होगा जो शापान्त में विरह से रहित हुए मेरे द्वारा खोली जाने वाली है, स्पर्श में क्लेशदायक, कठोर तथा उलझे हुए अपने बालों को बिना कटे हुए नाखूनों वाले हाथ से कपोलों पर से बार बार हटाती हुई मेरी प्रिया दिखाई देगी।[4] यहाँ चित्त विभ्रमदशा का वर्णन हुआ है।

---

१ उ० मे० ३१ — २ उ० मे० ३२

३ उ० मे० ३३ — ४ उ० मे० ३४

हे मेघ! अत्यधिक दुःख के कारण कष्टों के मध्य में पड़ी हुई आभूषण विहीन कोमल शरीर को धारण करने वाली उस अबला को देखकर तुम भी उसकी दशा पर अपने नवीन अनुकम्पा अश्रु गिराए बिना न रह सकोगे क्योंकि दयालु हृदय वाले प्रायः सभी लोग दूसरों के दुःख को देखकर द्रवीभूत हो जाते हैं।[1] इस प्रकार यहाँ मूर्च्छावस्था का वर्णन हुआ है।

इस प्रकार प्रिया की विरहावस्था का विस्तृत परिचय देने के पश्चात् यक्ष मेघ को विश्वास दिलाता है कि हे सखा! मैंने जो कुछ भी कहा वह असत्य नहीं है। तुम्हारी सखी का हृदय मेरे प्रति अनुराग से पूर्ण है। अतः अपने को सुभग समझने का भाव ही मुझे वाचाल बना रहा है ऐसा नहीं है अपितु हे बन्धु! जब तुम मेरी प्रिया के पास जाओगे तो सब कुछ तुम्हें शीघ्र ही प्रत्यक्ष हो जायगा।[2]

इसके पश्चात् यक्ष अपनी प्रिया की विरह व्याकुलता का जो विस्तृत परिचय देता है वह सब अनुभाव की कोटि में ही आता है। यक्ष मेघ से कहता है— हे मेघ! जब तुम उसके पास पहुँचोगे, तब उस मृगनयनी का वह बायाँ आँख फड़क उठेगा जिस पर बाल ढके हुए होंगे जो अंजन न लगाने से रूखी हो गयी होगी तथा बहुत दिनों से मदिरा पान न करने के कारण भौंहों के विलास को भूल गयी होगी। हे मेघ! तुम्हें देखते ही कदली के तने के समान गौरवर्ण उसकी जाँघ भी फड़क उठेगी जिस पर मेरे नखक्षत अङ्कित थे किन्तु दुर्भाग्य से तुम्हें अब मेरे हाथ के न तो नख क्षत के चिह्न ही वहाँ मिलेंगे और न उस पर मुक्ता जाल ही।[4] इसी क्षण यक्ष को कुछ स्मरण हो जाता है और वह मेघ को समझाता हुआ कहता है हे मेघ! यदि उस समय मेरी प्रिया निद्रा का आनन्द ले रही हो तो चुपचाप उसके पीछे बैठकर क्षणभर प्रतीक्षा करना जिससे कहीं स्वप्न में वह मेरा आलिङ्गन कर रही हो तो मेरे कण्ठ में पड़ी हुई उसकी भुजाएँ निद्राविच्छेद के कारण छूट न जाएँ।[5] जब एक प्रहर ठहरने पर भी वह आँखें न खोले तो तुम मेरी प्यारी को अपने जल की शीतल फुहारों से जगा देना और धीमे गर्जन के शब्दों में कहना — हे सौभाग्यवती! मैं तुम्हारे पति का प्रिय मित्र मेघ तुम्हारे पास उसका (शुभ) सन्देश लेकर आया हूँ। हे अबला! तुम्हारा वियोगी सहचर रामगिर्याश्रम पर कुशल से है और तुम्हारी कुशलता को जानने का इच्छुक है।[7]

---

१ उ० मे० ३५
२ उ० मे० ३६
३ उ० मे० ३७
४ उ० मे० ३८
५ उ० मे० ३९
६ उ० मे० ४०
७ उ० मे० ४१

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि मेघदूत में विप्रलम्भ का चित्रण उभयनिष्ठ है अतः नायिका का विस्तृत वर्णन करने के पश्चात् अब कवि सन्देश कथन के माध्यम से यक्ष के विरहावस्था का वर्णन प्रारम्भ करता है। यहाँ से अब आश्रय यक्ष है और यक्षिणी आलम्बन है और यक्ष की समस्त चेष्टाएँ अनुभाव रूप हैं। यक्ष कहता है कि 'हे मेघ ! मेरी प्रिया से कहना कि तुम्हारे प्रिय का मार्ग वैरी ब्रह्मा रोके बैठा है अतः वह तुमसे मिलने में असमर्थ है किन्तु वह अपने क्षीण शरीर अत्यन्त सन्ताप, अश्रुयुक्त उत्कण्ठित एवं दीर्घ उच्छ्वास लेने वाले अङ्गों से यह समझ लेता [redacted] कि तुम भी उसी प्रकार क्षीण, सन्तप्त, अश्रुयुक्त, निरन्तर उत्कण्ठित, उष्णोच्छ्वासे न रही होगी'।[1]

यहाँ नायक नायिका की समदशा का सुन्दर चित्रण हुआ है, उत्कण्ठित होना, उच्छ्वास लेना अश्रुविमोचन, इत्यादि अनुभाव हैं तथा दैन्य विषाद व्यभिचारी भाव है।

विरहकाल में विरहिणियों के चित्त बहलाने के कुछ उपाय होते हैं जिन्हें मनोविनोद के साधन कहा जाता है जैसे सादृश्यदर्शन, चित्रदर्शन स्वप्नदर्शन प्रियाङ्ग स्पृष्टस्पर्शन इत्यादि इन सभी मनोविनोदों को कवि ने बड़ी ही निपुणता से प्रस्तुत किया है।

सादृश्यदर्शन—

'हे प्यारी ! मैं यहाँ बैठा प्रियङ्गु की लताओं में तुम्हारे शरीर की चकित हिरणियों की चितवन से तुम्हारे दृष्टि विलासों की चन्द्रमा में तुम्हारे मुख शोभा की मयूर के पङ्खों में केशों की तथा छोटी-छोटी नदी की तरङ्गों में तुम्हारे भ्रूविलासों की कल्पना करता हूँ। परन्तु हे प्रणयकुपित ! मुझे खेद है कि इनमें किसी भी एक वस्तु में पूर्णतया तुम्हारी समता नहीं मिल पाती।'[2]

चित्रदर्शन—

'हे प्रिया ! शिलाखण्ड पर प्रणयकुपित तुम्हारी आकृति बनाकर ज्योंही अपने को तुम्हारे चरणों में गिराना चाहता हूँ, त्योंही बारम्बार प्रवाहित होने वाले अश्रुओं से आँखें भर जाती हैं जिससे मैं तुम्हें ठीक से देख नहीं पाता। निर्दयी दैव उस चित्र में भी हम दोनों का समागम सहन नहीं कर पाता।'[3]

---

१ उ० मे० ४४   २ उ० मे० ४६

३ उ० मे० ४७

स्वप्न दर्शन—

जब कभी स्वप्न में किसी प्रकार तुम्हें देखकर प्रगाढ़ आलिङ्गन करने के लिए अपने हाथ ऊपर फैलाता हूँ तो उस समय वनदेवता भी मेरी दशा पर दुःखी होकर उनसे मोती के समान बड़े बड़े अश्रुकण वृक्ष के कोमल पत्तों पर गिराया करते हैं।[1]

प्रियाङ्गस्पृष्टस्पर्शन—

हे गुणशालिनि! देवदारु के वृक्षों के पुष्पों की शाखाओं में से लगकर उनसे बहने वाले रस से सुगन्धित हुई दक्षिण दिशा में बहने वाली हिमालय की पवन को मैं यह समझ कर आलिङ्गन करता हूँ कि सम्भवतः इसने तुम्हारे अङ्ग का स्पर्श किया होगा।[2]

यक्ष पुनः अपनी विरहोत्कण्ठा का कथन करता हुआ कहता है— हे चञ्चलनयने! मैं मन में यही प्रार्थना करता हूँ कि किसी प्रकार लम्बे-लम्बे पहरों वाली रात्रि क्षण की भाँति छोटी हो जाए तथा दिन भी सब ऋतुओं में मन्द-मन्द धूप वाला हो जाए किन्तु मेरी यह सब प्रार्थना दुर्लभ हो गयी है और सन्तापपूर्ण मेरे हृदय को तुम्हारी विरह वेदनाओं ने असहाय बना दिया है।[3]

पुनः स्वयं ही वह अपनी प्रिया को धैर्य बँधाता हुआ कहता है—हे प्रिये! अनेक प्रकार से सोच विचार करता हुआ मैं अपने आपको ही धैर्य बँधाता हूँ इसलिए हे सुभगे! तुम भी अत्यधिक कातर न हो। सुख और दुःख तो पहिये के चक्र के समान सदैव आते-जाते ही रहते हैं।[4]

वास्तव में वियोगी प्राणी के लिए आशा ही सबसे बड़ा अवलम्ब होता है—जीवित रहने के लिए। वियोग के पश्चात् मिलन की आशा ही उन्हें कठिन से कठिन दुःखों को सहन की प्रेरणा देती रहती है। यदि वियोगी आशावादी न होगा तो सम्भव है उसकी मृत्यु हो जाए इसीलिए तो यक्ष प्रिया को आशा बँधाता हुआ कहता है—हे सुतनु! विष्णु भगवान् के शेषशय्या से उठने के पश्चात् मेरे शाप का अन्त हो जायगा। अब विरह के शेष चार महीने किसी प्रकार आँख मींच कर व्यतीत कर दो। इसके बाद तो हम शरद् ऋतु की पूर्णरूपेण विकसित चाँदनी वाली रात्रियों में विरह में द्विगुणित हुई अनेक अभिलाषाओं को पूर्ण करेंगे।

यहाँ अपनी पत्नी को विश्वास दिलाता हुआ अभिज्ञान का कथन करता हुआ कहता है – हे अबले! पहले मेरे गले में लगकर सोती हुई, तुम कुछ उच्च स्वर से रो

---

१ उ० मे० ४९ २ उ० मे० ५०
उ० मे० ५१ ४ उ० मे० ५२
५ उ० मे० ५३

कर जाग पड़ी थी और मेरे बारम्बार पूछने पर हे मितवा तुमने किसी स्त्री के साथ रमण करते हुये स्वप्न में देखा है—इस प्रकार तुमने मन-ही मन मुस्कराते हुए उत्तर दिया था।[1]

यक्ष का प्रेम एकनिष्ठ है और वह अपनी प्रिया से अपार स्नेह करता है इसलिये वह कहता है—हे काली नेत्रवाली ! पहिचान का यह चिह्न देने के कारण मुझे कुशल समझकर तुम लोक निन्दा से मुझ पर अविश्वास न कर बैठना। कहते हैं विरह में प्रेम कुछ कम हो जाता है किन्तु सत्य तो यह है कि भोग न कर सकने के कारण अभिलषित वस्तु के प्रति बढ़े हुए रसवाला होकर, प्रेम पुंज बन जाता है।[2]

वस्तुतः विरह ही सच्चे प्रेम की कसौटी है। वियोग में प्रेम और अधिक तीव्र और विश्वसनीय बनता है। उपयुक्त श्लोक के द्वारा कवि ने प्रेम की सुन्दर व्यंजना की है। प्रेम अवस्था भेद स्नेह से बड़ा माना गया है। रसाकर में स्नेह की उस चरम कोटि को प्रेम कहा गया है, जिसमें क्षणभर का भी वियोग असह्य हो जाता है।

इस प्रकार प्रथम वियोग के कारण दुःखी अपनी प्रिया को भली प्रकार धैर्यावलम्बन कराकर[3] यक्ष मेघ से पूछता है कि हे प्रिय सखे ! क्या तुमने अपने मित्र के कार्य करने [illegible] निश्चय कर लिया"। यक्ष वास्तव में विरह में इतना उन्मत्त हो गया है कि मेघ के मौन को स्वीकारोक्ति समझ लेता है।[4] और उसके सुखमय भविष्य की कल्पना करने लगता है।[5]

इस प्रकार मेघदूत विप्रलम्भ यक्ष एवं यक्षिणी की विरह व्याकुलता का अभिराम चित्र प्रस्तुत करता है। काव्य में एक दूसरे के वियोग से दुःखी, परस्पर आलम्बन और आश्रय बने नायक नायिका के अनुभावों का ही अधिकांशतः वर्णन हुआ है। आषाढ़ से प्रथम दिन मेघोत्थान का दर्शन करना उद्दीपन विभाव है। नायिका द्वारा निश्वासोच्छ्वास लेना, शय्या पर करवटें बदलना, गीतगायन, सारिका से सम्भाषण करना, आभूषणों का त्याग कर देना, भूमि पतनादि अनुभाव हैं तथा पश्चात् में आश्रय बने हुये यक्ष द्वारा प्रिया आलिङ्गन करने के लिए हाथ उठाना, चित्र बनाकर चरण में गिरना, प्रार्थना करना, अश्रुविमोचन इत्यादि अनुभाव हैं। विषाद, दैन्य, औत्सुक्य, मोह, चिन्ता, वितर्क इत्यादि व्यभिचारी भावों की यथास्थान सुन्दर व्यंजना हुई है।

---

१ उ० मे० ५४ २ उ० मे० ५५
३ उ० मे० ४ उ० मे०
५ उ० मे०

ऋतुसंहार—

महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'ऋतुसंहार' प्रकृति का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करता है। इसमें ऋतुओं का अधिकतर उद्दीपन विभाव रूप में वर्णन होने के कारण तथा विशिष्ट आलम्बन एवं आश्रय का स्पष्ट उल्लेख न होने के कारण साधारणीकरण की प्रक्रिया नहीं हो पाती और सहृदयों को रसानन्द नहीं मिल पाता। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि भविष्य के शृङ्गार निरूपण की योजना के लिए एक प्रकार की उद्दीपन सामग्री एकत्रित कर रहा है। ग्रीष्म का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

'सूर्य का धूप बहुत तीक्ष्ण हो गया है, रात के समय चाँद प्रिय लगता है, शीतल जल में बहुत देर तक नहाया जा सकता है सन्ध्या सुहावनी हो गयी है और प्रेमियों में कामदेव का वेग मन्द पड़ गया है।'[1]

ऋतुवर्णन में कालिदास ने आँख नाक कान आदि बाह्य इन्द्रियों से ग्रहण होने वाले प्रकृति के गोचर रूप और मानव जीवन पर उनके स्थूल प्रभावों का वर्णन सीधे-सादे तथ्य कथन के रूप में किया है। काव्य में सूक्ष्म कल्पना का प्राय अभाव-सा है। मानव जीवन पर ग्रीष्म के प्रभाव की एक झाँकी दर्शिए—स्त्रियों ने बहुत महीन हल्की रेशमी साड़ी पहन कर उस पर करधनी बाँध ली है चन्दन से पुते स्तनों पर हार धारण कर लिए हैं और स्नान के पश्चात् जूड़ों को भीनी सुगन्ध से सुगन्धित कर लिया है। अतः जब प्रेमी लोग उनसे मिलने आते हैं तो इन शीतल उपचारों के कारण उनकी भी तपन मिट जाती है।[2]

विद्वानों ने ऋतुसंहार को कालिदास की प्रथम रचना माना है। उनका कथन है कि यह सर्वप्रथम रचना है इसलिए इसमें प्रेम की उदात्तता एवं परिमार्जित रुचि नहीं जो अन्यत्र पायी जाती है। यद्यपि इसमें शृङ्गारिक पृष्ठभूमि में प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण एवं चारु चित्रण है तथापि इसके शृङ्गार में सर्वत्र वासना का आधिक्य है।[3] ग्रीष्म का वर्णन करता हुआ कवि कहता है— इस समय लोग कामदेव को उसी प्रकार जगाते हैं जैसे कामी स्त्रियाँ अपने सुप्त प्रेमियों को चन्दन से सुवासित शीतल जल से आर्द्र पंखों की हवा से या हारयुक्त स्तन प्रेमी के वक्षस्थल पर रखकर या वीणा के साथ मधुर गीत गा गाकर जगाया करती हैं।"

---

१ ऋ० सं० १।१   २ ऋ० सं० १।४

३ 'कालिदास की कला और संस्कृति', प० देवीदत्त शुक्ल पृ० २१२

वर्षा ऋतु में स्त्रियाँ अपने भारी भारी नितम्बों पर मेखला लटकाकर, कानों में सुगंधित पुष्पों के कर्णफूल पहन कर, गले में माला पहनकर मदिरा पीकर अपने प्रेमियों के मन में प्रेम उकसा रही हैं।[1]

उद्दीपन विभावान्तर्गत प्रकृति का चित्रण बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है—श्वेत कमल के समान उज्ज्वल बादल जिन पहाड़ी चट्टानों को चूमते चलते हैं और जिन पर मयूर नृत्य कर रहे हैं, उन चट्टानों से बहती हुई निर्झरणियों को देखकर प्रेमियों के मन में हलचल मच जाती है।[2]

वर्षाऋतु में प्रकृति सुन्दरी यदि विदग्धा की तरह प्रतीत होती, तो शरद् में नववधू के समान। शरत् काल में जहाँ एक ओर सम्भोग शृङ्गार की सुन्दर छटा दीख पड़ता है और प्रकृति के उन्मादक रूपों को देखकर कामियों का मन डाँवाडोल हो उठता है, तो दूसरी ओर विप्रलम्भ की भी ललित छटा लक्षित होती है—जब विदेश में गए हुए लोग नील कमलों में अपनी प्रियतमा की काली आँखों की सुन्दरता देखते हैं, मस्त हंसों की ध्वनि में सुनहरी मेखला की रुनझुन सुनते हैं और बन्धुजीव के पुष्पों में अधरों की रुचिर शोभा देखते हैं, तो वे सुध बुध खोकर रुदन करने लगते हैं।[3]

यहाँ नील कमल में नेत्रदर्शन, हंस-ध्वनि में मेखलारव श्रवण बन्धुजीव में अधर दर्शन करना उद्दीपन है तथा अश्रुपात करना, भ्रान्तचित्त होना अनुभाव है। भ्रम व्यभिचारी भाव।

शरद् के मादक प्रभाव से चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर मुखवाली कामिनियाँ अपना सब गाना-बजाना त्यागकर, अत्यन्त कामातुर होकर अपने सुन्दर कमलवत् हाथ अपने प्रेमियों के हाथों में डालकर उन घरों में चली जा रही हैं जहाँ सुगंधित पुष्प शय्या बिछी हुई है।[4]

यहाँ कामातुर होना, हाथ में-हाथ डालना, गृहों में गमन करना इत्यादि अनुभाव हैं।

हेमन्त ऋतु का उद्दीपक वर्णन तो काम क्रीड़ा को आवर्त रूप में प्रस्तुत करता है। इस ऋतु में अलबेली स्त्रियाँ अपने नितम्बों पर चन्द्रमा के समान उज्ज्वल एवं कुमकुम के रंग में रंगे मनोहर हार नहीं पहनतीं। न तो ये कामिनियाँ अपनी भुजाओं पर कङ्कन और भुजबन्ध ही पहनती हैं, न नितम्बों पर रेशमी वस्त्र और न ही स्तनों

---

१ ऋ० सं० २।१८ २ ऋ० सं० २।१६
३ ऋ० सं० ३।५ ४ ऋ० सं० ३।२३

पर महीन वस्त्र धारण करता है।[1] आजकल सम्भोगेच्छा से यह शरीर पर चन्दन लगाती हैं मुँह पर बेल बूट बनाती हैं और केश कालागुरु के धूप से सुगंधित करती हैं। सम्भोग के श्रम से पीन और म्लान मुखवाली कामिनियाँ हसन की बात पर भी यह समझ कर नहीं हँसती कि प्रिय के दाँतों से क्षत ओठ दुखन न लगें।[2]

अनुभावविभावान्तगत प्रेमी द्वन्द्वों के उद्दाम शृङ्गार का भी वणन मिलता है जो वासना से अभिभूत है।[3] समस्त रात्रि प्रिय के साथ रतिक्रीड़ा में व्यतीत करने के कारण किसी युवती की नींदी नींदी आँखें प्रजागर होकर लाल लाल हो गया हैं, केशराशि व्यस्त हो गयी है और वह प्रात काल के सूय की कोमल किरणों का सेवन करती हुई सो गई है।[4]

यही दशा शिशिर की भी है। इन दिनों प्रात काल में स्त्रियों के सुन्दर लाल ओठों लाल लाल कोरों से सज्जित आँखों कन्धे पर लहराते केशों से युक्त दमकते हुए मुखों को देखकर ऐसा लगता है मानो घर घर में लक्ष्मी आ बसी हो।[5]

ऋतुराज और रसराज का तो सदैव से साथ रहा है। वसन्त की सुहावनी सन्ध्या, छिटकी चाँदनी कोयल की कूक सुगंधित पवन मतवाले भौंरों के गुंजार और रात्रि का आसवपान आदि सभी कामदेव को जाग्रत करने के रसायन हैं।[6] परदेश में स्थित यात्री यों ही वियोग से क्षीणकाय हो जाता है, उस पर जब वह मन्द मन्द प्रवाहित पवन के झोंके में दोलायमान तथा सुनहरे बौर गिराने वाले पुष्पित आम्र वृक्षों को देखकर तो वह काम के बाणों की चोट खाकर मूर्च्छित होकर गिर ही पड़ता है।[7]

यह सम्पूर्ण सर्ग शृङ्गार से परिपूर्ण है। इस सर्ग को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि को प्रारम्भ में ही वसन्त ऋतु के वर्णन के प्रति विशेष अनुराग रहा है जिसका प्रतिफलन उनके अन्य काव्य (कुमार सम्भव आदि) में हुआ।

इस प्रकार ऋतु संहार में रस का संश्लिष्ट चित्रण नहीं प्राप्त होता। कामिनियों की वेशभूषा, प्रकृति के विभिन्न उपमानों तथा ऋतुओं के आगमन से मानव में होने वाले परिवर्तनों एवं उनकी प्रतिक्रियाओं का ही काव्य में विस्तृत वर्णन प्राप्त होता

१ ऋ० सं० ४।३
२ ऋ० सं० ४।६
३ ऋ० सं० ४।१२ १३
४ ऋ० सं० ४।१५
५ ऋ० सं० ५।१३
६ ऋ० सं० ६।३५
७ ऋ० सं० ६।३०

है जो उद्दीपन विभाव के ही अन्तर्गत होते हैं। इसमें कवि की शृङ्गारलिप्सु प्रवृत्ति की सुन्दर व्यंजना हुई है।

(१) अङ्गभूत रस—

महाकाव्य में प्रधान रस के अतिरिक्त अन्य रस भी अङ्गरूप में यदा-कदा निष्पन्न किए जाते हैं।[१] महाकाव्य में मानव जीवन का साङ्गोपाङ्ग चित्रण किया जाता है और जीवन में सदैव एक ही रस या भाव नहीं बना रहता। कभी हास परिहास है तो कभी रोदन-विलाप, कभी उत्साह है तो कभी अपार शोकावेग, कभी वात्सल्य की सरस धारा बहती है तो कभी क्रोध का प्रचण्ड ताण्डव देखने को मिलता है। जीवन की इसी विविधता में ही आनन्द है। कुमार सम्भव में भी अङ्गीरस शृङ्गार के अतिरिक्त करुण, रौद्र, वीर, भयानक इत्यादि रसों का निरूपण हुआ है। अङ्ग अथवा सहायक रसों का काव्य में विनियोजन अङ्गीरस को पुष्ट करने एवं उसमें प्रवाह तथा तीव्रता लाने के लिए किया जाता है। ये (गौण) सहायक रस मुख्य कथानक के विकास में सहायक होते हैं।

कुमार सम्भव—

(२) भयानक रस—

किसी भयावह व्यक्ति या वस्तु को देखकर जो भय नामक स्थायीभाव का उदय होता है उसी का परिपोष भयानक रस कहलाता है। उस भयावह आलम्बन को देखकर सारे शरीर का कांपने लगना, रोमाचित होना, पसीना छूटना, मुँह सूखना, मुँह का पीला पड़ना, चिन्ता होना इत्यादि इस रस के अनुभाव हैं तथा दैन्य सम्भ्रम, त्रास इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं।

शृङ्गार प्रधान प्रेमाख्यानों में भयानक रस का प्रस्थान प्रायः नहीं मिलता। कुमारसम्भव में भी ऐसा प्रसङ्ग केवल एक बार आया है किन्तु कवि की प्रतिभा से यह संस्कृतसाहित्य का स्मरणीय प्रसङ्ग हो गया है। प्रसङ्ग है शङ्कर के तपोवन में मदन के प्रवेश का। यहां समाधिस्थ शिव का जो दुर्धर्ष स्वरूप है वह बड़ा ही रोमांचकारी है।[२] उन्होंने वीरासन लगा रखा है, शरीर स्थिर है तथा दोनों कन्धे धुके हुए हैं।[३] जयकलाप भुजङ्गों में बँधे हैं दाहिने कान में रुद्राक्ष माला लटक रही है तथा कटि से मृगछाला कसी हुई है[४] भौंहें तनी हुई हैं, और नेत्र से नासिका के

१ अङ्गानिसर्वेऽपि रसाः। सा० द० ६।३१७

२ कुमारसम्भव ३।४४

३ कुमारसम्भव ३।४५

४ वही ३।४६

अग्रभाग पर दृष्टि स्थिर है और शरीर के चलने वाले पवनों को रोक कर इस प्रकार बैठे हुए हैं मानो निवात स्थान पर निष्कम्पित प्रदीप हों अथवा तरङ्गों से रहित निश्चल कोई ताल हो।[1] उनके शिर से जो तेज निस्सरित हो रहा था वह कमल-तन्तु से भी अतिशय कोमल बालचन्द्रमा की शोभा को भी अतिशयित करने वाला था। इस प्रकार ध्यान-मग्न भगवान् शङ्कर अपने उस अविनाशी आत्मा की ज्योति को अपने भीतर देख रहे थे जिसे ज्ञानी लोग अपनी नवों इन्द्रियों के द्वार को रोक कर मन को समाधि से वश में करके हृदय में साक्षात्कार कर पाते हैं।[2]

मन तथा बुद्धि से अगोचर शिव के उग्र रूप को समीप से देखकर मन्मथ के अनुभाव रूप में यह प्रतिक्रिया होती है कि भय के कारण उसके हाथ ऐसे ढीले पड़ जाते हैं कि वह यह जान ही नहीं पाता है कि उसके हाथ से धनुष कब गिर गया। उसकी सारी शक्ति तत्क्षण ही नष्ट हो जाती है। वस्तुतः यह भगवान् शङ्कर का समाधिस्थ शान्त सात्विक एवं सौम्यतम रूप है किन्तु जैसे चोर पुलिस को देखकर डर जाता है वैसे ही शिव का शान्त रूप कामचोर के मन में भय उत्पन्न कर देता है।

यहाँ शङ्कर का दुर्धर्ष रूप आलम्बन है। हाथ ढीले हो जाना, शक्ति नष्ट होना आदि अनुभाव हैं। सम्भ्रम त्रास आदि व्यभिचारी भाव हैं। इस प्रकार भयानक रस का परिपोष होता है।

रौद्ररस—

रौद्ररस का स्थायीभाव [अविवेकमय] क्रोध है। आलम्बन शत्रु अथवा कोई अनिष्टकारी व्यक्ति होता है। शत्रु की चेष्टायें उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आती हैं। भौंहों का टेढ़ा होना, आँखों का लाल हो जाना, दाँत पीसना, होंठ चबाना इत्यादि अनुभाव हैं। अमर्ष, गर्व, उग्रता, चपलता, मद, असूयादि इसके संचारी भाव हैं।

भयावह शिव को देखकर भी मन्मथ हिम्मत नहीं हारता। अनिन्द्य सुन्दरी पार्वती के वहाँ उपस्थित हो जाने पर उसका निर्वाण भूयिष्ठ भी शौर्य पुनः द्विगुणित होकर सन्धुक्षित हो उठता है और वह अपना शर सन्धान प्रारम्भ करता है। शर सन्धान के परिणामस्वरूप शिव किंचित विक्षुब्ध धैर्य हो जाते हैं और वे पार्वती के

---

१ कुमारसम्भव ३।४७।४८

२ कुमारसम्भव ३।४९

३ वही ३।५१

४ वही, ३।५२

बिम्बाफलाधरोष्ठ पर अपनी स्नेहमयी दृष्टिपात करने लगते हैं।[१] किन्तु जितेन्द्रिय त्रिनेत्र तत्काल इन्द्रियक्षोभ को बलवत् प्रशान्त करने, अपने चित्त के विकार का हेतु जानने के लिए दिगन्त में जब दृष्टि दौड़ाते[२] हैं तो प्रहार के लिए उद्यत धनुष की प्रत्यंचा खींचे, उन्हें क्रोध का आलम्बन काम दिखाई पड़ता है। बस फिर क्या था, अपने तप में विघ्न उपस्थित करने वाले काम पर इतने क्रोधित हो उठते हैं कि तत्क्षण ही उनका त्रिनेत्र खुल जाता है और सहसा उसमें से क्रोधाग्नि की प्रचण्ड ज्वालाएँ निकल पड़ती हैं।[३] आकाश में भयभीत देवगण हाहाकार कर उठते हैं—हे प्रभो! अपने क्रोध को रोकिए-रोकिए, किन्तु दुःख कि उनकी यह प्रार्थना शिव तक पहुँच भी न पायी थी कि अग्निज्वाला ने कामदेव को जलाकर भस्म ही तो कर दिया।[४]

विज्ञान का कहना है कि विद्युत की गति ध्वनि की गति से तेज होती है जो विद्युत त्रिनेत्र से निकली वह उस ध्वनि से कहीं अधिक तीव्र थी जो देवताओं की आकाश से चली थी। वस्तुतः महाकवि की प्रतिभा से कोई ज्ञान परोक्ष नहीं रहता। उसे भी तो आचार्यों ने कवि का तृतीय नेत्र कहा है।[५]

यहाँ शिव आश्रय हैं तथा कामदेव आलम्बन। काम द्वारा शर-सन्धान करना उद्दीपन विभाव है। त्रिनेत्र से अग्नि ज्वाला निकलना, देवताओं का हाहाकार करना आदि अनुभाव हैं तथा अमर्ष, उग्रता इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं।

यहाँ शिव ने काम को भस्म करने के लिए जो अतिशय क्रोध किया, वह विवेकसंगत नहीं कहा जा सकता। क्योंकि काम ने जो भी कुकृत्य किया वह इतना घृण्य न था जिसके कारण उसे इतना बड़ा दण्ड दिया जाता। इसीलिए तो शिव को तमोगुण का प्रतीक माना जाता है।

रौद्ररस की हल्की झाँकी पंचम सर्ग के पार्वती तपस्या प्रसंग में दृष्टिगोचर होती है। उद्दीपन रूप में ब्रह्मचारी के मुख से अपने इष्ट शिव की निन्दा सुनकर पार्वती के होठ क्रोध से काँपने लगते हैं आँखें लाल हो जाती हैं भौंहें विकुंचित हो जाती हैं। वे ब्रह्मचारी की ओर तरेर कर देखती हुई कहती हैं।[६] जो शिव के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते वे ही उनके अलोकसामान्य कार्यों की निन्दा करते हैं। वे सर्वशक्तिमान त्रैलोक्य नाथ हैं, सब का कल्याण करने वाले हैं उनके वास्तविक स्वरूप को संसार में कोई नहीं समझ सकता। वे पवित्रात्मा हैं और बड़े-बड़े देव-मुनि

---

१ कुमारसम्भव ३।६७
२ कुमारसम्भव ३।६९
३ वही ३।७१
४ वही, ३।७२
५ वही ३।७०
६ वही, ५।७४

अहर्निश उनकी पूजा किया करते हैं, उस ईश्वर के जन्म और कुल को कोई किस प्रकार जान सकता है। इसलिए यह विवाद अब समाप्त कीजिए।

इतनी खरी खोटी सुनने के बाद भी ब्रह्मचारी पुनः कुछ होंठ फड़काता है किन्तु पार्वती अत्यन्त क्रोधाभिभूत हो जाती हैं और रोषपूर्ण स्वर में सखी से कहती हैं इस ब्रह्मचारी के होंठ पुनः फड़क रहे हैं और यह कुछ और कहना चाहता है। किन्तु इसे मना करो।[1]

यहाँ ब्रह्मचारी आलम्बन है। उसकी उल्टी सीधी उक्तियाँ उद्दीपन विभाव हैं पार्वती के नेत्र लाल हो जाना, होंठकम्पन भौंहें का तन जाना तथा ब्रह्मचारी को प्रताड़ित करना इत्यादि अनुभाव हैं। अमर्ष उग्रता इत्यादि व्यभिचारीभाव हैं।

(४) करुण रस —

करुण रस का स्थायी भाव शोक है। यह शोक शापविनिपात, इष्टजन-विप्रयोग, विभवनाश वध बन्धन, उपद्रव उपघातादि कारणों से उत्पन्न होता है।[2] धनञ्जय का कथन है कि— शोक या तो इष्टनाश के परिणाम स्वरूप होता है या अनिष्ट की प्राप्ति से होता है।[3] चित्त वैधुर्य को शोक कहा गया है। शोक का आस्वाद ही करुण रस है। इसका आलम्बन दीनदशा को प्राप्त कोई प्रिय व्यक्ति होता है। उद्दीपन विभाव प्रिय व्यक्ति के स्नेहादि गुणों का चिन्तन स्मरण तथा करुण दशा का श्रवण इत्यादि होता है। अनुभाव मूर्च्छा रुदन उच्छ्वास विलाप, दैवनिन्दा भाग्य निन्दा आदि हैं। ग्लानि व्याधि विषाद स्मृति, निर्वेद आदि सचारी भाव हैं।

यद्यपि करुण रस शृङ्गार का परमशत्रु है और उसके साथ इसकी स्थिति सम्भव नहीं हो सकती है किन्तु आश्रयभेद अथवा अङ्गाङ्गि रूप में रखने पर उसका विरोध नहीं रह जाता ऐसा आचार्यों का मत है।[4]

शिव की नेत्राग्निज्वाला में मदन के भस्मावशेष हो जाने पर उसकी प्रिय पत्नी रति का विलाप करुण रस का मार्मिक दृश्य उपस्थित करता है। पति के भस्माभूत हो जाने के पश्चात् मूर्च्छित रति अपने नव वैधव्य की असह्य वेदना सहने के लिए संभालने हो उठती है[5] और चारों ओर किंकर्तव्यविमूढ़सी आंखें फाड़ फाड़ कर देखने लगती है।[6] किन्तु अर्द्ध मूर्च्छावस्था में—हे प्राणनाथ ! तुम जीवित हो—यह

---

१ कुमारसम्भव ५।८३   २ नाट्य० शा० अध्याय ६ पृ० २१६
३ दशरूपक ४।८१ पृष्ठ ८१६   ४ ध्व० ३।२०
५ ध्व० ४१   ६ वही, ४।३

कहती हुई वह ज्यो ही खडी होती है– यो ही स्तम्भित रह जाती है–वहाँ तो पुरुष आकृतिकार हरकोपानल से भस्म एक राख का ढेर ही पृथ्वी पर पडा है।[1] उसे देखकर वह अत्यन्त कातर हो उठती है और मिट्टी मे लोट पोट कर, बाल बिखेर कर विलख विलख कर रोने लगती है और करुण स्वर में कहती है—हे प्रिय! तुम्हारे अनुपमेय सु दर शरीर को इस दशा मे देखकर मेरा हृदय विदीर्ण क्यो न हो गया। सत्य है स्त्रियो का हृदय बडा कठोर होता है।[2] तुम्हारे हाथ मे अपने प्राण अर्पित करने वाली मुझ अभागिन से नाता तोडकर तुम इतनी शीघ्रता से कहाँ चले गये।[3] तुमने कभी मेरा अप्रिय नही किया, न मैंने कभी तुम्हारे प्रतिकूल आचरण किया, फिर आज रोती हुई अपनी रति को दर्शन क्यो नही देते हो ?[4] पुनः वह अपने दोषो का स्मरण सा करती हुई कहती है—एक बार जब गोत्रस्खलन के कारण तुम्हे मेखला मे बाँध दिया था अथवा जब मैंने अपने कान मे पहने हुए कमल से तुम्हे मारा था, तब उसका पराग तुम्हारी आँखो मे पड जाने से, वे दुखने लगी थी—क्या उसे स्मरण करके तो तुम मुझसे नही रूठ गये हो ?[5] तुम मुझसे जो मीठी मीठी बाते बनाया करते थे कि तुम मेरे हृदय मे सदा रहते हो—वह सब प्रवचना थी क्योकि यदि वे सब औपचारिक बाते न होती तो तुम्हारे राख हो जाने पर यह रति जीवित कैसे बची रह गयी ? अभी थोडी देर पहले जब तुम मेरे पैरो मे महावर लगाने बैठे थे और केवल दक्षिण पैर मे ही लगा पाए थे कि इसी बीच कठोर हृदय देवताओ ने तुम्हे अपने कार्य निमित्त बुला लिया। अब आकर मेरे इस वाम पैर मे भी महावर क्यो नही लगा जाते हो।[6] हे अनङ्ग! तुम चन्द्रमा के बडे प्रिय मित्र थे। अब जब उस नाते हो गया है कि तुम्हारा शरीर केवल कथा मात्र ही रह गया तब वह निष्फल उदित हुआ चन्द्रमा शुक्ल पक्ष मे भी अत्यन्त कठिनाई से अपना दुबलापन छोड पायेगा।

इस प्रकार रति कभी अपने भाग्य का और कभी अपने प्रियतम को स्मरण करके बहुत करुण विलाप करती है। क्योकि आम्र मजरियां, गुनगुनाते भौरें, मधुर कूक करती हुई कोयल को देखकर वह और भी विह्वल हो उठती है। पति के बिना एक क्षण व्यतीत करना उसके लिए दूभर हो जाता है और दीन स्वर में हे प्रिय! जब तक स्वर्ग की चतुर अप्सरायें तुम्हे आकर्षित करे—उसके पहले ही मैं आग मे जलकर

---

१ कुमारसम्भव ४।३ — २ कुमारसम्भव ४।५
३ वही ४।६ — ४ वही, ४।७
५ वही ४।८ — ६ वही ४।६
७ वही, ४।१६ — ८ वही ४।१३

तुम्हारी अङ्कशायिनी बनती हूँ।[1] पुनः कुछ विचार करती हुई कहती है—यद्यपि मैं तुम्हारे पीछे पीछे आ रही हूँ किन्तु मेरे माथे पर कलङ्क का टीका तो लग ही गया कि कामदेव के न रहने पर रति थोड़ी देर तक जीती रह गयी।[2]

रति इस प्रकार जब विलप रही थी तब उसी समय कामदेव का प्रिय मित्र वसन्त वहाँ उपस्थित होता है। वसन्त को देखकर रति और भी फूट फूट कर रोने लगती है क्योंकि दुःख में स्वजनों को देखकर दुःखी प्राणी का दुःख द्विगुणित हो जाता है।[3] वह वसन्त को सम्बोधित कर पूछने लगती है—हे वसन्त! बताओ तुम्हारे मित्र की यह दशा कैसे हो गयी। यह देखो! वह राख बना पड़ा है।[4] फिर पति को सम्बोधित करती हुई कहती है—हे काम! तुम्हारा मित्र तुम्हें देखने के लिए बड़ा उतावला है इसे दर्शन दो। क्योंकि पुरुष अपनी पत्नी में प्रेम करने में प्रमाद कर दें, किन्तु अपने प्रिय मित्रों में तो उनका प्रेम अटल ही होता है।[5] और इस प्रकार रति अन्त में प्राणत्याग करने को तत्पर होती है किन्तु उसी समय आकाशवाणी होती है—कि तुम्हारा पति से पुनर्मिलन होगा—यह सुनकर उसे किंचित धैर्य होता है और प्राण त्याग का विचार छोड़ देती है।

इस प्रकार कुमारसम्भव चतुर्थ सर्ग रति विलाप के माध्यम से करुण रस का मार्मिक चित्रण उपस्थित करता है। यहाँ काम से आत्यन्तिक वियोग ही रति के शोक का आलम्बन है। भूमि पतन क्रन्दन धूल में लोटना, पूर्वघटित घटनाओं का स्मरण उलाहना देना इत्यादि सभी अनुभावों का ही मुख्यतया कथन हुआ है। दुःख चिन्ता मोह विषाद इत्यादि व्यभिचारी भावों की भी अभिव्यक्ति हुई है।

कालिदास के इस करुण प्रसङ्ग पर संस्कृत साहित्य के आचार्यों ने यत्र-तत्र आड़े तिरछे कुछ खरी खोटी सुनाई है। आचार्य मम्मट का कथन है कि कुमारसम्भव के चतुर्थ सर्ग में कामदेव के भस्म कर दिये जाने के पश्चात् रति विलाप का जो वर्णन किया गया है उसमें अथमोहपरायणा सती (४।१) से करुण रस का प्रारम्भ किया गया है उसके आरम्भ में अथ शब्द दिया गया है जो रस की प्रारम्भिक दीप्ति को सूचित करता है। उसके बाद अथ सा पुनरेव विह्वला (४।४) इत्यादि में अथ "तथा पुनः" शब्द से उस रस को दीप्ति करके 'तमवेक्ष्य रुरोद सा भृशम्' (४।२६) इत्यादि में करुण रस को फिर उद्दीप्त किया गया है।[6] इस प्रकार एक ही उपर्युक्त

---

१ कुमारसम्भव ४।२०
२ कुमारसम्भव ४।२१
३ वही, ४।२७
४ वही
५ वही ४।२८
६ का० प्र०, पृष्ठ ३७१

रस का बार-बार वर्णन उपर्युक्त कुसुमपरिमल के समान सहृदयों के लिए वैरस्योत्पादक हो जाता है अतः दोष है। पुनः पुनः रसोद्दीपन का निराकरण आचार्य आनन्दवर्धन भी करते हैं। उनका कथन है –

परिपोषं गतस्यापि पौनःपुन्येन दीपनम् ॥
रसस्य स्याद्विरोधाय, वृत्त्यनौचित्यमेव च ॥[१]

इस प्रसंग में इतना निवेदन है कि यहाँ महाकवि ने कामदाह के रौद्र प्रसंग से उद्विग्न सहृदयों के हृदय को विश्रान्ति देने के लिए करुण रस उपस्थित किया है क्योंकि रौद्र के पश्चात् पार्वती को पुनः तपस्या के लिए आना है दूसरे भावों का प्रदर्शन करना पड़ता। इस नाटक के लिए जब तक रङ्गमंच बदला न जाय उसकी समीचीनता संदिग्ध हो जायेगी अतः कवि ने करुण रस लाकर नाटक के मुख्यकथानक में मध्यान्तर की योजना सी की है। अतः यदि आचार्यों ने रतिविलाप को दोष कहा है तो उन्होंने काव्य की नाटकीयता नहीं समझी। क्योंकि काव्य का यहाँ प्रयोजन है—ध्यान निक्षेप करना।

इस प्रकार रस योजना की दृष्टि से यह निर्दोष तो है ही साथ ही औचित्य की दृष्टि से भी यह दोष रहित है। सम्पूर्ण प्रसङ्ग का पर्यवेक्षण करने पर यह तथ्य ज्ञात हो जाता है कि पहले केवल पति के भस्मीभूत शरीर को देखकर अनाथ रति का शोक उमड़ता है अतः उसके सारे विलाप उन दोनों के व्यक्तिगत जीवन से सम्बद्ध हैं, किन्तु जैसा कि महाकवि की प्रतिभा ने विवरण दिया है कि दुःख में स्वजनों को देखकर शोक सन्तप्त प्राणी का दुःख अनेक द्वार से फूट पड़ता है अतः मित्र वसन्त के आने पर रति का दुःख पुनः उमड़ पड़ता है। यदि रति उस समय कुछ न कहती, तो सम्भवतः उन्हीं आचार्यों को रति के शोक में सन्देह होने लगता। इसलिए उसका दुबारा विलाप अत्यन्त समीचीन है। पता नहीं इन आचार्यों को रति के विलाप से इतना चिढ़ क्यों है।

वीर रस —

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। यह उत्साह शक्तिसम्भूत होता है। शक्ति दो प्रकार की होती है—एक आन्तरिक तथा दूसरी बाह्य। आन्तरिक शक्ति को हम मनोबल कह सकते हैं और बाह्य को सहाय्य। आलम्बन विभाव कोई समक्ष स्थित शत्रु, ऐश्वर्य, साहसपूर्ण कार्य तथा यशादि होता है। शत्रु की ललकार युद्धभेरी इत्यादि उद्दीपन विभाव हैं। आँखों का लाल हो जाना, शस्त्र प्रहार, होठ चबाना,

१ ध्वन्यालोक ३।१६

सैन्य सचालन, चढ़ाई करना तथा आवेश, रोमाच, इत्यादि अनुभाव हैं। मति, धृति, गर्व उग्रता इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं।

कुमार सम्भव के तृतीय सर्ग मे इन्द्र-कामदेव सवाद मे कामदेव की गर्वोक्तियो का वर्णन हुआ है तथा उन गर्वोक्तियो के माध्यम से उत्साह स्थायी भाव की किंचित झाकी दिखाई पड़ती है। इन्द्र की आज्ञा से काम उनके दरबार मे उपस्थित होता है तथा जाते ही अपनी शक्ति का परिचय सा देता हुआ कहता है— हे स्वामी! आप आज्ञा दीजिए! तीनो लोक मे ऐसा कौन सा कार्य है जो आप मुझसे करवाना चाहते हैं।[1] कहिए—तो ऐसा कौन पुरुष उत्पन्न हो गया है, जिसने बहुत बड़ी बड़ी तपस्याये करके आपके मन मे ईर्ष्या जगा दी है। आप उसका नाम मात्र बता दीजिए तो मैं जाकर उसे अपने धनुष बाण से क्षण भर मे जान लेता हूँ।[2] ऐसा कौन सा शत्रु है जो भवबन्धन से घबराकर मुक्ति पाने को तत्पर हो उठा है मैं उसे अभी सुन्दरियो के कटाक्ष मे फँसाए देता हूँ।[3] यदि आपका वह शत्रु शुक्राचार्य से भी नीति पढ़कर आया होगा तो मैं अत्यन्त भोग की इच्छा को ऐसा दूत बनाकर उसके पास भेजता हूँ जो उसके धर्म अर्थ दोनो को नष्ट कर देगा।[4] अथवा ऐसी कौन कामिनी आपके चचल मन मे बैठ गयी है —मैं उस पर ऐसा काम-बाण चलाऊँगा कि वह शीघ्र ही आपके कण्ठ मे आ लगेगी।[5] हे वीर! आप प्रसन्न हो विश्राम कीजिए। मुझे बताइए वह कौन दैत्य है जो मेरे शर प्रहार से ऐसा शक्ति विहीन हो जाना चाहता है, कि कोप से विस्फुरित अधर वाली स्त्री तक उस डरा दे।[6] इस प्रकार विकत्थनाओ का प्रलाप करते हुए वह इतना उत्तेजित हो जाता है कि बड़े गर्व से यह कह उठता है कि यदि आपकी कृपा हो तो मैं वसन्त को साथ लेकर पिनाकधारी शिव को भी धैर्यहीन कर दूँ फिर अन्य धनुर्धारियो की बात ही क्या है।[7]

ये सारी गर्वोक्तियाँ अनुभाव रूप ही कही जायेंगी। क्योंकि उसने आत्मशक्ति का जो बखान किया वह उसके उत्साह के अनुभाव रूप है गर्व उग्रता, चपलता इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं।

शान्त रस —

वास्तविक ज्ञान के उदय होने के परिणामस्वरूप प्राणी का जगत् से निर्वेद या वैराग्य होता है तब वह निर्विप्ल्य जानी सासारिक सुख-दुःख अपना पराया राग

१ कुमारसम्भव ३।३
२ कुमारसम्भव ३।४
३ वही, ३४।५
४ वही ३।६
५ वही ३४।७
६ वही ३।६
७, वही, ३।१०

द्वेषादि भेद बुद्धि का त्याग कर समदर्शी बन जाता है। वह आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचानकर सच्चे आनन्द को प्राप्त करता है—यही स्थिति ब्राह्मी स्थिति है अतः इसका स्थायीभाव निर्वेद या वैराग्य है। संसार से विमुख वैराग्य इच्छुक सन्यासी ही इसका आश्रय नहीं होता अपितु संसार में रहते हुए सांसारिक मायामोह से परे स्थित व्यक्ति भी इसका आश्रय हो सकता है। संसार की क्षणभंगुरता या अस्थिरता ही इस रस का आलम्बन विभाव है। सन्त समागम तीर्थदर्शन, श्मशान-दर्शन, इत्यादि उद्दीपन हैं। अश्रुविमोचन, पश्चात्ताप, ग्लानि, भगवद्भजन रोमाञ्च आदि अनुभाव तथा हर्ष, धृति, मति संचारीभाव हैं। यहां एक बात अवधेय है कि निर्वेद एक व्यभिचारी भाव भी है किन्तु व्यभिचारी रूप निर्वेद तमोगुणप्रधान है तथा स्थायीरूप निर्वेद सत्त्व गुण प्रधान है।

कुमार सम्भव के प्रथम सर्ग के अन्त में कवि ने शिव का जो आंशिक परिचय दिया है उसमें शान्त रस की सुष्ठु अभिव्यक्ति हुई है। पिता द्वारा अपमानित होने पर सती ने उनकी यज्ञाग्नि में जबसे प्राणोत्सर्ग कर दिया था तभी से विमुक्तसङ्ग भगवान शिव ने दूसरा विवाह नहीं किया।[1] इतना ही नहीं जितेन्द्रिय तथा गज चर्म आसन वाले शिव हिमालय की एक चोटी पर जाकर तपस्या करने लगते हैं जहां गङ्गा जी अपने जल प्रवाह में देवदारु को निरंतर सींचती थीं तथा गन्धर्वगण दिन रात गान करते थे।[2] उनके पास ही सर पर नमेरु के कोमल पुष्पमाला वाले, शरीर पर भोज पत्र धारण किए प्रथमगण चट्टानों पर बैठे पहरा दिया करते थे।[3] उनके समीप उनका गर्वीला नान्दी वृष भी रहता था। इस प्रकार तपस्याओं के स्वयं फलदाता भगवान् शिव अपनी दूसरी मूर्ति अग्नि को समाधि से जगाकर पता नहीं किस फलेच्छा से घोर तपस्या करते हैं।[4]

यहाँ शिव आश्रय हैं, सती के प्राणत्याग के कारण उत्पन्न दुःख ही उनके तप का उद्दीपन है—सब प्रकार के भोग विलास का त्याग कर देना दूसरा विवाह न करना तथा तप करना इत्यादि अनुभाव हैं। धृति व्यभिचारी भाव है।

रघुवंश में अङ्गिरस

रघुवंश में अङ्गीरस वीर के साथ प्रायः सभी रसों का सहकारित्वेन उपनिबन्धन प्राप्त होता है। कालिदास की बहुश्रुत लेखिनी से प्रस्फुटित होकर करुण,

---

१ कुमारसम्भव १।५३ २ कुमारसम्भव १।५४

३ वही, १।५५ ४ वही १।५७

शृङ्गार, अद्भुत, भयानक, वीभत्स, हास्य, शान्त इत्यादि मुख्य रस वीर को परिपुष्ट करने में पूर्णरूपेण सफल हुए हैं और इनके सहयोग से वीर रस में चार चाँद लग गए हैं।

करुणरस—

शृङ्गार और वीर के पश्चात् महाकवि की लेखनी सर्वाधिक करुणरस—चित्रण में ही रमी है। अष्टम सर्ग के अज विलाप के मार्मिक वर्णन में करुण का जैसा मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है वैसा अन्यत्र काव्य में नहीं मिलता है तथा वह संस्कृत साहित्य की अमर निधि बन गई है। महाराज अज अपनी प्रिया इन्दुमती के साथ उपवन में विहार करने जाते हैं।[1] उसी समय आकाश मार्ग से जाते हुए नारद की वीणा में लटकी हुई पुष्पमाला सहसा इन्दुमती के वक्षस्थल पर गिर पड़ती है। उसके स्पर्श मात्र से रानी की मृत्यु हो जाती है और राजा यह सब अवलोकर देखकर मूर्च्छित हो जाते हैं।[2] कुछ क्षण के पश्चात् चेतनालब्ध होने पर प्रिया के मृत शरीर को अपने अङ्क में रख लेते हैं, प्रातःकाल के चन्द्रमा के समान उसके श्वेत शरीर को देखकर उनका स्वाभाविक धैर्य विलुप्त हो जाता है, कण्ठ वाष्पगद्गद हो जाता है और वे साधारण शरीरधारियों के समान करुण विलाप करने लगते हैं— हे प्रिय! यह माला यदि तुम्हारा प्राण हरण कर सकती है तो यह वक्षस्थल पर रख देने पर मेरा प्राण क्यों नहीं ले लेती।[3]

प्रिया के शोक में अज विक्षिप्त हो जाते हैं और अपने को ही सारा दोष देते हुए दीनता से कहने लगते हैं—हे इन्दुमति! मैंने बहुत अपराध किए हैं परन्तु तुमने मेरा कभी तिरस्कार नहीं किया फिर आज बिना अपराध के मुझे बातचीत करने योग्य भी नहीं समझ रही हो।[4] हे शुचिस्मिते! निश्चय ही तुमने मुझे झूठा प्रेमी समझा इसलिए तो मुझसे पूछे बिना तुम परलोक चली गयीं।[5] मन कभी हास्य से भी तुम्हारा अनय नहीं किया फिर अकारण ही मुझे क्यों त्याग दिया।[6] (सच पूछो तो) मैं पृथ्वीपति तो नाममात्र को हूँ मेरा सच्चा अनुराग तो केवल तुममें ही है। हे प्रिये! पुष्पों से ग्रथित भौंरों के समान तुम्हारा बालों तक जब वायु से हिलता है तो मेरे हृदय में आशा उमड़ पड़ती है कि तुम अभी जीवित हो जाओगी। तुम्हारे व्यस्त अलकों

---

१ रघुवंश ८।३२
२ रघुवंश ८।३८
३ वही ८।४२
४ वही ८।४६
५ वही, ८।४८
६ वही, ८।४९
७ वही, ८।५२
८ वही ८।५३

से आच्छादित मौन मुख को देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है, इसलिए किसी भी प्रकार आकर तुम मेरा दुःख दूर करो।"

महाराज पत्निवियोग में अत्यन्त कातर हो, वन, लता पुष्प सभी को साक्षी देते हुए यह उठते हैं—हे प्रिये! क्षण भर के लिए भी तुम्हारा साथ न छोड़ने वाला, तुम्हारी एकान्त की सखा यह मेखला भी तुम्हारे वियोग में मृत के समान लक्षित हो रही है।[२] तुम्हारे बिना अब अहंकार और प्रियङ्गुलता का विवाह कौन करायेगा? हे सुन्दरी तुमने गुनगुनाते हुए बिछुआ वाले चरणों से जो ठोकर अशोक को लगाई थी, उसे स्मरण करके यह वृक्ष कुसुम अश्रु वर्षण करता हुआ, तुम्हारे लिए रो रहा है।[३] तुम्हारे मुख दुःख की साथी ये सखियाँ सभी तुम्हें देख रही हैं शुक्ल पक्ष के चन्द्र के समान प्रसन्न मुखवाला तुम्हारा पुत्र भी यहां है और तुम्हारा अनन्य प्रेमी मैं भी तुम्हारे पास हूँ, फिर क्या हम सबको छोड़कर चले जाने का निष्ठुर कार्य तुमने किया?[४] तुम्हारा असमय मृत्यु से मेरा धैर्य स्तम्भित हो गया, आनन्द नष्ट हो गया, गाना बजाना दूर हो गया, ऋतुयें फीकी पड़ गई, आभरण व्यर्थ हो गये और शैय्या शून्य हो गयी,[५] क्योंकि मेरी गृहिणी सम्मति देने वाली मित्र, एकान्त की सखा और ललितकलाओं में प्रिय शिष्या थी। तुम्हीं बताओ! तुम्हें मुझसे छीनकर क्रूर विधाता ने मेरा क्या कुछ नहीं हर लिया। ऐश्वर्यशाली होने पर भी, तुम्हारे बिना मेरा मन कुछ विलीन हो गया क्योंकि मेरे सब सुखों का एक मात्र तुम ही केन्द्र थी, जब तुम ही आज नहीं रही तो अन्य सुखों का क्या मूल्य।[७] इस प्रकार अज पत्नी वियोग में इतने व्याकुल हो जाते हैं कि उनकी जीने की इच्छा समाप्त हो जाती है।[८]

अज के मार्मिक रोदन से समस्त वनस्थली भी करुणार्द्र हो उठती है और उन्हें देखकर वृक्ष भी जैसे अपनी शाखाओं से रस प्रस्रवण करते हुए रुदन करने लगते हैं। यहां आश्रय अज हैं तथा आलम्बन इन्दुमती हैं। इन्दुमती का मृत शरीर उद्दीपन विभाव है, अज द्वारा मूर्छित हो जाना करुण विलाप करना, प्रिया के गुणों का चिन्तन करना स्वयं को दोष देना, इत्यादि अनुभाव तथा स्मृति दैन्य, चिन्ता, वितर्क, मोह, ग्लानि, जड़ता, उन्माद आदि व्यभिचारीभाव हैं।

---

१ रघुवंश ८।५४ | २ रघुवंश ८।५८
३ वही ८।६१ | ४ वही, ८।६३
५ वही ८।६६ | ६ वही, ८।६७
७ वही, ८।६९ | ८ वही, ८।७२

करुण रस की मार्मिक व्यंजना सीता त्याग के प्रसङ्ग में हुई है। राम की कठोर आज्ञा के फलस्वरूप लक्ष्मण सीता जी को गङ्गा के पार ले जाते हैं और किसी प्रकार अपने अश्रुप्रवाह को संयमित कर रुँधे हुये कण्ठ से, बड़ी ही कठिनाई से राम की कठोर आज्ञा सीता को सुनाते हैं।[1] उसे सुनकर सीता की जो दयनीय स्थिति हुई वह बड़ी ही हृदयविदारक है। राम की अपमानजनक आज्ञा के श्रवण मात्र से ही लू लगने से प्रकम्पमान लता के समान सीता पृथ्वी पर सहसा गिर पड़ती हैं। मूर्च्छित होने से उन्हें उस समय तो दुःख नहीं होता किन्तु बाद में संज्ञा लब्ध होने पर वह बड़ी ही विषण्ण हो जाती हैं और अपने भाग्य की ही बार बार निन्दा करने लगती हैं।[2] किसी प्रकार अपने को संयमित कर वह लक्ष्मण से कहती हैं—'मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम सदैव भ्रातृ भक्ति का पालन करना।[3] किन्तु सभी श्वश्रूजनों से जाकर कहना कि 'मेरे गर्भ में आपके पुत्र का तेज है अतः सदैव उसके लिए कल्याण मनाते रहियेगा।' और उन राजा से जाकर कहना—आपने मुझे अग्नि में शुद्ध पाया था फिर इस मिथ्या प्रवाद के भय से मेरा परित्याग कर दिया है वह क्या आपके प्रख्यात वंश को शोभा देता है।[4] पुनः कुछ विचार करती हुई वह कहती हैं—आप तो मेरे प्रति कल्याण बुद्धि ही रखते हैं अतः आप मेरे साथ कभी ऐसा कठोर व्यवहार नहीं कर सकते। निश्चय ही यह मेरे पूर्वजन्म के पापों का फल है। हे राजन्! पहले आपकी अनुकम्पा से मैंने वनवास में राक्षसों द्वारा सताई गई तपस्वियों को अपने यहाँ आश्रय दिया था। अब आप ही बताइये कि इस समय मैं किस प्रकार उन्हीं तपस्वियों की आश्रिता होकर रहूँगी।[5] यदि मेरे गर्भ में आपका वंशधर पुत्र न होता तो मैं आज ही प्राण त्याग कर देती।[6] किन्तु पुत्रजन्म के पश्चात् सूर्य में दृष्टि निविष्ट कर मैं घोर तपस्या करूँगी जिससे अगले जन्म में आप ही मेरे पति हों और फिर आपसे मेरा कभी भी वियोग न हो। यह कहते-कहते सीता व्याकुल हो उठती हैं, उनका धैर्य विलुप्त हो जाता है और अन्त में बड़ी ही दीनता पूर्वक याचना करते हुये कहती हैं—राजाओं का धर्म वर्णाश्रमों की रक्षा करना है इसलिए निर्वासित कर देने पर भी आप मेरे

---

१ रघुवंश १४।५४   २ रघुवंश १४।५७
३ वही, १४।५६   ४ वही १४।६०
५ वही १४।६१   ६ वही १४।६२
७ वही १४।६४   ७ वही १४।६५

समझकर मेरी देख-भाल करते रहियेगा कि सीता भी आपकी प्रजा और तपस्विनी है।'[1]

कवि ने आलम्बन रूप सीता के इस शोक का आश्रय सहृदय गणों को बनाया है। सीता के दुःख से न केवल मानव अपितु तिर्यक भी प्रभावित हो उठते हैं और वे भी इस करुण रस के आश्रय बनते हैं। कवि कहता है कि—'विपत्ति के भार से व्याकुल होकर मुक्तकण्ठ से सीता का करुण क्रन्दन[2] सुनकर मयूर गण नृत्य करना बन्द कर देते हैं वृक्ष पुष्पाश्रु गिराने लगते हैं और दुःखित हरिणियाँ मुह में भरी घास के कौर गिरा देती हैं इस प्रकार समस्त वनस्थली मौन हो जाती है, और सीता के दुःख से दुःखित होकर सारा वन विलाप करने लगता है।'

यहाँ सीता आलम्बन है। राम की आज्ञा उद्दीपन विभाव है। मूर्च्छित हो जाना, भाग्य को कोसना राम को संदेश भेजना, करुण विलाप करना इत्यादि अनुभाव हैं तथा चिन्ता, दैन्य ग्लानि विषाद वितर्क इत्यादि व्यभिचारीभाव हैं। करुण रस के उद्दीपन रूप में अयोध्या की नगर देवी द्वारा वीरान अयोध्या का जो हृदयस्पर्शी चित्रण, हुआ है वह सचमुच हृदय को द्रवित कर देने वाला है। महाकवि की यह विशेषता रही है कि उन्होंने जिस भी विषय पर अपनी लेखनी उठाई है, उसमें भाव और रस का ऐसा सागर उडेल दिया है कि उसमें प्राण प्रतिष्ठा सी हो गयी है और वे सभी वर्णन उनकी प्रतिभा का सम्पूर्ण स्पर्श पाकर सजीव हो उठे है। उजड़ी अयोध्या के इस वर्णन को पढ़कर किस सहृदय का हृदय शोक द्रवित न हो जायेगा।

रात्रि के द्वितीय प्रहर में, कुश के शैय्या गृह में अचानक मलिन वसना विवर्ण-वदना प्राञ्जलिबद्ध एक स्त्री का आगमन होता है[3], उसे देखकर कुश अचम्भित रह जाते हैं और पूछते हैं[4]—'हे शुभे! तुम कौन हो और मेरे पास किसलिए आयी हो।'[5] यह सुनकर वह स्त्री उदास स्वर से उत्तर देती है—'हे राजन्! जब भगवान् राम वैकुण्ठ लोक जाने लगे, तब जिस निर्दोष अयोध्यापुरी के निवासियों को अपने साथ ले गये, उसी अनाथ अयोध्यापुरी की मैं नगर देवी हूँ।[6] पहले सौराज्य होने से मैं इतनी ऐश्वर्य शालिनी हो गयी थी कि कुबेर की अलकापुरी भी न्यग्भूत लगती थी किन्तु इस समय तुम जैसे प्रतापी सूर्यवंशी राजा के रहते हुए भी मैं सर्वथा करुणा-

---

१ रघुवंश १४।६७
२ रघुवंश १४।६८
३ वही, १४।६९
४ वही १६।५
५ वही, १६।६
६ वही, १६।८
७ वही १६।९

सन्ध्या का ग्रास हो गया है[1] और स्वामीविहीन मेरी नगरी अयोध्या ऐसी उदास प्रतीत होती है जैसे सूर्यास्त के समय छिन्न मेघ से युक्त सन्ध्या। रात्रिवेला में जिन राजमार्गों पर नूपुरों की मधुर ध्वनि करती हुई अभिसारिकाएँ गमन करती थीं उन्हीं पर अब शृगालियाँ मांस को खोजती हुईं, उच्च स्वर में चिल्लाती हुई चिनगारियाँ उगलती विचरण करती हैं।[2] वापीजल में स्नान करती हुई सुन्दरियों के हाथ के थपेड़ों से मृदंग के समान गम्भीर ध्वनि करता था, वही आज वन्य भैंसों के सींगों की टक्कर से पीड़ित हो रहा है।[3] मयूरों ने नृत्य करना समाप्त कर दिया है और वृक्षों पर बैठे हुए वे उन जंगली मोरों के समान लगते[4] जिनके पंख अग्नि से भस्मीभूत हो गए हों। हे स्वामी! और क्या कहूँ, पहले जिन सोपानमार्गों में रमणियाँ महावर लगे लाल-लाल चरण रखती थीं उन्हीं पर हिंसक व्याघ्र रक्त से सने लाल पैर रखते हैं।[5] जिन खम्भों पर स्त्रियों की सुन्दर मूर्तियों की स्थापना की गयी थी, अब विवर्ण हो जाने के कारण[6] उन खम्भों को चन्दनवृक्ष समझकर सर्प उनसे लिपट गए हैं और उनकी केंचुल मूर्तियों में इस प्रकार संलग्न हो गया है मानो पत्थर की स्त्रियों ने स्तन ढकने के लिए वस्त्र धारण किया हो।[7] हे यशस्वी! जिन भवनों पर मुक्तामाला के समान शुभ्र चाँदनी चमकती थी उनके चूने का रंग अब उड़ गया है और उस पर यत्र-तत्र घास उग आया है।[8] पहले उद्यान में सुन्दरियाँ जिन लताओं से पुष्पचयन करती थीं, उन्हें अब बन्दर झकझोर डाल रहे हैं।[9] हे महाराज! यह सब देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है। अब सरयू के तीर पर न तो देवताओं के लिए बलि दी जाती है और न ही उसमें स्त्रियों के स्नान करने से अंगरागादि की सुगन्ध ही निकलती है। तट पर बनी बानीर झाड़ियाँ भी अब शून्य दिखाई पड़ती हैं।[10] अतः हे राजन्! राक्षसों का वध करने के निमित्त मनुष्य शरीर धारण करने तथा पुनः त्यागकर आत्मस्वरूप में विलीन हो जाने वाले अपने पूज्य पिता के समान तुम राजधानी कुशावती को छोड़कर अपनी कुल राजधानी अयोध्या में राज्य करो।[11]"

देवी की करुण याचना सुनकर कुश उनकी प्रार्थना स्वीकार कर लेते हैं और नव अयोध्या की नगर देवी अन्तर्धान हो जाती है यहाँ अयोध्या की नगर देवी आश्रय

---

१ रघुवंश १६।१०
२ रघुवंश १६।११
३ वही, १६।१२
४ वही, १६।१३
५ वही १६।१४
६ वही, १६।१५
७ वही, १६।१७
८ वही १६।१८
९ वही १८।१९
१०। वही १८।२१
११ वही, १८।२२

है अयोध्या की दुदशा आलम्बन। अयोध्या की विपन्नावस्था उद्दीपन विभाव है तथा दैन्य, चिन्ता विषाद, मोह—इत्यादि व्यभिचारीभाव हैं।

करुण रस का एक अन्य मार्मिक अभिव्यक्ति तापसकुमार (श्रवणकुमार) के वध प्रसङ्ग मे हुई है। मृगया प्रेमी राजा दशरथ हाथी को अपने बाण का लक्ष्य बनाते हैं। किन्तु यह क्या वह तो हाथी के धोखे मे तापस कुमार का वध कर बैठते है। महाराज को जब इस यथार्थ का ज्ञान होता है तो व बड दु खित हो जाते हैं और शर विद्ध मुनि पुत्र की प्रार्थना पर उसे उसके वृद्ध माता पिता के पास ले जाते हैं।[1] वहाँ पहुँचकर महाराज सारा वृत्तान्त कह सुनाते हैं कि किस प्रकार अज्ञानतावश उनके एकमेव पुत्र पर शर-व्याघात किया। यह सुनकर व दोनो करुण विलाप करने लगते हैं और अपने पुत्र के प्रहर्ता को आज्ञा देते हैं कि मेरे पुत्र के वक्षस्थल से बाण निकाल लो। बाण निकालते ही मुनिकुमार का प्राण उड जाता है, और पुत्र शोक से दु खी वृद्ध तपस्वी राजा को यह शाप देते हैं कि —हे राजन्! जाओ तुम भी मेरी तरह पुत्र शोक स प्राण त्याग करोगे।[2] दु खी होकर राजा न कहा—मैं तो सर्वथा वध योग्य हूँ फिर भी मुझ घृणित के लिए आपकी क्या आज्ञा है।[3] यह सुनकर उस मुनि ने कहा—म और मेरी स्त्री दोनो ही पुत्र के साथ ही प्राण त्याग करेंगे अतएव हमारे लिए ईंधन अग्नि का प्रबन्ध करो।[4] यह सुनकर दशरथ तत्काल ईंधन अग्नि को एकत्र कर उनका दाहसस्कार करते है।[5]

यहाँ आश्रय वृद्ध मुनिजन है तथा मुनि पुत्र आलम्बन। पुत्र वध की कथा श्रवण उद्दीपन विभाव है। करुण विलाप करना, शाप देना, दाह सस्कार के लिए कहना इत्यादि अनुभाव हैं तथा शोक, करुण दैन्य व्यभिचारीभाव हैं।

शृङ्गार रस—

महाकवि शृङ्गार के अनन्य प्रेमी हैं। रघुवश म वीर नायकों के शौर्य पराक्रम पौरुष आजस्वी गुणो का वर्णन करते समय भी वे शृङ्गार-वर्णन का मोह न त्याग सके और अपने इस मोह को प्रकट करने के लिए वे एक ऐसे नायक नायिका को ढूँढ ही लेते हैं—जो शृङ्गाराभिव्यक्ति के सर्वथा योग्य है। स्थल है इन्दुमती स्वयम्वर का। सकल सौन्दर्य की एक मात्र अधिष्ठात्री इन्दुमती, वर माल लेकर स्वयम्वर मण्डप मे प्रवेश करती हैं। आलम्बन रूप उसके अपूर्व सौन्दर्य को देखकर ही स्वयम्वर

---

१ रघुवश ९।७७   २ रघुवश ९।७८
३ वही, ९।७९   ४, वही ९।८१
५ वही, ९।८२

में उपस्थित राजागण उसकी ओर आकर्षित हो जाते हैं।[1] किन्तु इन्दुमती उन सभी राजाओं के प्रति अपनी अरुचि प्रकट करती हुई रघु पुत्र अज के समीप जा खड़ी होती है। उसे देखकर अज के हृदय में कुछ व्याकुलता होने लगती है कि यह मुझे पति रूप में स्वीकार करेगी अथवा नहीं। सर्वाङ्ग सुन्दर अनुपम रूपवान् राजा अज को देखकर इन्दुमती स्तम्भित सी रह जाती है और राजा के प्रति उसकी अभिरुचि देखकर सुनन्दा अज का परिचय देना प्रारम्भ करती है।[2] प्रख्यात काकुत्स्थ वंश में उत्पन्न राजा दिलीप का जन्म हुआ था जो केवल निन्यानवे यज्ञ करके ही इसलिए शान्त हो गये कि इन्द्र की प्रतिष्ठा कहीं विमुख न हो जाए।[3] वे इतने कुशल शासक थे और राज्य में उनका इतना प्रभाव था कि उपवनों में मस्ती पर सोई हुई स्त्रियों के वस्त्र को वायु भी न हिला सकती थी फिर अन्य किसी की क्या हिम्मत।[4] उनके पुत्र रघु ने सम्पूर्ण पृथ्वी को विजित कर अपार धन अर्जित किया था और विश्वजित यज्ञ में सब कुछ बाँट देने पर केवल मृत्पात्र ही शेष रह गया था।[5] उन्हीं यशस्वी राजा के पुत्र ये कुमार अज हैं जो अपने पिता के समान ही यशस्वी हैं। हे सखि! इनका कुल रूप यौवन और नम्रता आदि सब गुण तुम्हारे ही समान हैं अतः इनके साथ तुम विवाह अवश्य कर लो। जिससे रत्न और स्वर्ण का उचित समागम हो जाय।[6] चतुरस्त्री सुनन्दा के वचन सुनकर इन्दुमती लज्जा त्यागकर अपने स्नेहिल नेत्रों से अज को देखती है और आँखों से इस प्रकार उन्हें वर लेती है मानो वह दृष्टि ही स्वयम्वर माल हो। लज्जालुता के कारण इन्दुमती अपने प्रेम की बात अज से तो न कह सकी किन्तु वह रोमांचित हो जाती है। उसके हृदय का प्रेम छिपाने से भी नहीं छिप पाता मानो रोंगटों के रूप में प्रेम अंकुर बनकर प्रस्फुटित हो आया हो।[8] तदनन्तर इन्दुमती स्वयं ही अनुराग से अज के कण्ठ में वरमाला डाल देती है।[9]

यहाँ इन्दुमती आश्रय है और अज आलम्बन। सुनन्दा की उक्तियाँ उद्दीपन विभाव हैं। स्तम्भित रह जाना, रोमांचित हो जाना, लज्जित हो जाना, एकटक देखना तथा वरमाला पहनाना अनुभाव हैं। जड़ता हर्ष मोह, औत्सुक्य इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं।

---

१ रघुवंश ६।११ — २ रघुवंश ६।६९

३ वही, ६।७० — ४ वही, ६।७४

५ वही, ६।७५ — ६ वही ६।७६

७ वही ६।७९ — ८ वही, ६।८०

९ वही, ६।८१ — १० वही, ६।८३

वरमाल ग्रहण कर अज विवाह मण्डप के लिए प्रस्थान करते हैं जहाँ उनका विधिपूर्वक विवाह सम्पन्न होता है। अन्त पुर के सेवक नम्रता पूर्वक अज को इन्दुमती के समीप ले जाते हैं।[1] वहाँ पुरोहित घृतादि सामग्रियों से हवन करके, अग्नि को साक्षी बनाकर वर वधू की गाठजोड़ देता है।[2] प्रिया के हाथ को ग्रहण किए हुए अज बड़े ही सुन्दर लग रहे हैं। कर-स्पर्श के कारण अज के प्रकोष्ठ प्रीति कण्टकित हो जाते हैं और अँगुलियों से स्वेद प्रस्रवण होने लगता है। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो काम ने प्रेमभाव को दोनों में समान रूप से विभक्त कर दिया हो।[3] व कनखियों से एक दूसरे को देखते और नेत्र मिलते ही, लज्जा से आँखें नीची कर लेते हैं।[4] लज्जावती इन्दुमती ब्रह्मा के समान पूज्य पुरोहित की आज्ञा से अग्नि में धान की खील छोड़ती है और विवाह कार्य सम्पन्न करती है।[5]

कालिदास के काव्य में वर्णित विवाह के प्रसंग प्राय एक दूसरे से मिलते जुलते हैं। यहाँ वर्णित अज इन्दुमती का विवाह कुमारसम्भव में वर्णित शिव पार्वती के विवाह से मेल खा जाता है। यहाँ अज इन्दुमती परस्पर आश्रय और आलम्बन हैं। रोमाच, नेत्रामीलन, करस्पर्श स्वेद प्रस्रवण, लज्जा से नेत्रों का नीचा कर लेना, प्रीति-कण्टकित होना इत्यादि अनुभाव हैं। हर्ष, व्रीडा चपलता व्यभिचारीभाव है।

इस प्रकार अज के प्रसङ्ग में महाकवि ने शृङ्गार का बड़े आराम के साथ वर्णन किया है वैसे नायक वीर का नेता है इसमें कोई शङ्का नहीं होनी चाहिए क्योंकि वही कवि का अभीष्ट है जैसा कि अन्य नायकों के सम्बन्ध में है किन्तु शृङ्गार का सम्राट कवि वीर भटो के मध्य केवल इसी नायक को अपने प्रिय रस का पात्र चुनता है और पूरे दो सर्ग, शृङ्गार की सिद्धि में लगा देता है। स्वयंवर एवं विवाह ये दोनों प्रसङ्ग यदि अनुचित उपमा के साथ कहे जाएँ तो वे वीर का मरुस्थली में नखलिस्तान अथवा शस्य शाद्वल के समान शोभा पा रहे हैं। किन्तु यह शृङ्गार कितना भी मनोरम हो, इन्दुमती कितनी भी सुन्दर हो, रसशृङ्गार अङ्गभूत ही रहेगा, प्रधान नहीं माना जायेगा। अब प्रश्न उठता है कि दो विरोधी भावों (उत्साह शोक) का प्रयोग एक ही नायक के प्रसङ्ग में करना रस दोष माना जायगा—तो इनकी सङ्गति किस प्रकार होगी ?

---

१ रघुवंश ७।१९   २ रघुवंश ७।२०
३ वही, ७।२२   ४ वही, ७।२३
५ वही, ८।२५

सुस्पष्ट यह है कि कवि ने इन दोनों स्थायी भावों का प्रयोग भिन्न भिन्न स्थलों में किया है । पाठक अज पहले रति का पुनश्च शोक का आश्रय बनता है । इस प्रकार भिन्न आश्रयों के कारण दोनों भावों में कोई विरोध नहीं रह जाता ।[1] दूसरी बात यह कि कवि ने एक (वीर) को अङ्गी और दूसरे (शृङ्गार) को अङ्ग बनाकर इस समस्या का स्वयं ही निराकरण कर लिया है । इस विषय में एक तथ्य अवधेय है कि शृङ्गार की विशद एवं सुन्दर पृष्ठभूमि इनके वीर का ओज उतना ही अधिक स्पष्ट । अनन्तर अज का पराक्रम शृङ्गार के ही प्रसङ्ग में कवि ने वर्णित किया है क्योंकि स्वयंवर विवाह के अवसर पर ही नहीं बनता अज के पराक्रम का । अस्तु ।

शृङ्गार का चरम विकास है राजा अग्निवर्ण का । रघुवंश का अन्तिम राजा अग्निवर्ण बड़ा ही विलासी एवं कामलोलुप है । इस वर्णन को काव्य के अन्त में रखने का एक कारण यही रहा हो कि महाकवि जिस गुप्तवंश राजा या राजवंश के आश्रय में रह रहे थे उसके ओज और पराक्रम शासकों में ह्रासोन्मुख हो रहे थे और जिसका मुख्य कारण राजाओं की अतिशय भोग परायणता थी । कहाँ तो रघु को अतिशय शालीनता उन्हें मुक्तावमर्दि उत्पन्न कर देती है और कहाँ अग्निवर्ण की विलासप्रियता उसको मनोहर क्षयरोग का पात्र बना देती है । अग्निवर्ण अग्नि के समान तेजस्वी राजा है अतः पिता द्वारा प्राप्त राज्य की रक्षा करने में उसे तनिक भी प्रयास नहीं करना पड़ता ।[2] इसलिए वह सर्वथा निश्चिन्त हो राज्य का सारा भार मन्त्रियों को सौंपकर भोग विलास में निमग्न हो जाता है ।[3] स्त्रियों के बिना वह क्षण भर में व्याकुल हो उठता है और सदा अन्तःपुर में ही रहता है ।[4] यदि कभी प्रजा लोग बहुत आग्रह करते हैं तो केवल वह उनको दर्शन देने के लिए अपना एक पैर गवाक्ष से बाहर लटका देता है और प्रजा उसी का दर्शन करके अपने को कृतार्थ समझती है ।[5] कभी वह विलासिनियों के साथ विकसित कमलपुष्प वाली वापिकाओं में विहार करता हुआ दिन व्यतीत कर देता है तो कभी उन मन्दिर गृहों में पहुँच जाता है जहाँ मद्य का आसव पाता और पिलाता ।[6] कभी नृत्यशाला में चला जाता है और स्वयं मृदङ्ग वादन करने लगता है । वह इतनी निपुणता से मृदङ्ग वादन करता है कि विख्यात एवं कुशल नर्तकियाँ भी मुग्ध होकर ताल में चूक जाती हैं ।[7] इस प्रकार उसका अङ्क मधुर स्वर वाली वीणा एवं कभी न रिक्त प्रेमिका से सदैव

१ रघुवंश १९।३
२ रघुवंश १९।४
३ वही १९।६
४ वही १९।७
५ वही १९।७
६ वही, १९।११
७ वही १९।१४

जलवत् रहता है। कभी वह अपनी किसी प्रणयिनी से रात्रि मे मिलने के लिए कहकर केवल आनन्द लेने के लिए कही समीप ही छिपकर बैठ जाता है और जब वह उसकी प्रतीक्षा करती-करती कातर होकर उलाहने देने लगती है, तो उसे वह बडे प्रेम पूर्वक सुनता है।[१] कभी वह अपनी रानियो के भय से, दूतियो की सहायता से दासियो से छिपकर मिलता है, कभी वह स्त्रियो के चरणो को महावर से रगने बैठ जाता है और कभी उसके नेत्र उनके अङ्गो को देखने के लिए चचल हो जाते हैं।[२] वह जब उनका चुम्बन करना चाहता तो वे मुह फेर लेती हैं और यदि वह मेखला खोलने का प्रयत्न करता है तो वे उसका हाथ पकड लेती थी। इस प्रकार इच्छा पूरी न होने के कारण, अग्निवर्ण की कामवासना और भी उद्दीप्त हो जाती हैं।[४]

प्रत्येक ऋतु मे अपनी इच्छानुसार अनेक प्रकार से भोग विलास करता हुआ, राज्यकार्य से सर्वप्रथम विमुख, अग्निवर्ण कई वर्ष व्यतीत कर देता है। उसके पुराने शक्तिशाली प्रभाव के कारण ही कोई भी शत्रु राज्य पर आक्रमण करने का दुस्साहस नही करता है। अन्त मे अत्यधिक विषयासक्ति के कारण राजा राजयक्ष्मा से ग्रसित हो जाता है जिस प्रकार दक्ष के शाप के कारण चन्द्रमा। यद्यपि वह इस रोग के दुष्परिणाम से भली प्रकार से परिचित है तथापि वह कामक्रीडा का त्याग नही कर पाता है। वैद्यो के अथक प्रयत्नो से फलस्वरूप भी राजा की जीवन रक्षा नही हो पाता है।[७] तब इस राजकुल की दशा उस आकाश के समान हो जाती है जिसमे कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की केवल एक ही कला शेष रह गयी हो अथवा ग्रीष्म ऋतु के उस शुष्क तालाब के समान जिसमे मात्र पङ्क शेष रह गया हो। अन्त मे राजा का जीवन प्रदीप बुझ जाता है और तब मन्त्रिगण राजभवन के उद्यान मे चुपचाप उसके शरीर का दाह-संस्कार कर देते हैं।[८]

यहाँ राजा अग्निवर्ण आश्रय है विभिन्न ऋतुये, स्त्रियो का शृङ्गारिक चेष्टाएँ उद्दीपनविभाव हैं। अग्निवर्ण द्वारा विभिन्न प्रकार की शृङ्गारिक चेष्टाएँ करना, मृदङ्गादिवादन वेशभूषा पहनना, मदासव पान करना, महावर लगाना, चुम्बनादि अनुभाव हैं। हर्ष औत्सुक्य, चपलता, व्रीडा, मोह इत्यादि व्यभिचारीभाव हैं।

---

१ रघुवंश १९।१८ — २ रघुवंश १९।२३
३ वही, १९।२६ — ४ वही १९।२७
५ वही, १९।४८ — ६ वही, १९।४९
७ वही, १९।५१ — ८ वही, १९।५२

हास्यरस—

रघुवंश के एक स्थल पर (षष्ठ सर्ग में) हास्य रस का बड़ा ही कलात्मक वर्णन मिलता है। स्वयम्वर के अवसर पर, चतुरम्भा सुनन्दा अज के शौर्य एवं पराक्रम का विस्तृत परिचय देती हुई उनके रूप और गुण की भूरि-भूरि प्रशंसा करती है। अज के रूप को देखकर इन्दुमती उनकी ओर आसक्त हो जाती है। किन्तु इसी समय इन्दुमती के अनुराग को अज के प्रति जानकर भी सुनन्दा ठिठोली करती हुई कहती है— हे आर्ये! चलिए आगे? यह सुनकर इन्दुमती बनावटी क्रोध में आँख तरेरकर देखती है।[1]

यहाँ आगे चलने के लिए कहना उद्दीपन विभाव है और कुटिल दृष्टि से देखना अनुभाव है तथा असूया व्यभिचारीभाव है।

रौद्ररस—

रघुवंश में रौद्ररस का सर्वप्रथम वर्णन ताड़का राक्षसी के प्रसङ्ग में प्राप्त होता है। वन में राम-लक्ष्मण के धनुष की डोरी के भयंकर घोष को सुनकर कान में नरकपाल का कुण्डल पहने हुए काली कलूटी ताड़का उनके समक्ष आ खड़ी होती है। वह मार्ग के वृक्षों को तहस-नहस करती प्रेतों सा वस्त्र धारण करती हुई तथा भयङ्कर गर्जन सहित श्मशान में उत्थित चक्रावात के समान राम पर झपट पड़ती है।

यहाँ आश्रय ताड़का तथा राम लक्ष्मण आलम्बन हैं उनके धनुष की टङ्कार का श्रवण उद्दीपन है। राम के सम्मुख खड़े हो जाना गरजना इत्यादि अनुभाव हैं। आवेग अमर्ष व्यभिचारीभाव हैं।

एकादश सर्ग में आश्रय विभाव उग्र परशुराम के तेजस्वी शरीर तथा अनुभाव रूप में उनकी कठोर उक्तियों का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है। विवाह हो जाने के पश्चात् अपनी सेना सहित राम अपनी राजधानी की ओर प्रस्थान करते हैं। इसी बीच एक ऐसा प्रकाश पुञ्ज सेना के आगे उठता हुआ दिखाई देता है जिसे देखकर सैनिक अपनी आँखें चकाचौंध से मीच लेते हैं।[2] उस तेजस्वी पुरुष के शरीर पर ब्राह्मण पिता के अंश का सूचक यज्ञोपवीत शोभा दे रहा था और कन्धे पर क्षत्रिय माता का अंश सूचक धनुष।[3] धीरे-धीरे परशुराम प्रकट होते हैं, जिन्होंने रोष से, उचितानुचित का विचार त्याग कर पिता की आज्ञा से काँपती हुई माता का शिरश्छेदन कर दिया था।[4] उनके दक्षिण कान से एकविंशति रुद्राक्ष की माला लटक रही

१ रघुवंश ६।८२
२ रघुवंश ११।६३
३ वही, ११।६४
४ वही, ११।६५

थी माना क्षत्रियो को इक्कीस वार नाश करने की गिनती करने की सख्या पहन रखी हो।[१] रौद्ररूप वाले परशुराम राम को क्रूर दृष्टि से देखते हुए रोषपूर्ण स्वर से कहते हैं।[२] 'क्षत्रियो को अनेक बार मारकर मेरे हृदय को कुछ शान्ति मिली है किन्तु जैसे दण्ड से छेद देने से सर्प फुफकार उठता है, वैसे ही तुम्हारे पराक्रम को सुनकर मेरे शरीर में अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी है।[३] जनक के जिस धनुष को कोई राजा झुका तक न सका, उसी को तुम भङ्ग कर दिया यह सुनकर मेरा अप्रहित यश आज कुंठित सा हो रहा है। अभी तक राम कहलाने का एक मात्र अधिकार मुझे ही था किन्तु अब तुम्हारे पराक्रम के कारण वह नाम तुम्हारे साथ जुडता जा रहा है।[४] हे राम! धनुष भङ्ग कर मुझे अपनी झूठी हेठी मत दिखाओ। तुम पहले मेरी इस धनुष की प्रत्यंचा युक्त करो तब मैं तुम्हारी वीरता स्वीकार करूंगा।[५] देखो यदि तुम मेरे फरसे की चमकती धार को देखकर भयभीत हो गये हो तो अपने हाथ जोड़कर मुझसे अभय की भिक्षा मांगो जिनकी अंगुलियां में ज्यानिघात के कारण व्यर्थ में ही गड्ढे पड गए हैं।[७]

यहाँ परशुराम आश्रय है। राम का अद्भुत पराक्रम-श्रवण उद्दीपन विभाव है, क्रूर दृष्टि से देखना, अपनी प्रशंसा करना, धनुष तोडने के लिए देना, राम की निन्दा करना इत्यादि अनुभाव हैं। उग्रता, अमर्ष, आवेग, व्यभिचारीभाव भाव हैं।

रौद्ररस की अभिव्यंजना शूर्पणखा के प्रसंग में मिलती है। पंचवटी में स्थित राम के अद्भुत सौन्दर्य को देखकर शूर्पणखा कामासक्त हो उठती है और सुन्दर वेश बनाकर राम के समीप जाती है और विवाह का प्रस्ताव रखती है। राम कहते हैं— 'बाले! मैं तो विवाहित हूँ। तुम मेरे अनुजभ्राता लक्ष्मण के पास जाओ।[८] वह लक्ष्मण के पास जाती है किन्तु लक्ष्मण कहते हैं—"तू पहले मेरे बड़े भाई के पास गयी थी इसलिए तू मेरी माता के समान है मैं तुझसे विवाह नहीं कर सकता।' यह सुनकर शूर्पणखा फिर राम के पास जाती है। इस प्रकार राम लक्ष्मण के पास आते-जाते वह व्याकुल हो जाती है।[९] उसकी इस दशा को देखकर सीता हँसने लगती हैं। सीता को हँसते हुए देखकर क्षण भर के लिए सुन्दर रूप धारण करने वाली कुरूपा शूर्पणखा क्रोधित हो उठती है और कहती है[१०]—इधर देखो! मैं तुम्हें इस उपहास

---

१ रघुवंश ११।६६ — २ रघुवंश ११।७०
३ वही ११।७१ — ४ वही, ११।७२
५ वही, ११।७३ — ६ वही, ११।७७
७ वही, ११।७८ — ८ वही, १२।३४
९ वही, १२।३५ — १० वही, १२।३६

को फल शीघ्र ही दूँगा। तुमने मेरा उसी प्रकार अपमान किया है जैसे कोई हरिणी किसी बाघिन का करता है।"[1]

यहाँ शूर्पणखा आश्रय है। सीता का हास्य उद्दीपन विभाव है। शूर्पणखा द्वारा क्रुद्ध वेश धारण कर लेना, क्रोधारक्त हो जाना, धमकी देना इत्यादि अनुभाव हैं तथा रोष व्यभिचारीभाव है।

बीभत्स—

बीभत्स का स्थायीभाव जुगुप्सा है। बीभत्सजनक वस्तुएँ जिन्हें देखकर घृणा उत्पन्न होती है, वे सभी आलम्बन विभाव हैं। शारीरिक, मानसिक कुरूपता तथा कोई दुष्टतापूर्ण कार्य इत्यादि भी इसके विभाव होते हैं। अश्लील वर्णन भी जुगुप्सा जनक हो सकता है। आँख मुँह-सिकोड़ना, बार बार थूकना, नाक-बन्द करना, पलायन इत्यादि अनुभाव हैं। भय त्रास आवेगादि संचारी भाव हैं।

सप्तम सर्ग में महाराज अज तथा विरोधी राजाओं के युद्ध के प्रसङ्ग में बीभत्स का वर्णन मिलता है। आलम्बन विभावान्तर्गत परस्पर युद्ध करते हुए दो हाथीवालों का वर्णन इस प्रकार हुआ— जहाँ हाथियों का युद्ध हो रहा है वहाँ तीक्ष्ण चक्रों के भीषण प्रहार से हाथीवालों के सिर कट जाते हैं उनके कटे हुए वे सिर बहुत देर पश्चात् पृथ्वी पर गिरते हैं क्योंकि उनके लम्बे-लम्बे केश श्येनों के नखों में उलझ जाने के कारण ऊपर ही लटके रह जाते थे।[2]

एक स्थल पर किसी योद्धा का कटा हुआ बाहु का टुकड़ा पड़ा है जिसे गिद्धादि पक्षीगण नोच रहे हैं मांस के लोभ से सियारिन उस टुकड़े को खींच ले जाती है किन्तु ज्यों ही वह खाने के लिए अपना मुँह मारती है त्यों ही बाहु में बंधे भुजबन्ध की नोक से उसका तालु छिद जाता है और वह उसे वहीं छोड़ देती है।[3]

यहाँ बाहु का टुकड़ा आलम्बन है उसे खींचना तथा खाने के लिए तैयार हो जाना किन्तु तालु छिद जाना इत्यादि अनुभाव हैं।

कहीं कहीं आलम्बन ताडका के प्रसङ्ग में क्षोभज बीभत्स भी दिखाई पड़ता है—राम के शर संघात से ताडित ताडका दुर्गन्धयुक्त रुधिर से लिपटी हुई इस प्रकार सीधे यमलोक चली जाती है जैसे काम के बाण से घायल कोई अभिसारिका चन्दन का लेप लगाकर प्रिय के घर जा रही हो।[4]

---

१ रघुवंश १२।३७
२ रघुवंश ७।४६
३ वही ७।५०
४ वही, ११।२०

कुम्भीनसा-पुत्र लवणासुर का हृदय भी कुछ इसी प्रकार जुगुप्सा जनक है। कवि उसके घृणित रूप का परिचय देता हुआ कहता है—उसका रङ्ग धुएँ जैसा काला था, उसके शरीर से दुर्गन्ध निकल रही थी, उसके बिखरे हुए केश अग्नि की ज्वाला के समान थे तथा मांसभक्षी राक्षस उसके चारों ओर चल रहे थे। इस प्रकार वह उस चिता की अग्नि के समान लग रहा था जो धुएँ से धूमिल हो गया हो जिसमें से चर्बी की दुर्गन्ध निकल रही हो, जिसके आस पास श्वान गिद्धादि मांसभक्षी घूम रहे हो।[1]

यहाँ आलम्बन लवणासुर है उसके काले केश, दुर्गन्धयुक्त शरीर, मांसभक्षी राक्षसादि उद्दीपन विभाव हैं। इस प्रकार बीभत्स की सफल व्यंजना हो रही है।

कालिदास ने बीभत्स का कोई विस्तृत वर्णन नहीं किया। केवल कुछ सीमित स्थलों पर जैसे युद्ध प्रसंग तथा असुरों इत्यादि के प्रसंग में ही किया है जिसमें युद्ध की भीषणता तथा असुरों के जुगुप्साजनक व्यक्तित्व का ज्ञान हो सके और वर्णन में सजीवता उत्पन्न हो सके।

भयानक रस—

रघुवंश के पंचम सर्ग में वन्य गज के प्रसङ्ग में भयानक रस का परिपोष हुआ है। महाराज अज इन्दुमती स्वयम्बर में सम्मिलित होने के लिए अपनी सेना सहित विदर्भ देश की ओर प्रस्थान करते हैं। मार्ग में नर्मदा के तट पर उनकी अश्वरक्लान्त सेना अपना डेरा डालती है।[2] कुछ क्षण के पश्चात् सेना की हलचल में एक भयङ्कर वन्य गज नर्मदा के जल से निकलता है और वह सैन्य शिविर पर आक्रमण करता है। नदी में नहाने के कारण यद्यपि उस हाथी का सब मद धुल जाता है तथापि अज की सेना के हाथियों को देखकर वह क्रोध से उन्मत्त हो उठता है।[3] उस विशाल गज को देखकर तुरङ्ग रस्सी तुड़ा-तुड़ाकर भागने लगते हैं। इस हलचल में रथों के धुरे टूट पड़ते हैं और वे जहाँ तहाँ गिर पड़ते हैं, भय के कारण स्त्रियाँ अपने आश्रय के लिए सुरक्षित स्थान ढूँढने लगती हैं। वह हाथी तम्बुओं को रौंद डालता है तथा रथों को तोड़-फोड़ डालता है।[4]

यहाँ गज आलम्बन है। तम्बुओं का तोड़ना, रौंदना इत्यादि उद्दीपन विभाव है। घोड़ों का बागडोर तुड़ाकर भागना, स्त्रियों का भयभीत हो जाना इत्यादि अनुभाव है। भय, त्रास, आवेग इत्यादि व्यभिचारीभाव हैं।

---

१ रघुवंश १५।१६ २ रघुवंश ५।४२
३ वही, ५।४७ ४ वही ५।४९

सूपणखा के रोषपूर्ण वचनो को सुनकर सीता भयभीत हो जाती हैं और भय के कारण राम के पीछे जा छिपती हैं और उधर अपने नाम के अनुकूल सूपणखा अपना भयङ्कर रूप प्रकट करती है।[1]

यहाँ आश्रय सीता हैं तथा आलम्बन सूपणखा। भयभीत सीता द्वारा राम की आड़ में जा छिपना अनुभाव है। त्रास आवेग व्यभिचारी भाव हैं।

अद्भुत रस—

अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है। लोकोत्तर वस्तु घटना दिव्य पुरुष दर्शनादि इसके आलम्बन विभाव हैं। विस्मयकारी वस्तुओं को देखकर आँखें खुली रह जाना स्तम्भित रह जाना चकित रह जाना दाँतों तले अंगुली दबाना, रोमांचित होना इत्यादि अनुभाव हैं। जड़ता आवेग वितर्क भ्रान्ति इत्यादि संचारी भाव हैं। आचार्य विश्वनाथ ने इस रस में चमत्कार को अधिक महत्व दिया है। उनका कथन है कि रस का प्राण लोकोत्तर चमत्कार है। यह लोकोत्तर चमत्कार सहृदय हृदय का विस्तार करता है और चित्त का विकास अलौकिक काव्यार्थ के अनुशीलन से होता है। अतः चमत्कार ही अद्भुत रस का स्वरूप है।[2] इसी मान्यता का अनुसरण करते हुए रस तरंगिणीकार[3] भानुदत्त ने शृङ्गारादि रसो मे भी आनन्द चमत्कार रूप विस्मय को ही सहायक माना है।

कालिदास के काव्य मे अद्भुत रस के जो भी स्थल प्राप्त होते हैं वे प्रसंगवश ही आए हैं। चमत्कार प्रदर्शनार्थ कवि ने उनका प्रयोग नहीं किया। महाकवि तो सदैव सीधी-सरल भाषा मे ही अपनी बात कहने के अभ्यस्त रहे हैं अतः सहजता और स्वाभाविकता ही उनके काव्य का प्रधान गुण है। यत्र-तत्र अद्भुत रस के प्रयोग के कारण यह भ्रान्ति न होनी चाहिए कि कवि चमत्कार प्रेमी है वरन् अद्भुत का जो भी वर्णन प्राप्त होता है—वह आश्रय गुणो मे उत्कर्ष लाने के लिए अथवा प्रसङ्ग को सजीव बनाने हेतु ही है।

मायावी सिंह नन्दिनी पर सहसा आक्रमण कर देता है। नन्दिनी का चीत्कार सुनकर दिलीप की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो जाती है और सिंह पर प्रहार करने के निमित्त तरकश से बाण निकालने के लिए हाथ उठाते हैं किन्तु यह क्या? उनकी अँगुलियाँ तो बाणो से चिपक जाती हैं। यह देखकर वे चकित रह जाते

१ रघुवंश १।३६ ३७ २ सा० द० परिच्छेद ३० पृ० १०६
३ रस० तर० प्रथमानन

हैं और इस प्रकार स्थिर हो जाते हैं जैसे किसी ने उन्हें चित्र में जड़ कर दिया हो।[1]

यहाँ सिंह आलम्बन है। बाण चलाने के लिए हाथ उठना किन्तु चिपक जाना स्तम्भित रह जाना अनुभाव है। आवेग, जड़ता संचारीभाव हैं।

इसी प्रकार कोष में रघु के शक्तिशाली प्रताप से भयभीत कुबेर द्वारा अप्रत्याशित स्वर्ण की वर्षा कर देना तथा राजकोष के रक्षकों द्वारा रघु से उस विस्मयजनक समाचार के कथन में विस्मय स्थायीभाव की झलक मिलती है। अप्रत्याशित धन वर्षा उद्दीपन विभाव है।

पुत्रहीन महाराज दशरथ पुत्र प्राप्ति की आकांक्षा से पुत्रेष्टि यज्ञ प्रारम्भ करते हैं। ज्यों ही यज्ञ समाप्त होता है, त्यों ही यज्ञ की अग्नि में से एक दिव्य पुरुष प्रकट होता है जिसे देखकर यज्ञकर्ता ऋषि आश्चर्य में पड़ जाते हैं। उस पुरुष के हाथ में खीर से भरा कटोरा रहता है जिसमें समस्त ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले विष्णु भगवान् बैठे थे।

यहाँ दिव्यपुरुष उद्दीपन विभाव है तथा ऋषिगणों का आश्चर्य से भर जाना इत्यादि अनुभाव है।

राम लक्ष्मण के संरक्षण में विश्वामित्र इत्यादि ऋषिगण यज्ञ कार्य प्रारम्भ करते हैं। इसी बीच यज्ञ की वेदी पर रक्त की बड़ी-बड़ी बूँदे देखकर ऋषिगण आश्चर्य-चकित रह जाते हैं और शीघ्रता से यज्ञ करना बन्द कर अपने-अपने स्रुवे उठाकर रख देते हैं।[4]

यहाँ रक्त की बूँदे उद्दीपन विभाव हैं। ऋषियों का आश्चर्य से भर जाना यज्ञ बन्द कर देना, स्रुवे उठाकर रख देना इत्यादि अनुभाव हैं। आवेग संचारी भाव है।

महाराज जनक अपनी पुत्री के विवाह हेतु एक विशाल स्वयम्बर की आयोजना करते हैं। स्वयम्बर में भुजगेन्द्र के समान भीषण, शङ्कर जी का धनुष लाया जाता है। देखते ही देखते राम, उस धनुष को अनायास ही उठा लेते हैं और बड़ी सरलता से पर्वत के समान भारी धनुष पर डोरी चढ़ा लेते हैं—यह दृश्य देखकर सभा में स्थित सभी लोग विस्मय से विस्फारित नेत्रों से देखने लगते हैं।[5]

---

१ रघुवंश २।३१ — २ रघुवंश ५।२९
३ वही, १०।५० — ४ वही, ११।२५
५ वही, ११।४४

यहाँ राम द्वारा धनुष उठा लेना उद्दीपन विभाव है। सभासदों का अचम्भित रह जाना नेत्रों का खुला रह जाना इत्यादि अनुभाव है। जड़ता सञ्चारीभाव है।

पाँचवें सर्ग में अर्धरात्रि के समय कुश के शयनागार में अचानक एक स्त्री प्रकट होती है। द्वार के बन्द रहने पर भी वह स्त्री अन्दर चली आती है। उस दृश्य पर कुश को बड़ा आश्चर्य होता है और वे शय्या से उठ बैठते हैं और उससे कहते हैं— हे शुभे तुम कौन हो। तुम्हारे पति का क्या नाम है और मेरे पास किस लिए आयी हो।[1]

यहाँ स्त्री आलम्बन है उसका शयनगृह में आकस्मिक प्रवेश उद्दीपन विभाव है। कुश द्वारा शय्या से उठ बैठना तथा परिचय पूछना इत्यादि अनुभाव है तथा आवेग व्यभिचारीभाव है।

आश्चर्य स्थायीभाव की झाँकी कुश लव के प्रसङ्ग में देखने को मिलती है। दोनों बालकों (कुश लव) का राम से मिलना जुलना आकृति देखकर सभी उन्हें टकटकी लगाकर देखने लगते हैं। गायन में उनकी अनिन्द्य प्रवीणता देखकर विस्मित सभास्थित लोगों का आश्चर्य तब और भी बढ़ जाता है जब वे राम द्वारा प्रदत्त दान को भी लौटा देते हैं।[2]

यहाँ कुश लव का कुशल गायन तथा दान लौटा देना उद्दीपन विभाव है सभासदों का आश्चर्य चकित रह जाना अनुभाव है। जड़ता व्यभिचारीभाव है।

शान्तरस—

रघुवंश के एक दो स्थलों पर शान्त रस का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है। उद्दीपनविभाव रूप में वशिष्ठ ऋषि के आश्रम का वर्णन करता हुआ कवि कहता है - सन्ध्या समय अग्निहोत्र के लिए तपस्वीगण हाथ में समिधा कुशा तथा फल लिए वन से लौट रहे हैं।[3] अनेक मृग रास्तों पर्णकुटियों का द्वार रोक खड़े हैं क्योंकि उन्हें भी ऋषिपत्नियों का शिशुओं के समान नित्य ही दाने खाने का अभ्यास पड़ गया है।[4] कहीं ऋषिकन्याएँ वृक्षों की जड़ों में पानी डालकर हट गयी हैं जिससे आश्रम के पक्षी निर्भय होकर जलपान कर सकें।[5] तो कहीं धूप में सूखने के लिए डाले गये

---

१ रघुवंश ११।४५ २ रघुवंश १५।६८
३ वही १।४९ ४ वही १।५०
५ वही, १।५१

त्रिनी के दाना को सन्ध्या समय उठाया जा रहा है और कही प्राङ्गण में बैठे बहुत मे हरिण जुगाली कर रहे हैं।[१] इस प्रकार हवन-सामग्री की गन्ध से मिश्रित अग्निहोत्र का जो धूम्र पवन के द्वारा चतुर्दिशाओं में फैल रहा है उसने आश्रम की ओर जाते हुए अतिथियों को भी पवित्र कर दिया है।[२]

अष्टम सर्ग में इन्दुमती की मृत्यु के फलस्वरूप दुःखी अज को संसार की नश्वरता तथा मानव जीवन की क्षण भंगुरता का उपदेश दिया गया है। यह उपदेश उद्दीपन विभावान्तर्गत हो जाता है। ऋषि अज से कहता है—हे राजन्! जिस किसी ने शरीर धारण किया है उसका मरना स्वाभाविकता है। विद्वानों का कथन है कि जीवित रहना ही सबसे भारी विकार है, इसलिये प्राणी जितने क्षण जीवित रह जाय उतने से ही उसे सन्तोष करना चाहिये।[३] विद्वान् लोग मृत्यु को वैसा ही कष्टकारक मानते हैं जैसे हृदय में निहित कील। अतः जो मृत्यु को प्राप्त हो गया वह सब मपदा से मुक्त हो गया। वे मृत्यु को वैसा ही सुखकारी मानते हैं जैसे हृदय में निहित कील निकालने में।[४] इसलिये हे महाराज! जब शरीरात्मा भी परस्पर बिछुडने वाले माने गये हैं, तब पुत्र कलत्रादि सम्बन्धियों के वियोग में विद्वानों को दुःख क्यों हो।[५] फिर हे राजन्! आप तो जितेन्द्रियों में सर्वश्रेष्ठ हैं इसलिये प्रिया की मृत्यु पर साधारण प्राणीवत् आप शोक न कीजिये।[६]

तेरहवें सर्ग में अगस्त्य ऋषि के आश्रम मे नाहस्य तथा आहवनीय अग्नि का वर्णन उद्दीपन रूप में तथा 'राम का हृदय-पवित्र हो जाना अनुभाव रूप से कुशलता पूर्वक हुआ है।

भावव्यञ्जना—

आचार्य अभिनव गुप्त का कथन है कि जब कोई उद्रिक्तावस्था में पहुँचा हुआ व्यभिचारी भाव चमत्कारातिशय का प्रयोजन बनता है तब वहाँ भाव व्यंग्य होता है।[७] आचार्य मम्मट ने देवादिविषया रति तथा विशिष्ट प्रकार से व्यंजित व्यभिचारी भाव को भाव संज्ञा दी है। अन्य आचार्यों ने ऐसे सभी स्थायीभावों को जो अपरिपुष्ट रह जाते हैं अर्थात् रसावस्था को प्राप्त नहीं हो पाते भाव माना है क्योंकि

---

१ रघुवंश १।५१ — २ रघुवंश १।५३
३ वही, ८।८७ — ४ वही, ८।८८
५ वही, ८।८९ — ६ वही, ८।९०
७ लोचन, पृ० १७५ — ८ का० प्र० ३।३५, पृ० ११८

अनङ्गिपुष्टता के कारण उसका स्थायित्व हट जाता है। रसतरंगिणीकार भी इस भाव का स्थायित्व इसीलिए मानते हैं कि वह चरमसीमा तक स्थायी बना र है।[1] आचार्य हेमचन्द्र रत्यादि स्थायीभावों का स्थायित्व विभाव बहुलता के का मानते हैं और अपरिपुष्टत्व होने पर उसको व्यभिचारीभाव स्वीकार करते हैं।[2]

कुमारसम्भव—

कालिदास के काव्य में अंगांगि रसों की निष्पत्ति के साथ साथ भावों की भी सुन्दर अभिव्यञ्जना हुई है। कुमारसम्भव के द्वितीय सर्ग में देवविषयक रति का सुन्दर स्वरूप प्राप्त होता है। तारक नामक राक्षस के कुकृत्यों से अत्यधिक सन्त्रस्त देवगण अपने दुःखनिवारणार्थ इन्द्र को आगे करके भगवान् ब्रह्मा की शरण में उपस्थित होते हैं और उनकी स्तुति करते हुए विनम्र प्रार्थना करते हैं— हे त्रैलोक्य स्रष्टा जगत्-स्रष्टा स्वामी आपको प्रणाम है। हे महान्! आपने सर्वप्रथम जल उत्पन्न करके उसमें ऐसा बीज बो दिया है जो कभी व्यर्थ नहीं जाता और जिससे उत्पन्न हुआ यह समस्त चराचर आपका गान करता है।[3] आप ही शिव विष्णु और हिरण्यगर्भ इन त्रिरूपों से अपनी शक्ति प्रकट करके, विश्व की सृष्टि पालन एवं संहार करते हैं।[4] हे भगवन्! जब आप संसार का सृजन करने की अभिलाषा करते हैं तो उस समय आपके ही स्त्री एवं पुरुष दो रूप बन जाते हैं जो संसार के माता पिता कहलाते हैं।[5] आपने समय का जो परिमाण बनाया है उसके अनुसार ही दिन और रात और होते हैं। जब आप शयन करते हैं तब संसार का महाप्रलय हो जाता है और आपके पुनः जागने पर संसार की नवीन सृष्टि होती है।[6] आप स्वयं संसार की उत्पत्ति पालन एवं प्रलय करने वाले हैं किन्तु आपको कोई भी उत्पन्न पालन एवं नाश करने वाला नहीं है। आप जगदीश्वर होकर भी निरीश्वर हैं।[7] आप अपने स्वरूप को स्वयं जानने वाले हैं अपने में लीन करने वाले हैं।[8] आप तरल भी हैं, कठोर भी हैं स्थूल भी हैं सूक्ष्म भी हैं, छोटे भी हैं बड़े भी हैं आप दृश्य भी हैं, अदृश्य भी हैं इस प्रकार समस्त सिद्धियों के आप स्वामी हैं।[9] हे भगवन्! आप ही धर्मार्थकाममोक्ष के प्रति प्राणियों को प्रवर्तित करने वाली मूल प्रकृति कहलाते हैं और

---

१ रसतर० पृ० १२
२ काव्यानु० पृ० १२६
३ कुमारसम्भव २।५
४ कुमारसम्भव २।६
५ वही २।६
६ वही २।७
७ वही २।८
८ वही, २।९
९ वही, २।१०

आप ही प्रकृति का दर्शन करने वाले उदासीन पुरुष माने जाते हैं।[1] आप पितरों के पिता देवलोक के देवता तथा प्रजापतियों के विधाता हैं।[2] आप ही हव्य और होता हैं आप ही भोज्य और भोक्ता हैं, ज्ञाता और ज्ञेय हैं तथा ध्याता एवं ध्येय हैं।[3]

यहाँ देवताओं की आलम्बन रूप ब्रह्मा के प्रति रति स्थाई भाव की व्यंजना हुई हैं। स्तुति मे ब्रह्मा के जिस गौरव एव माहात्म्य का कथन हुआ है वे अनुभाव रूप मे तथा दैन्य, चिन्ता, विषाद इत्यादि व्यभिचारीभाव हैं।

षष्ठ सर्ग मे विवाह का शुभ सन्देश हिमालय राज के पास ले जाने के निमित्त भगवान् शङ्कर द्वारा स्मरण किए जाने पर वेद वेदाङ्गों के ज्ञाता सप्तर्षिगण उनके समक्ष उपस्थित होते हैं और प्रेम कण्टकितवय होकर शिवजी का पूजन करते हुए कहते हैं[4]—हे भगवन्! हमारे वेद पढ़ने का विधिपूर्वक यज्ञ करने का तथा तप करने का सुफल (आपके दर्शन मात्र से) आज प्राप्त हुआ है[5] क्योंकि आपके जिस मन तक किसी की भी इच्छायें नहीं पहुँच सकती उसी मन मे आपने हमें स्मरण किया है। हे स्वामी! आप जिसके मन में बसते हैं, वह सर्वश्रेष्ठ पुण्यात्मा होता है किन्तु आप के मन मे जो बसता उसका तो कहना ही क्या?[6] यद्यपि हम सूर्य तथा चन्द्र से भी उच्च स्थान पर रहते हैं किन्तु आज आपने हमें स्मरण करके उनसे भी परमोच्च स्थान पर चढ़ा दिया है।[8] हे भगवन्! आपसे यह आदर पाकर हम धन्य हो गये क्योंकि स्वगुणों पर लोगों को तभी सच्चा विश्वास होता है जब सज्जन पुरुष उनके गुणों का आदर करते हैं।[9] हे देव! आपके अनुध्यान से हमारे हृदय में जो प्रीति उत्पन्न हुई है, उसे हम आपके समक्ष अपने मुख से क्या निवेदन करें, आप तो स्वयं ही सर्वज्ञ हैं।[10] यद्यपि आपको हम समक्ष स्थित देख रहे हैं, तथापि हम आपका वास्तविक स्वरूप नहीं समझ पा रहे हैं। इसलिए आप कृपा करके हमें यह बतलायें कि आपका यह साक्षात् दृष्ट स्वरूप जगत्-स्रष्टा है, पालन-कर्ता है अथवा संहारकर्ता है।[11] हे देव! यह तो बड़ा ही जटिल कथा है इसलिए इसे अभी विराम दीजिये और बताइये कि इस समय आपने हमें किस कार्य सम्पादन-हेतु स्मरण किया है।[12]

---

१ कु०स० २।१३ | २ कु०स० २।१४
३ वही २।१५ | ४ वही, ६।१५
५ वही, ६।१६ | ६ वही, ६।१७
७ वही, ६।१८ | ८ वही, ६।१९
९ वही, ६।२० | १० वही, ६।२१
११ वही ६।२३ | १२ वही, ६।२४

गण अनि प्रसन्न होते हैं और उनके चरित्र की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—'हे गिरिराज ! आपने जो कुछ कहा वह सब आपके शोभा योग्य है। क्योंकि आपका मन वैसा ही समुन्नत है जैसे आपके शिखर। आपको जो अचल पदार्थों का विष्णु कहा जाता है वह उचित है क्योंकि आप समस्त चर-अचर के आश्रय स्वरूप हैं।[१] यदि आप अपने भार से पाताल के नीचे तक पृथ्वी को न दबाए रहे तो शेषनाग कमनीय मृदु फणों पर पृथ्वी को किस प्रकार धारण करते।[२] जिस प्रकार आपके यहाँ से निकली निरन्तर प्रवाहित तथा समुद्र की लहरों से अविच्छिन्न निर्मल नदियाँ अपनी पवित्रता से संसार को पवित्र करती है उसी प्रकार अप्रतिहत, आपकी कीर्ति भी सब लोकों को पवित्र करती है। जिस प्रकार विष्णु के चरण से निस्सृत गंगा अपने को बड़ा धन्य समझती है उसी प्रकार आपके उच्चशिखर से निकलकर प्रवाहित होने में अपने को पुण्यभागिनी समझती हैं। वामनावतार धारण कर तीनों लोकों को नापने के पश्चात् भगवान् विष्णु की महिमा तीनों लोक में फैली हैं, किन्तु आपकी महिमा तो उनसे पूर्व ही त्रैलोक्य में व्याप्त हैं।[३] यज्ञ का भाग प्राप्त करने वाले, देवगणों में स्थान प्राप्त कर आपने उच्च एवं हिरण्मय शिखरों वाले सुमेरु पर्वत को भी अचर कर दिया है। हे पर्वतराज ! आपने अपनी समस्त कठोरता को अचल शरीर में समाहित कर लिया है और आपका यह चल शरीर भक्ति से इतना विनम्र है कि सज्जनवृन्द आकर इसकी आराधना करते हैं।[४]

यहाँ आश्रय सप्तर्षिगण है आलम्बन हिमालयराज। सप्तर्षि द्वारा हिमालय का गुण प्रशंसा का कथन अनुभाव है तथा हर्ष इत्यादि व्यभिचारीभाव हैं। इस प्रकार देवविषयक रति की सुन्दर व्यंजना हुई है।

पुत्री विषयक रति अथवा वात्सल्य की व्यंजना माँ मैना के प्रसङ्ग में मिलती है। विवाह के अवसर पर शृङ्गार की समस्त सामग्रियों से सज्जित पार्वती का स्वाभाविक रूप लावण्य द्विगुणित हो उठता है। उनके अलौकिक रूप सौन्दर्य को देखकर आनन्दातिरेक के कारण माता मैना के नेत्र से अश्रु प्रवाहित होने लगता है अतएव स्पष्ट देख न सकने के कारण कङ्कन जहाँ बाँधना चाहिये वहाँ न बाँधकर कहीं और बाँध देती हैं।[७]

---

१ कु०सं० ६।६६
२ कु०सं० ६।७०
३ वही, ६।६८
४ वही, ६।६९
५ वही, ६।७०
६ वही ६।७३
७ वही, ६।२५

यहाँ सप्तर्षिगण आश्रय हैं भगवान शङ्कर आलम्बन हैं तथा उनका लोकातिशायी चरित्र उद्दीपन विभाव है। प्रेम-मग्न शरीर का पुलकित होना तथा भगवान शिव की महिमा का कथनादि अनुभाव है—हर्ष व्यभिचारीभाव है।

मुनि विषयक रति का चित्रण हिमालय तथा सप्तर्षियों के संवाद के प्रसङ्ग में हुआ है। हिमालयराज सप्तर्षियों को अपने घर आया हुआ देखकर अति प्रसन्न होते हैं। शुद्धात्मा हिमालय बड़ा विधिपूर्वक सप्तर्षियों का सत्कार करते हैं, उन्हें सुन्दर आसनों पर बैठाते हैं और विनयपूर्वक करबद्ध होकर कहते हैं (हे देवर्षिवृन्द) आपका सहसा आगमन मुझे ऐसा लग रहा जैसे बिना मेघ की वर्षा हो गई अथवा बिना पुष्प के फल निकल आए हों।[2] आज मैं अपने को ऐसा समझ रहा हूँ मानो मुझ अज्ञानी को ज्ञान मिल गया हो लोहे से सोना सा बन गया हूँ और भूमि पर रहते हुए भी स्वर्गवासी हो गया हूँ।[3] मैं आज से स्वयं को ऐसा विशाल तीर्थ समझने लगा हूँ, जहाँ जाते ही लोग पवित्र हो जाएँ क्योंकि जहाँ सज्जनों का निवास हो जाता है वहीं तीर्थस्थान बन जाता है।[4] हे ब्रह्मर्षियो! मैं अपने को दो प्रकार से पवित्र मानता हूँ प्रथम सिर पर गङ्गा प्रवाहित होने से तथा द्वितीय आप लोगों के चरणों का प्रक्षालन प्राप्त कर लेने से। हे मुनियो! आप लोगों ने अपने आगमन से, मेरे चर और अचर दोनों शरीर पर महती कृपा की है और मैं हर्षातिरेक से फूला नहीं समा रहा हूँ।[5] आप तेजस्वियों के दर्शन मात्र से मेरी गुफाओं का अन्धकार ही नहीं अपितु मेरे हृदय का अज्ञानान्धकार भी दूर हो गया।[6] हे ऋषिगण! आप तो सर्वशक्तिमान हैं इसलिए आप किसी कार्य वश नहीं आये हैं, अपितु केवल मुझे पवित्र करने के लिए ही आप लोगों ने यहाँ आने का कष्ट किया है।[7] किन्तु आप जब हमारे यहाँ पधारे हैं तो मुझे कोई सेवा बताइए। आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए मैं, मेरी पत्नी तथा मेरी प्रिय कन्या, सभी हैं। अतः आप अपना शुभ इच्छित कार्य हमें बताइये क्योंकि समस्त बाह्य वस्तुएँ तो आपके लिए तुच्छ हैं।

यहाँ आश्रय हिमालय है तथा आलम्बन रूप सप्तर्षियों के गुणों का कथन अनुभाव है तथा हर्ष व्यभिचारीभाव है। हिमराज द्वारा यथोचित सत्कृत ऋषि-

---

१ कुमारसम्भव ६।५३
२ कुमारसम्भव ६।५४
३ वही, ६।५५
४ वही, ६।५६
५ वही, ६।५४
६ वही, ६।६०
७ वही, ६।६२
८ वही, ६।६४

गण अति प्रसन्न होते हैं और उनके चरित्र की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—'हे गिरिराज ! आपने जो कुछ कहा वह सब आपके शोभा योग्य है। क्योंकि आपका मन वैसा ही समुन्नत है जैसे आपके शिखर। आपको जो अचल पदार्थों का विष्णु कहा जाता है वह उचित है क्योंकि आप समस्त चर अचर के आश्रय स्वरूप हैं।[१] यदि आप अपने भार से पताल के नीचे तक पृथ्वी को न दबाए रहे, तो शेषनाग कमलवत् मृदु फणों पर पृथ्वी को किस प्रकार धारण करते।[२] जिस प्रकार आपके यहाँ से निकली निरन्तर प्रवाहित तथा समुद्र की लहरों से भी अच्छिन्न निर्मल नदियाँ अपनी पवित्रता से संसार को पवित्र करती है उसी प्रकार अप्रतिहत, आपकी कीर्ति भी सब लोकों को पवित्र करती है। जिस प्रकार विष्णु के चरण से निस्सृत गंगा अपने को बड़ा धन्य समझती है उसी प्रकार आपके उच्चशिखर से निकलकर प्रवाहित होने से अपने को पुण्यभागिनी समझती हैं। वामनावतार धारण कर तीनों लोकों को नापने के पश्चात् भगवान् विष्णु की महिमा तीनों लोक में फैली हैं, किन्तु आपकी महिमा तो उनके पूर्व ही त्रैलोक्य में व्याप्त हैं।[३] यज्ञ का भाग प्राप्त करने वाले, देवगणों में स्थान प्राप्त कर आपने उच्च एवं हिरण्मय शिखरों वाले सुमेरु पर्वत को भी अधर कर दिया है। हे पर्वतराज ! आपने अपनी समस्त कठोरता को अचल शरीर में समाहित कर लिया है और आपका यह चल शरीर भक्ति से ऐसा विनम्र है कि सज्जनवृन्द आकर इसकी आराधना करते हैं।[४]

यहाँ आश्रय सप्तर्षिगण हैं आलम्बन हिमालयराज। सप्तर्षि द्वारा हिमालय का गुण प्रशंसा का कथन अनुभाव है तथा हर्ष इत्यादि व्यभिचारीभाव हैं। इस प्रकार देवविषयक रति की सुन्दर व्यंजना हुई है।

पुत्री विषयक रति अथवा वात्सल्य की व्यंजना माँ मैना के प्रसङ्ग में मिलती है। विवाह के अवसर पर शृङ्गार की समस्त सामग्रियों से सज्जित पार्वती का स्वाभाविक रूप लावण्य द्विगुणित हो उठता है। उनके अलौकिक रूप सौन्दर्य को देखकर आनन्दातिरेक के कारण माता मैना के नेत्र में अश्रु प्रवाहित होने लगता है अतएव स्पष्ट देख न सकने के कारण कङ्कन जहाँ बाँधना चाहिये वहाँ न बाँधकर कहीं और बाँध देती हैं।[७]

---

१ कु०स० ६।६६ २ कु०स० ६।७०
३ वही ६।६८ ४ वही, ६।६९
५ वही, ६।७० ६ वही ६।८३
७ वही, ६।२५

यहाँ आश्रय मेना हैं, आलम्बन रूप पार्वती, उनकी रूप कान्ति, उद्दीपन विभाव है। नेत्र से अश्रुधारा प्रवाहित होना, कम्पन कहीं का कहीं पाँव देना अनुभाव हैं तथा दैन्य, मोह, भ्रान्ति इत्यादि व्यभिचारीभाव है।

शिव को कठोर तपस्या से प्राप्त करने के निमित्त पार्वती वन जाने का निश्चय करती हैं। माँ मेना यह समाचार सुनकर अत्यन्त कातर हो उठती हैं और उन्हें बड़े स्नेह से गले लगाकर कठोर तपस्या करने से मना करती हुई कहती हैं। हे वत्से! बड़े-बड़े देवता तुम्हारे घर में विद्यमान हैं। तुम्हारा जो भी अभिमत हो, उनसे माँग लो। तपस्या करना सरल नहीं है। कहाँ तपस्या और कहाँ तुम्हारा कोमल शरीर। क्योंकि शिरीष पुष्प पर भौंरे भले ही आकर बैठ जायँ किन्तु यदि कोई पक्षी आकर बैठने लगे तो वह नन्हा सा पुष्प झड़ ही जायगा।'[1]

यहाँ आश्रय रूप मेना द्वारा पार्वती को गले से लगाना, तपस्या करने से रोकना इत्यादि अनुभाव हैं तथा मोह, चिन्ता इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं। इस प्रकार पुत्री पार्वती के प्रति माँ का स्नेह पुत्री विषयक रति की सफल व्यंजना कराता है।

पुत्रीविषयक रति (वात्सल्य) की सुन्दर व्यंजना षष्ठ सर्ग के अन्त में हुई है। शिव पार्वती विवाह निश्चित हो जाने पर हिमालय सुन्दर माङ्गलिक वस्त्रों से सज्जित अपनी कन्या को स्नेह से बुलाकर कहते हैं—'यहाँ आओ वत्से! देखो विश्वात्मा शिव ने तुम्हें मुझसे माँगा है और वह भिक्षा लेने के लिए ये सप्तऋषि लोग आए हुए हैं। सचमुच आज मुझे गृहस्थ होने का सत्फल प्राप्त हो गया।[2] यह कहकर वे ऋषियों से कहते हैं—'यह शङ्कर जी की पत्नी आपको प्रणाम करती है।[3] ऋषिगण अभिलषित फल देने वाले श्रेष्ठ आशीर्वाद देते हैं।'[4] तत्पश्चात् ऋषियों को प्रणाम करने के लिए पार्वती ज्यों ही लजाती हुई झुकती हैं त्यों ही उनके कान से स्वर्ण-कुण्डल गिरने लगता है और अरुन्धती जी शीघ्र ही उठाकर अङ्क में बिठा लेती हैं।[5]

यहाँ पहले हिमालय फिर अरुन्धती आश्रय हैं पार्वती आलम्बन। पार्वती द्वारा ऋषियों को प्रणाम करने के लिए झुकना उद्दीपन विभाव। पिता द्वारा पार्वती को बुलाना सप्तर्षियों से उनके प्रणाम की बात कहना, अरुन्धती द्वारा अङ्क में आरोपित कर लेना, अनुभाव तथा व्रीडा, व्यभिचारीभाव है।

---

१ कुमारसम्भव ५।३
२ कुमारसम्भव ६।८८
३ वही ६।८९
४ वही ६।९०
५ वही, ६।९१

आचाय आनन्दवधन ने प्राधान्येन व्यजित व्यभिचारी भाव को भावव्यग्य माना है। उनका स्पष्ट कथन है कि जहाँ किसी भाव का चित्रण किया जाता है, वहाँ कोई न कोई रस अवश्य विद्यमान रहता है किन्तु वहा रस का चारुत्व न होकर भाव विशेष का ही विशेष चारुत्व रहता है। अत एस स्थलो पर रस की प्रधानता न मानकर, भाव को प्रधानता माननी चाहिये। व्यजित व्यभिचारीभावो का सौन्दय प्राय स्फुट काव्यो मे ही दिखाई पडता है क्योकि उनमे प्रत्येक श्लोक स्वतन्त्र होता है। अत उनसे विभिन्न भावो की अभिव्यक्ति बडी सरलता पूवक हो जाती है। प्रबध काव्य म तो य सभी भाव अगी के अग बन जाते हैं अतएव उन्ह स्वतन्त्र व्यभिचारी भाव कहने मे थोडी हिचक होती है। कुमारसम्भव [illegible] भी प्राय भावो का चित्रण अङ्गीरस क अङ्गरूप म हुआ है फिर भी कुछ स्थलो पर हम भावो क स्वतन्त्र अस्तित्व की चर्चा करेगे।

द्वितीय सग मे तारकासुर द्वारा त्रसित अतएव अत्यन्त घबराए हुए, अपनी शरण मे उपस्थित देवताओ को देखकर ब्रह्मा कहते है—एक साथ मिलकर आये हुए अपने-अपने अधिकारो की रक्षा करने वाले हे शक्तिशाली देवगण! मैं आप सब का स्वागत करता हूँ। हे देवताओ! आप लोगो के मुँह की पहली वाली कान्ति कहाँ विलुप्त हो गया। आप सब हिमाच्छादित धुँधले तारे के समान दु खित क्यो दिखाई दे रहे हैं।[१] वृत्रासुर का हनन करने वाला, इन्द्रधनुष के समान ज्योतिमुक्त वज्र आज चमक खोकर कुण्ठित सा क्यो लग रहा है। शत्रुओ के सहारकर्ता वरुणदेव पाश स बद्ध सप के समान अनिदीन क्यो दिखाई दे रहे हैं।[२] कुबेर का गदाविहीन बाहु, भग्नशाखा वाले वृक्ष के ठूँठ के समान क्यो दिखाई पड रहा है।[४] अपने निस्तेज दण्ड से पृथ्वी को कुरेदते हुए यमराज एस क्यो लग रहे है मानो उनका कठोर दण्ड भी निर्वाण भूयिष्ठ लूक जैसा बेकाम हो गया है।[५] हे आदित्यगण आप लोग भी चित्रलिखितवत् प्रतीत होत हो जाने के कारण ठण्डे क्यो दिखाइ दे रहे हैं।[६] हे मरुद्गण! आप भी शिथिल क्यो पड गये हैं। हे रुद्राण! आपकी हुङ्कार करने की शक्ति कहाँ विलीन हो गयी।[७] हे देवगण! एसा प्रतीत होता है मानो आपकी उच्च प्रतिष्ठा किसी पराक्रमी शत्रु द्वारा विनष्ट कर दी गयी है। अत मुझे

---

१ कुमारसम्भव २।१९
२ कुमारसम्भव २।२०
३ वही, २।२१
४ वही, २।२२
५ वही २।२३
६ वही, २।२४
७ वही, २।२५

सकता क्योंकि आप लोग एकत्र होकर क्या कहने आये हैं क्योंकि मेरा काम तो केवल जगत् की सृष्टि करना है, उसका पालन करना तो आप लोगों के आधीन है।[1]

यहाँ विषाद, चिन्ता, दैन्य, जड़ता इत्यादि व्यभिचारीभावों का प्राधान्येन व्यंजना हो रहा है। लज्जा, ग्लानि, मद आदि व्यभिचारीभावों की व्यंजना तृतीय सर्ग के अन्त में हुई है। अपनी क्रोधाग्नि की तीक्ष्ण ज्वाला से काम को भस्म कर देने के पश्चात् शिव जी सहसा अन्तर्हित हो जाते हैं। उस समय उनकी सेवा में प्रस्तुत पार्वती यह सोचकर अत्यन्त लज्जित होती हैं कि आज सखियों के सम्मुख उच्चमर्यादा वाले मेरे पिता का मनोरथ और मेरी सुन्दरता दोनों ही व्यर्थ हो गये।

ब्रह्मचारी द्वारा शिव के निन्दा कथन के माध्यम से अनेक भावों की अनुपम छटा लक्षित होती है। ब्रह्मचारी शङ्कर जी की घोर निन्दा करते हुये कहता है—पार्वती जी![3] आप भी किस अयोग्य से प्रेम करती हैं। पाणिग्रहण की बेला में वैवाहिक सूत्र से सज्जित आपका यह हाथ महादेव के सर्पलिप्त हाथ को कैसे स्पर्श कर सकेगा। आप उस श्मशान भूमि पर अपने चरण किस प्रकार रखेंगी। जहाँ प्रेतों श्मशानों के केश इधर-उधर बिखरे पड़े रहते हैं।[4] कपाली को प्राप्त करने में दो दुरा स्त्रियों के भाग्य फूट गये, एक तो उनके मस्तक पर स्थित चन्द्रमा की दूसरी आप।[5] उस दिगम्बर शिव के तो जन्म का भी कोई ठिकाना नहीं है। अतएव आप मन से यह इच्छा निकाल दीजिए। कहाँ शिव और कहाँ सुलक्षणा आप। अब श्मशान में पुनरारोपण करने के लिए जो खम्भा गड़ा रहता है उसमें जिस प्रकार सज्जन लोग यज्ञ के खम्भे का काम नहीं सम्पन्न करते उसी प्रकार शिव जी को पति बनाना आपको शोभा नहीं देता।

यहाँ विषाद, हर्ष, चपलता आदि व्यभिचारी भावों की व्यंजना हुई है। ब्रह्मचारी कोई और नहीं वस्तुतः शिव ही थे इसलिये प्रकट में तो वे पार्वती के तप परायणी शिव की निन्दा करके उनका लक्ष्य भ्रष्ट करना चाहते हैं किन्तु उनके हृदय में पार्वती के प्रति एक आकर्षण का भाव अवश्य था। इस प्रकार हर्ष चपलतादि भावों का ही यहाँ सौंदर्य दीख पड़ता है।

विवाह के अवसर पर सखियों द्वारा पूर्ण शृङ्गार कर दिये जाने पर पार्वती दर्पण में अपनी अपूर्व सी रूप छवि को देखकर ठगी सी रह जाती हैं और शिव से

---

१ कुमारसम्भव २।२८
२ कुमारसम्भव ३।७५
३ वही, ५।६६
४ वही, ५।६८
५ वही, ५।७१
६ वही, ५।७३

मिलने के लिए उतावली हो उठती हैं। क्योंकि स्त्रियों का शृङ्गार तभी सफलीभूत होता है जब पति उसे देखे।[१]

यहाँ औत्सुक्य भाव की व्यंजना हो रही है।

शङ्कर का अद्वितीय रूपकान्ति को देखकर नगरसुन्दरियाँ सोचने लगती हैं कि ऐसे श्रेष्ठवर को प्राप्त करने के लिए पार्वती का तप करना उचित था।[२] सौंदर्य में परस्पर स्पृहणीय शोभा वाले यदि इन दोनों (शङ्कर-पार्वती) का विवाह न होता तो प्रजापति द्वारा इन दोनों के रूप निर्माण का सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता।[३] शिव की प्रशंसा करती हुई वे एक दूसरे से कहती हैं—हे सखी! इन्होंने कामदेव को भस्म नहीं किया, वरन् वह इनकी दिव्य रूप शोभा को देखकर, स्वयं ही ईर्ष्यावश जल मरा है।[४] हे आली! पर्वतेश्वर हिमालय बड़े ही भाग्यवान हैं। पृथ्वी को धारण करने के कारण उनका मस्तक स्वयं ही ऊँचा है किन्तु आज अभिलषित वर शङ्कर से कारण सम्बन्ध करके तो उनका मस्तक और भी उन्नत हो गया है।[५]

यहाँ वितर्क, हर्ष, चपलता, औत्सुक्य इत्यादि व्यभिचारीभावों की व्यंजना हो रही है।

देवर्षिगण जिस समय यह (शिव-पार्वती के विवाह का सन्देश) कह रहे थे, उसी समय पार्वती जी अपने पिता के समीप नीचा मुँह करके खिलौने के कमल पत्र गिन रही थी।[६]

यहाँ अवहित्था भाव व्यंग्य हो रहा है।

पार्वती जी के चरणों में जब सखी महावर लगा चुकी तब उसने विनोद करते हुए आशीर्वाद दिया कि भगवान करें तुम इन पैरों से अपने पति के सिर की चन्द्रकला का स्पर्श करो। इस पर पार्वती मुँह से तो कुछ न बोली किन्तु एक माला उठाकर उसकी पीठ पर फेंक दिया।[७]

दैन्यभाव—जैसे (हिमालयस्थ) किन्नरियाँ शिलीभूत हिम मार्गों पर चलती थीं तो उनकी अङ्गुलियाँ और एड़ियाँ ऐंठ जाती थीं, पर वे क्या करें, अपने भारी नितम्बों तथा स्तनों के भार के कारण शीघ्रता से न चल पाती और न इच्छा होते हुए भी स्वाभाविक मन्दगति का त्याग कर पाती।[८]

---

१ कुमारसम्भव ७।२२
२ कुमारसम्भव ७।६५
३ वही, ७।६६
४ वही, ७।६७
५ वही, ७।६८
६ वही, ६।८४
७ वही, ७।१९
८ वही, १।११

यहाँ (हिमालय) की गुफाओं में किन्नरियाँ अपने प्रियतमों के साथ काम-क्रीडा करते हुए शरीर पर से वस्त्र हट जाने के कारण जब लज्जित हो जाती थीं, तब मेघ उन गुफाओं के द्वारों पर आच्छादित होकर अन्धकार कर देता था।'[1]
रति-भाव—भगवान् शङ्कर ने पार्वती को देखा और चन्द्रोदय के समान अधीर होते (उमड़ते) पारावार की भाँति कुछ कुछ अधीर हो उठे। तब क्या था। उनके प्रेम भरे नयन बिम्बाधर सुन्दर पार्वती के मुख पर रह रह कर पड़ने लगे।

आचार्य विश्वनाथ उद्बुद्ध भाव स्थायीभाव को भाव स्वीकार करते हैं अतः उनके अनुसार यहाँ शिव का पार्वती विषयक रतिभाव अभिव्यक्त हो रहा है जिससे यह सूक्ति भावात्मक बन गया है और भावात्मक बनने के कारण रसात्मक बन रही है।

यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि जब कि प्रपानक रस की भाँति ही विभावादि से संयुक्त रत्यादि का एक घन सम्वलित आनन्द चमत्कार है तब पृथक् तथा अवस्थित व्यभिचारीभाव की प्रधान रूप में अभिव्यक्ति कैसे सम्भव है।

आचार्य विश्वनाथ इसका स्वयं उत्तर देते हुए कहते हैं कि जैसे शक्कर मरिच, कर्पूर आदि का सम्मिश्रण आस्वाद प्रपानक का आस्वाद है वैसे ही विभावादि सम्वलित रत्यादि रूप स्थायीभाव का आस्वाद रस का आस्वाद है किन्तु कभी जैसे प्रपानक के आस्वाद जनक तत्त्वों में किसी एक का आस्वाद उत्कट रूप में प्रतीत होने लगता है वैसे ही यह भी सम्भव है कि कभी रस के ही अभिव्यञ्जक तत्त्वों में किसी एक का जैसे कि व्यभिचारी भाव का ही आस्वाद उत्कट रूप में अनुभव किया जाने लगे। इस प्रकार कभी पृथक्तया व्यभिचारी भाव की प्रधान रूप में प्रतीति में कोई आपत्ति नहीं।

रसाभास –

रसों का अनुचित रूप में वर्णन रसाभास कहलाता है।[3] यह अनौचित्य अनेक प्रकार का होता है। आचार्य मम्मट के अनुसार इस अनौचित्य का निर्णय सहृदय पुरुषों की व्यवस्था के अनुसार ही हो सकता है। जैसे रति के विषय में अनौचित्य कई प्रकार का हो सकता है—एक स्त्री के प्रति पुरुष का प्रेम वर्णन तो उचित है किन्तु अनेक पुरुषों के प्रति रति वर्णन अनुचित है। रति वर्णन उभयगत (नायक नायिका)

---

१ कुमारसम्भव २।१४ २ कुमारसम्भव ३।
३ सा० द० उ० ३।२६२ ४ का० प्र० पृ० १७३

होना चाहिए, किन्तु यदि वह केवल आश्रयगत अथवा आलम्बनगत ही होगा तो वह रसाभास का स्थल माना जाता है। इसी प्रकार गुरु के प्रसङ्ग मे हास्य का चित्रण, वीर पुरुष के सम्बन्ध मे भय का कथन, वीतरागी म करुणादि का वर्णन ये सभी रसाभास की कोटि मे आते हैं।[१] आचार्य हेमचन्द्र ने निरिन्द्रिया तथा तियगादि मे रस-भाव के आरोप को रसाभास तथा भावाभास माना है।

रस एव रसाभास के सम्बन्ध म विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद रहा है। कुछ आचार्यों का मत है कि रसाभास को रसाभास की सज्ञा प्रदान कर, पुन रस कहना अनुचित है। पण्डितराज जगन्नाथ का मत है कि 'रसाभास म अनौचित्य की स्थिति तो अनिवार्य है किन्तु रस को सवथा औचित्यपूर्ण तथा निर्मल माना गया है अतएव उसमे समानाधिकरण का भाव नही हो सकता। अर्थात् जिस प्रकार हेत्वाभास का हेतु नही माना जाता, उसी प्रकार रसाभास को रस कहना अनुचित है।'[२]

'पण्डितराज जगन्नाथ' अपने द्वारा उठाए गये इस प्रश्न का उत्तर स्वय देते हुए कहते हैं कि, 'जिस प्रकार अनुचित होने पर भी किसी वस्तु के स्वरूप का नाश नही होता, अपितु उसका स्वरूप वही रहता है, उसी प्रकार रस म थोडा अनौचित्य होने पर भी उसको रसाभास भले ही कह दिया जाय किन्तु उसका स्वरूप विकृत नही होता। रसाभास रस ही है।'[३]

इसी मत का समथन करते हुए अभिनवगुप्त कहते हैं कि रसाभास का यह स्वरूप 'शुक्तोरजताभासवत्' है। रसाभास का तात्पय यह नही है कि रस रहता ही नही बल्कि वहाँ दोष रहते हुए भी उसका भास बना रहता है।[४] विश्वनाथ ने आनन्दवधन मम्मटादि के समान इसे रसध्वनि के अन्तगत माना और उसकी रसनीयता के कारण आस्वादयोग्य कहा है। अत जिन स्थलो पर रसाभास का वणन हुआ है, उन स्थलो मे भी विद्वानो ने काव्यत्व स्वीकार किया है। उसे काव्य स्वीकार करने का एक मात्र कारण यही है कि वहाँ दोष रहने पर भी रसास्वाद होता है। (दोष की प्रतीति बाद मे होती है) रस्यते इति रस परिभाषा के अनुसार रस-भाव के आभास को भी रस तथा भाव मानना चाहिए।

वामन झलकीकर भी रसाभास को रसानुभूति की उत्तरकालिक स्थिति मानते हैं अर्थात् प्रथम क्षण म तो रस का ही अनुभव होता है उसके पश्चात् उचित

---

१ सा० द०, पृ० १७३
२ रसग० पृ० ३३७
३ रसगगाधर पृ०३३७
४ सा० द० प्र० परि० पृ० १३

अनुचित का विचार करने पर रसाभास का ज्ञान होता है। अतएव रसाभास रस ही है।[१]

कालिदास के काव्य में रसाभास का चित्रण जहाँ भी हुआ है वहाँ उसकी रसनीयता अक्षुण्ण बनी है। तृतीय सर्ग में असमय में वसन्तागमन के फलस्वरूप समस्त चराचर काम के प्रभाव से अभिभूत हो उठता है कवि तिर्यक की रति का वर्णन करता हुआ कहता है (काम से प्रभावित) भ्रमर अपनी प्रिया भ्रमरी के साथ एक ही पुष्प की कटोरी में मकरन्द पान करने लगा। काला हरिण अपनी प्रिया हरिणी को सींग से खुजलाने लगा जो उसके स्पर्श का सुख लेती हुई नेत्र बन्द किए बैठी है। हथिनी बड़े प्रेम से कमल पराग से सुवासित जल अपनी सूँड से निकाल कर अपने हाथी को पिलाने लगी और चकवा भी अधभुक्त कमल नाल से चकवी की भेंट करने लगा।

यहाँ पुष्प कटोरी में मकरन्द पान करना सींग से खुजलाना, नेत्र का बन्द हो जाना, कमल नाल भेंट करना इत्यादि अनुभाव हैं तथा हर्ष, मद, इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं, इस प्रकार शृङ्गाररसाभास की यहाँ सफल व्यंजना हो रही है वस्तुतः शृङ्गाररस का वर्णन स्त्री-पुरुष के प्रसङ्ग में ही करना चाहिए क्योंकि उनमें कोमल एवं मधुर भावनाओं का अनुभव करने की क्षमता होती है, पशु-पक्षियों में उसका वर्णन तो अनौचित्य का विषय ही माना जायगा।

भावाभास —

भावों की अनौचित्येन अभिव्यक्ति होने को भावाभास कहा जाता है। जैसे वेश्या में यदि कोई लज्जा भाव का वर्णन करे तो वह भावाभास का विषय माना जायगा, क्योंकि कुलाङ्गना में तो लज्जा भाव का होना औचित्यपूर्ण है किन्तु वेश्या में उसका वर्णन अनौचित्यपूर्ण ही कहा जायगा।

अलौकिक सौन्दर्य के स्वामी शङ्कर जी बरात सहित हिमालय के नगर में प्रवेश करते हैं। शिव जी के अनुपम रूप को देखने के लिए पौर सुन्दरियाँ उतावली हो उठती हैं और अपने सभी कार्यों को छोड़कर अपने-अपने प्रासाद में आ खड़ी होती हैं।[४] अत्यन्त शीघ्रता के कारण एक स्त्री के केश पाश में बद्ध पुष्प का बन्धन छूट जाता है और वह उसे हाथ से पकड़े हुए ही चल देती है बाँधने की सुध नहीं रहती।[५]

---

१ काव्यप्रदीप टीका, पृ० १२२ २ कुमारसम्भव ३।३६
३ कु० स० ३।३७ ४ कु० स० ७।५६
५ कु० स० ७।५७

एक अन्य स्त्री दक्षिण नेत्र मे अञ्जना लगा चुकी थी किन्तु वाम नेत्र मे बिना अजन लगाए हाथ म सलाई लेकर वातायन की ओर भागती है।[1] एक दूसरी स्त्री मे मणि-माल गूथते गूथते देखन के निमित्त वातायन की ओर भागन लगती है किन्तु त्वरावश उसके मणियो के दाने बिखर जाते हैं केवल सूत्र ही अगूठे म ज्यो का त्यो लगा रह जाता है।[2] इस प्रकार चचल नेत्र वाले मुख गवाक्ष म अति कुतूहल वश इतस्तत देखते हुए ऐसे लग रहे थे मानो उन गवाक्ष की डालियो म भ्रमर युत कमल लगा दिए गए हो।[3] इसी समय चन्द्रमा की ज्योति को भी यगभूत कर देने वाले शङ्कर जी राजमार्ग मे प्रवेश करते हैं और पौर सुन्दरियाँ अपना सुध-बुध खोकर इस प्रकार अनिमष नेत्र से उनके रूप को देखने लगती हैं जैसे समस्त-इन्द्रियाँ उनके नेत्र म ही प्रविष्ट हो गई हैं।[4]

यहाँ नगर सुन्दरियो के अनुराग का चित्रण अनुभवगत होने के कारण मोह चपलता, हर्ष इत्यादि भावो का आभास ही व्यग्य हो रहा है।

भावोदय —

जहाँ किसी व्यभिचारी भाव का उदयावस्था ही चवणास्पद बन वहा भावोदय व्यग्य होता है। भावोदय मे भाव की उत्पत्ति मात्र का ही वणन किया जाता है उस उत्पन्न भाव को देर तक ठहरने का अवसर दना चाहिए। "अपने तप म विघ्न उपस्थित करने वाले कामदेव पर शिव को इतना अधिक क्रोध आया कि उनका भौहो के मध्य वाला नेत्र जो अदृश्य था अचानक खुल गया और उसम से सहसा अग्नि-ज्वालाए निकल पडी।"

यहा 'अमर्ष' भावोदय व्यग्य हो रहा है।

भावशान्ति—

जहाँ कोई प्रशान्त व्यभिचारी रूप चित्तवृत्ति का प्रशम हो जाता है वहाँ भाव-शान्ति या भावप्रशम व्यग्य होता है। उस चित्तवृत्ति का आरम्भ होने ही नाश होना चाहिए तभी उसमे चमत्कार आयगा इसलिए पण्डितराज जगन्नाथ कहते हैं— उत्पत्तिकालावच्छिन्नभाव का नाश, सहृदय चमत्कारी होने से 'भाव प्रशम' कहलाता है।[5]

---

१ कु०स० ७।५६ २ कु०स० ७।६१
३ कु०स० ७।६२ ४ कु०स० ७।६४
५ रसग० पृ० १००

भावप्रशम की सुन्दर व्यंजना रति विलाप में हुई है। शिव के विनाश से कामदेव के भस्मीभूत हो जाने के फलस्वरूप, अत्यन्त दुःखित हो रति प्राणोत्सर्ग के लिए उद्यत होती है किन्तु जैसे अकस्मात् बरसने वाली वर्षा का प्रथम बूँद सूखते हुए तालाब की व्याकुल मछलियों को जीवन प्रदान कर देता है वैसे ही अचानक सुनाई पड़ी वाली आकाशवाणी प्राणत्याग के लिए तत्पर रति पर यह कृपा करती है कि, थोड़े ही दिनों के पश्चात् तुम्हारा पति से पुनर्मिलन होगा। यह सुनकर रति किंचित आश्वस्त होती है।

यहाँ शोकभाव की शान्ति का वर्णन किया गया है। शिव जी के साथ पार्वती का विवाह निश्चित हो जाने के उपरान्त मैना अपनी पुत्री के स्नेह में इतना अधीर हो जाती है कि उनके नेत्र अश्रु परिपूरित हो जाते हैं परन्तु अरुन्धती उन्हें अनेक भर्ता के गुण सुनाकर धैर्यावलम्ब कराती है।

यहाँ दुःखभाव की शान्ति की व्यंजना हुई है।

भाव-सन्धि—

आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार जहाँ दो भावों की सन्धि ही चमत्कार बनती है—वहाँ भाव सन्धि व्यंग्य होता है।

ब्रह्मचारी के वेश में उपस्थित भगवान् शङ्कर पार्वती को शिव जी की निन्दा सुनाते हैं किन्तु बाद में जब वे अपना यथार्थ रूप प्रकट करते हैं तो उन्हें देखकर वे स्तब्ध हो उठती हैं। उनके शरीर में स्वेद प्रस्रवण होने लगता है और आगे चलने के लिए उठे हुए पैर, वहीं स्तम्भित हो जाते हैं। जिस प्रकार मार्ग में पर्वत के आ जाने पर नदी की धारा न आगे बढ़ पाती है और न पीछे ही जा पाती है, उसी प्रकार शैलाधिराजतनया न अपसरित हो पाती है और न ही खड़ी रह पाती है।[3]

यहाँ 'सम्भ्रम' और 'उत्कण्ठा' इन दो भावों की सन्धि व्यंग्य हो रहा है।

रघुवंश

भाव-व्यंग्य — रघुवंश में भाव व्यंग्य के अनेक रमणीय स्थल प्राप्त होते हैं। प्रथम सर्ग में महाराज दिलीप अपनी रानी सहित पुत्र प्राप्ति की प्रबल आकांक्षा से वशिष्ठ ऋषि के आश्रम की ओर प्रस्थान करते हैं। वहाँ पहुँचकर राजा दिलीप और मगध राजकुमारी सुदक्षिणा गुरु के चरण स्पर्श कर प्रणाम करते हैं और विनम्रता-पूर्वक कहते हैं — हे भगवन्! आपकी अनुकम्पा से राज्य में सब प्रकार का सुख

---

१ कु० स० ४।४०   २ कु०स० ६।९२

३ कु० स० ५।५८

ऐश्वर्य विद्यमान है।[१] आप मन्त्रों के रचयिता हैं। आपके मन्त्र इतने शक्तिशाली हैं कि मुझे बाण चलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।[२] हे यज्ञकर्ता मुनि! आप जब विधिवत् अग्नि में हवि छोड़ते हैं तो आपकी आहुतियाँ अनावृष्टि से सूखे हुए धान के खेतों पर जल वर्षण करने लगती हैं।[३] हे ऋषि! आपके ब्रह्मतेज के प्रभाव से मेरी प्रजा सौ वर्ष तक जीवित रहती है, निर्भय तथा ईति इत्यादि विपत्तियों से निःशङ्क रहती है। ब्रह्मा पुत्र जब आप ही हमारे साक्षात् कुलगुरु हैं तो हमारी सम्पदाएँ क्या न निरापद रहेंगी।[४] किन्तु सन्तानहीन होने के कारण मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। इसलिए हे प्रभो! अब कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे मुझे पुत्र रत्न की प्राप्ति हो सके और मैं पितृऋण से मुक्त हो जाऊँ, क्योंकि इक्ष्वाकुवंश के राजाओं की समस्त कठिनाइयाँ आपकी कृपा से ही सर्वदा दूर होती रही हैं।[५]

यहाँ मुनिविषयकरति की सुन्दर व्यंजना हुई है। राजा आश्रय है, ऋषि वशिष्ठ आलम्बन, पुत्र प्राप्ति की आकांक्षा उद्दीपन विभाव है। वशिष्ठ के गौरव तथा महिमा का कथन अनुभाव है तथा चिन्ता, मोह, दैन्य, विषाद, इत्यादि व्यभिचारी भाव से मुनिविषयकरति की सम्पन्न व्यंजना हो रही है।

देव-विषयक रति की बड़ी ही सुन्दर व्यंजना दिलीप गौ-सेवा के प्रसंग में हुई है। वशिष्ठ की आज्ञा से महाराज दिलीप अपनी पत्नी सहित बड़ी श्रद्धापूर्वक नन्दिनी गौ की सेवा में संलग्न हो जाते हैं। प्रातःकाल उठकर महारानी सुदक्षिणा पुष्प माला चन्दन इत्यादि से नन्दिनी की अर्चना करती हैं और यशोधनी राजा दिलीप नन्दिनी को लेकर वन के लिए चल पड़ते हैं।[६] विख्यात सम्राट् होते हुए भी महाराज नन्दिनी की सेवा निमित्त समस्त राजश्री चिह्नों का त्याग कर देते हैं। वन में वे नन्दिनी को हरी हरी घास खिलाते हैं, शरीर को खुजलाते हैं, कीड़े-मकोड़ों से उसकी रक्षा करते हैं और स्वेच्छापूर्वक जिधर भी वह जाना चाहती है उधर जाने देते हैं।[७] जब वह खड़ी होती है, तो राजा भी खड़े हो जाते हैं। चलती है तो वे भी चल पड़ते हैं, बैठती है तो वे भी बैठ जाते हैं और जल पीने की इच्छा करती है तो राजा भी जल-पान करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक क्षण छाया के समान राजा उसका

---

१ रघुवंश १।६०
२ रघुवंश १।६१
३ वही, १।६२
४ वही, १।६४
५ वही १।७२
६ वही, २।१
७ वही, २।५

अनुसरण करते हैं।[1] दिन भर वन में नन्दिनी की सेवा करते हुए सन्ध्या समय महाराज दिलीप वसिष्ठ ऋषि के यज्ञ, श्राद्ध तथा आतिथ्य इत्यादि धार्मिक कार्यों की सम्पादिका नन्दिनी के पीछे-पीछे आश्रम की ओर प्रत्यावर्तित होते हैं।[2] आश्रम के द्वार पर पहुँचते ही, महारानी सुदक्षिणा अत्यन्त भाव भक्ति से हाथ में अक्षतादि सामग्रियों से, नन्दिनी की अर्चना कर प्रदक्षिणा करती है और प्रणाम कर उसके विशाल शृङ्गों के मध्य में चन्दन इत्यादि इस प्रकार लगाती है मानो वह पुत्र कामना सिद्धि का द्वार हो।[3] नन्दिनी वत्सोन्मुखी होने पर भी राजा की सपर्या को ग्रहण करने के लिए खड़ी हो जाती है और नन्दिनी की इस अनुकम्पा को देखकर सुदक्षिणा तथा दिलीप बड़े प्रसन्न हो जाते हैं। तत्पश्चात् वसिष्ठ तथा अरुन्धती की चरण वन्दना कर दिलीप पुनः गौ की सेवा में तत्पर हो जाते हैं। पत्नी सहित राजा रात्रि में बड़ी देर तक नन्दिनी की सेवा करते रहते हैं, जब वह सो जाती है तो वे दोनों भी शयन करने चले जाते हैं और प्रातःकाल वह ज्योंही सोकर उठती है त्योंही वह दोनों भी निद्रा त्याग कर देते हैं। इस प्रकार महाराज दिलीप गौ सेवा करते हुए कठोर व्रत का पालन करते हैं।

यहाँ दिलीप तथा सुदक्षिणा आश्रय हैं—नन्दिनी आलम्बन। गौ के पीछे-पीछे वन जाना, उसकी सेवा करना तथा विधिपूर्वक अर्चना करना इत्यादि अनुभाव हैं। हर्ष मोह इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं। इस प्रकार वत्सात्मा नन्दिनी के प्रति राजा की रति की गम्भीर व्यञ्जना हो रही है।

पंचम सर्ग में रघु की दानवृत्ति के प्रसङ्ग में मुनि विषयक रति की व्यञ्जना दर्शनीय है। वरतन्तु के शिष्य कौत्स अपनी शिक्षा समाप्त कर गुरु दक्षिणा के लिए चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ माँगने रघु के पास जाते हैं। उन्हें देखते ही चक्रवर्ती सम्राट रघु ने सम्मानपूर्वक उनका आतिथ्य सत्कार किया है और सुन्दर आसन पर बैठाते हैं। तत्पश्चात् विनम्रतापूर्वक बद्धाञ्जलि होकर कहते हैं—जिस प्रकार सूर्य की किरणें अन्धकार से सुप्त सम्पूर्ण विश्व को जगा देती हैं उसी प्रकार ज्ञान की ज्योति से आपको चैतन्य करने वाले ऋषिवर मन्त्रद्रष्टा आपके गुरु कुशल से तो हैं न।[6] उन्होंने मन, वाणी तथा बुद्धि से जो लगातार तप करना प्रारम्भ किया था और जिसे देखकर इन्द्र भी सशङ्क हो उठा था—वह तप तो सफलतापूर्वक चल रहा

---

१ रघुवंश २।६ | २ रघुवंश २।१५
३ वही २।२१ | ४ वही २।२२
५ वही, २।२४ | ६ वही, ५।८

है।[1] हे द्विजवर ! जिन वृक्षों को उन्होंने पुत्रवत् पाला था—वे तो सुरक्षित हैं न ?[2] हरिणियों के छोटे-छोटे बच्चे तो कुशल से हैं, जिन्हें ऋषिगण स्नेह से खिलाते हैं और उन्हें एकत्र की हुई कुशा खाने को देते हैं। हाँ वे नदियों के जल तो सुरक्षित हैं जिसमें आप लोग प्रतिदिन स्नान, सन्ध्या तर्पणादि सम्पन्न करते हैं और जिसके तटों पर आप लोग राजा का षष्ठांश समझकर अन्न रख छोड़ते हैं।[4] तिन्नी के जिस अन्न तथा फलों को, जिससे आप लोग आतिथ्य सत्कार करते हैं और जो आप लोगों के शरीर का साधन हैं—वन्य पशु आदि तो नहीं भक्षण कर पाते हैं।[5] हे द्विजश्रेष्ठ ! क्या ऋषि ने आपकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर गृहस्थ बनने की आज्ञा दे दी है।[6] आप जैसे पूजनीय महात्मा के आगमन मात्र से ही मेरे हृदय को शान्ति नहीं मिली है इसलिए आप मुझे कुछ सेवा करने की आज्ञा दीजिये।[7] हे महात्मा ! यह तो बताइये कि आप स्वच्छा से आये हैं अथवा गुरु आज्ञा से आकर मुझे कृतार्थ किया है।[8]

यहाँ रघु आश्रय हैं तथा कौत्स आलम्बन हैं। गुरु के विषय में कुशल प्रश्न पूछना अनुभाव है। हर्ष चिन्ता व्यभिचारीभाव हैं।

दशम सर्ग में विष्णु-स्तुति के प्रसङ्ग में देव विषयक रति का बड़ा ही मनमोहक स्वरूप प्राप्त होता है। रावण के भीषण अत्याचार से उत्पीड़ित देवगण भगवान् विष्णु की शरण में वैसे ही जाते हैं जैसे धूप से व्याकुल पथिक छाया वाले वृक्ष की शरण में जाता है।[9] देवताओं ने देखा कि विष्णु भगवान् योग निद्रा से जागकर शेष शय्या पर लेटे हुए हैं।[10] बस उचित अवसर जानकर देव उन्हें प्रणाम करते हैं और स्तुति करते हुए भावपूर्ण स्वर से कहते हैं—विश्व का सृजन, पालन एवं संहार करने वाले देव ! आपको नमन प्रणाम है।[11] जैसे एक स्वादवाला वर्षा का जल विभिन्न देशों में वर्षण करने के कारण भिन्न स्वाद वाला बन जाता है। उसी प्रकार आप निर्विकार होते हुए भी सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों के द्वारा अनेक रूप धारण कर लेते हैं।[12] हे भगवन् ! आप कितने बड़े हैं, यह कोई नहीं माप सकता

१ रघुवंश ५।५ | २ रघुवंश ५।६
३ वही, ५।७ | ४ वही, ५।८
५ वही, ५।९ | ६ वही, ५।१०
७ वही ५।१० | ८ वही, ५।११
९ वही, १०।५ | १० वही, १०।७
११ वही, १०।१७ | १२ वही, १०।१७

किन्तु आपने सब लोकों को मार लिया है, निस्पृह होते हुए भी आप सब की इच्छा पूर्ण करने वाले हैं, अजय होते हुए भी सब को जय करने वाले हैं, अव्यक्त होते हुए भी इस स्थूल संसार को व्यक्त करने वाले हैं।[1] हे देव! विद्वानों का कथन है कि आप सर्वान्तर्यामी होते हुए भी अगम्य हैं, निष्काम होते हुए भी तपस्वी हैं, दयालु होते हुए भी नित्यानन्द स्वरूप हैं, पुराण कहलाते हुए भी नवीन हैं। आप सर्वज्ञ हैं किन्तु आपको कोई नहीं जानता, आप सर्वयोनि के कारण हैं किन्तु आपको किसी ने नहीं उत्पन्न किया, आप सब के प्रभु हैं किन्तु आपका कोई प्रभु नहीं है, आप एक रूप होते हुए भी संसार के सब रूप धारण करने वाले हैं (एकोऽहं बहुस्याम)।[2] हे स्वामी! विद्वानों का कथन है कि सामवेद के सातों प्रकार के गानों में आपके ही श्रेष्ठ गुणों के गान विद्यमान हैं। आप ही सातों समुद्रों के जल में निवास करते हैं, सातों प्रकार की अग्नि आपके ही मुख हैं और सप्तलोक आपके ही आश्रित हैं।[3] आपके चतुर्मुखों से धर्मादि काम तथा मोक्ष का फल देने वाला ज्ञान प्रादुर्भूत हुआ है और चारों युगों के विभाजन का समय भी आपने ही निर्धारित किया है।[4] और चतुर्थ वर्णों वाला यह संसार भी आप द्वारा निर्मित है। योगीजन प्राणायाम के द्वारा आपके ही ज्योति स्वरूप का सदैव अन्वेषण करते हैं।[5] हे भगवन्! आप अजन्मा होते हुए भी जन्म ग्रहण करते हैं, निरीह होकर भी शत्रु संहारकर्ता हैं, योगनिद्रा में लीन रहते हुए भी नित्य प्रबुद्ध हैं। आपका यथार्थ स्वरूप कौन जान सकता है।[6] हे देव! आप जन्म-जन्मान्तर के बन्धन से मोक्ष देने वाले हैं। आपके स्मरण मात्र से ही प्राणी पवित्र हो जाता है फिर जो आपका दर्शन, चरण-स्पर्श तथा वाणी श्रवण कर ले उसके पुण्य का तो कहना ही क्या है?[7] हे भगवन्! विश्व की कोई भी वस्तु आपके लिए अप्राप्य नहीं है फिर भी आप जो जन्म ग्रहण करते हैं तथा कर्मरत होते हैं उसका एक मात्र यही उद्देश्य है कि आप संसार पर अनुग्रह करना चाहते हैं।[8] आपकी महिमा की प्रशंसा करके जो हम चुप हो गए उसका यह कारण नहीं है कि हम आपके सब गुण बखान कर डालें अपितु हम श्रान्त हो गए हैं और आगे बखान की हममें शक्ति नहीं है।[9] देवताओं की इस भावभीनी स्तुति को सुनकर विष्णु भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं।[10]

---

१ रघुवंश १०।१८ — २ रघुवंश १०।२०
३ वही १०।२१ — ४ वही १०।२२
५ वही १०।२३ — ६ वही, १०।२४
७ वही, १०।२८ — ८ वही, १०।३१
९ वही १०।३२ — १० वही, १०।३३

यहाँ देवतागण आश्रय हैं तथा विष्णु आलम्बन। देवताओं का विष्णु के पास गमन, उनके गुणों की प्रशंसा, महिमा का कथन इत्यादि अनुभाव हैं।

मुनिविषयक रति का स्थल एकादश सर्ग में प्राप्त होता है। राजा जनक के निमन्त्रण को स्वीकार करके मुनि विश्वामित्र राम-लक्ष्मण सहित जनकपुरी पहुँचते हैं। यह समाचार सुनकर जनक जो बड़ी प्रीतिपूर्वक उनका सत्कार करने के लिए पूजा की सामग्री को लेकर ऐसे चल पड़ते हैं मानो धर्म के साथ अर्थ और काम भी चले जा रहे हों।[१]

यहाँ जनक आश्रय हैं तथा विश्वामित्र आलम्बन। उनके आगमन का समाचार श्रवण उद्दीपन विभाव है तथा सामग्री सहित सत्कार के लिए जाना अनुभाव है।

राजा विषयक रति की सुन्दर व्यंजना रघुवंश के अनेक स्थलों पर प्राप्त होती है। इच्छा से भी अधिक दान देने वाले महाराज रघु की अतिशय दानशीलता से राम-राम गद्गद कौत्स उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं' हे राजन्! धर्मात्मा राजाओं के लिए पृथ्वी यदि उनकी इच्छानुसार धन प्रदान करे तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं किन्तु तुम्हारा प्रभाव तो वास्तव में अचिन्तनीय है क्योंकि तुमने स्वर्ग से अभिलषित धन को प्राप्त कर लिया।[२] हे राजन्! भौतिक वस्तुओं के लिए आशीर्वाद देना व्यर्थ है, क्योंकि वे सभी तुम्हें उपलब्ध हैं फिर भी तुम्हें यह आशीर्वाद देता हूँ कि जिस प्रकार तुम्हारे पिता को तुम्हारे समान श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त हुआ, उसी प्रकार तुम्हें भी तुम्हारे जैसा प्रतापी पुत्र प्राप्त हो।[४]

यहाँ कौत्स आश्रय हैं तथा रघु आलम्बन। अतिशय दान देना उद्दीपन है। रघु के माहात्म्य का कथन तथा आशीर्वाद देना अनुभाव है हर्ष, व्यभिचारी भाव है।

इसी प्रकार महाराज अज के शर-संघात से ही तत्काल देवता का रूप धारण करने वाला गन्धर्व राजकुमार प्रियम्वद, अज की प्रशंसा करता हुआ कहता है—हे देव! मैं गन्धर्वराज प्रियदर्शन का पुत्र प्रियम्वद हूँ। मतङ्ग ऋषि के शाप के कारण मैं गज बन गया था।[५] मेरा उद्धार केवल आप के द्वारा ही सम्भव होगा'[६] ऋषि

---

१ रघुवंश ११।३५
२ रघुवंश ५।३२
३ वही, ५।३३
४ वही, ५।३४
५ वही ५।५३
६ वही, ५।५५

द्वारा यह उपाय जानने पर मैं अपने शाप के प्रथम दिन से ही आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आज बड़े भाग्य से आपने आकर मुझे शाप मुक्त किया है अतः इस उपकार के बदले यदि मैं आपका कोई इष्ट न करूँ तो मेरा यह शरीर लाना व्यर्थ है।[1] हे राजन्! मेरे पास यह सम्मोहन नामक गन्धर्वास्त्र है, कृपा कर आप इसे ग्रहण कीजिए। इसका प्रयोग करने पर आप अपने शत्रुओं को बिना हिंसा किए विजित कर सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आप किंचित लज्जित हो रहे हैं किन्तु इसमें लज्जा की कोई विषय नहीं है क्योंकि बाण संचालन आपने मुझ मारने की दृष्टि से नहीं अपितु दया करने के लिए ही किया था इसलिए हे राजन्! मेरी यह प्रार्थना आप स्वीकार करें।[2]

यहाँ प्रियम्वद आश्रय तथा राजा आलम्बन है। राजा द्वारा बाण संचालन उद्दीपन विभाव है। प्रियम्वद द्वारा राजा के गुणों की प्रशंसा करना सम्मोहन अस्त्र देना इत्यादि अनुभाव हैं तथा हर्ष संचारी भाव है।

पुत्र विषयक रति का सुन्दर व्यंजना रघुवंश के अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है। कठोर व्रत के परिणाम स्वरूप महाराज दिलीप को पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है। तेजस्वी पुत्र को पाकर दिलीप और सुदक्षिणा उसी प्रकार हर्ष विभोर हो उठते हैं जैसे कार्तिकेय को पाकर शङ्कर-पार्वती।[3] राजा और रानी समान रूप से रघु को प्यार करते हैं। जब बालक रघु कुछ बड़े होने हैं तो धाय उन्हें जो कुछ सिखाती है उसे वे अपनी तोतली बोली में बोलने लगते हैं उसकी अंगुली पकड़कर चलने लगते हैं सिर झुकाकर गुरुजनों को प्रणाम करने लगते हैं।[4] पुत्र की ये बाल लीलाएँ देखकर राजा दिलीप हर्ष से फूले नहीं समाते और प्रसन्न होकर उनको अङ्क में उठा लेते हैं। पुत्र के गात्र का स्पर्श पाकर राजा के शरीर में मानो अमृत की वर्षा होने लगती है और वे नेत्रनिमीलित कर बहुत देर तक (पुत्र सुख) उसका आनन्द लेने रह जाते हैं।[5]

यहाँ दिलीप आश्रय है तथा पुत्र रघु आलम्बन। पुत्र की तोतली वाणी प्रणाम करना चलना इत्यादि उद्दीपन विभाव है। पुत्र को अङ्क में उठा लेना, प्यार करना, आनन्दित होना, नेत्र बन्द कर लेना, इत्यादि अनुभाव है। हर्ष, आवेग, मोह इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं।

---

१ रघुवंश ५।५६ २ रघुवंश ५।५७

३ वही, ५।५८ ४ वही ३।२३

५ वही, ३।२६

महाराज रघु अपने पुत्र अज से बहुत स्नेह करते थे। अज के युवक हो जाने पर रघु अपनी कुल परम्परानुसार पुत्र को राज्यभार सौंपकर वन जाने के लिए उद्यत होते हैं तो पिता से अत्यधिक स्नेह करने वाले अज उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रार्थना करते हैं कि, हे भगवन्! आप मुझे अकेला छोड़कर न जाइये।[1] पुत्रवत्सल राजा रघु, अज के नेत्र में अश्रुकणों को देखकर ठहर जाते हैं किन्तु जिस प्रकार सर्प अपनी केंचुली छोड़कर पुनः उसे ग्रहण नहीं करता उसी प्रकार निःस्पृह त्यक्त राजलक्ष्मी को पुनः स्वीकार नहीं करते।[2]

यहाँ आश्रय रघु है। अज के द्वारा विनम्र प्रार्थना और अश्रु-प्रवाह उद्दीपन विभाव है, रघु द्वारा उन्हें छोड़कर न जाना अनुभाव है। विषाद, मोह, संचारी भाव हैं।

महाराज दशरथ भी बड़े पुत्र स्नेही हैं। एक क्षण के लिये भी पुत्रों का वियोग उनके लिए असह्य हो जाता था। जब विश्वामित्र अपने यज्ञ रक्षार्थ राम-लक्ष्मण की याचना करने के लिए राजा के पास आते हैं, तो दशरथ बड़े असमंजस में पड़ जाते हैं। राजा विद्वानों के इतने भक्त थे कि पुत्रों को मुनि के साथ भेजना स्वीकार कर लेते हैं। पिता के वचनों को साकार बनाने के लिए मुनि के साथ जाते समय राम-लक्ष्मण पिता के चरणों का स्पर्श करने के लिए झुकते हैं तो दशरथ जी के नेत्रों से बलात् ही अश्रु प्रवाहित होने लगता है और वे इतना अधिक रोने लगते हैं कि उन दोनों राजकुमारों की चूड़ाएँ आर्द्र हो जाती हैं।[3]

यहाँ दशरथ आश्रय हैं तथा राम लक्ष्मण आलम्बन। चरणों पर झुकना उद्दीपन है और अश्रु विमोचन अनुभाव। विषाद मोह सचारीभाव हैं।

चौदह वर्ष के कठोर वनवास का समय व्यतीत करने के उपरान्त राम सीता और लक्ष्मण सहित राजधानी अयोध्या में पहुँचते हैं और आकर बड़े आदर से कौशल्या तथा सुमित्रादि माताओं की चरण वन्दना करते हैं। पुत्रों को देखते ही दोनों माताओं के नेत्र छलछला उठते हैं। नेत्र वाष्पपूरित हो जाने के कारण वे उन्हें देख तो नहीं पाती किन्तु स्पर्श से इन्हें पहचान जाती हैं।[4] पुत्रों के जो अङ्गों का राक्षसों के शस्त्रों से क्षत विक्षत हो गये हैं, उन्हें वे इस प्रकार स्पर्श करने

---

१ रघुवंश ८।१२
२ रघुवंश ८।१३
३ वही ११।२
४ वही, ११।४
५ वही, १४।२

दिलीप की एकनिष्ठ भक्ति स प्रसन्न नन्दिना मायावी सिंह का वेश बदलकर, प्राणत्याग के लिए तत्पर राजा दिलीप से कहती है—हे पुत्र उठो ! मैंने अपनी माया शक्ति द्वारा तुम्हारी परीक्षा ली थी। वशिष्ठ ऋषि के महत्प्रभाव से यमराज भी मेरा सर्वनाश नहीं कर सकता फिर अन्य हिंसक पशुओं की क्या शक्ति है। हे मधु ! गुरु के प्रति भक्ति तथा मुझपर अतिशय अनुकम्पा के कारण मैं तुमसे अत्यधिक प्रसन्न हूँ। अत अपना अभिलषित वर माँगो। तुम मुझे दूध देने वाली साधारण गौ न समझो अपितु प्रसन्न हो जाने पर इच्छित फल देने वाली साक्षात् कामधेनु समझो।[१]

यहाँ भी नृप विषयक रति की व्यञ्जना हुई है। नन्दिनी आश्रय है दिलीप आलम्बन। उनकी अतिशय सेवा उद्दीपन विभाव है। नन्दिनी का प्रसन्न हो जाना, वर प्रदान करना अनुभाव तथा हर्ष सचारीभाव है। यज्ञ (सफलतापूर्वक) पूर्ण हो जाने पर स्नान कर महर्षि विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को प्रसन्न हो आशीर्वाद देते हैं जिनके काकपक्ष प्रणाम करते समय शिथिल हो गये थे ऋषि कुशा से छिली हुई अपनी हथेली उनके सिर पर रख कर उन पर अपना वश स्नेह दर्शाते हैं।[२]

यहाँ विश्वामित्र आश्रय, राम-लक्ष्मण आलम्बन हैं, उनके वीरतापूर्ण साहस से यज्ञ समाप्त हो जाना उद्दीपन विभाव है। विश्वामित्र द्वारा उन्हें आशीर्वाद देना, अनुभाव तथा हर्ष मोह, सचारी भाव हैं।

प्राधान्येन व्यग्य व्यभिचारीभावों की बड़ी सुन्दर व्यञ्जना रघुवंश के अनेक स्थलों पर प्राप्त होती है। राजा दिलीप बडे दुःखी होकर वशिष्ठ से कहते हैं— हे देव ! आपकी महती कृपा होते हुए भी, आपकी इस वधू के गर्भ से मेरे समान तेजस्वी पुत्र नहीं हुआ अत रत्नों के उत्पत्ति करने वाली तथा द्वीपों तक फैली हुई यह पृथ्वी मुझे अच्छी नहीं लगती। अब मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे पश्चात् मुझे कोई पिण्ड देने वाला भी नहीं रहेगा। इसी दुःख के कारण हमारे पितर मेरे द्वारा प्रदत्त श्राद्ध के अन्न को भर पेट न खाकर उसको भाग आगे के लिए एकत्र करने लग गये हैं। जब मैं तर्पण के लिए जल दान देने लगता हूँ तो मेरे पितर यह विचार कर दुःख से उच्छवासें लेने लगते हैं, कि इसके पश्चात् हम जल कौन देगा ?[४]

यहाँ विषाद चिन्ता भाव व्यग्य हो रहा है।

१ रघुवंश २।६१ २ रघुवंश २।६३
३ वही, २।६३ ४ वही १।६७

विषाद—रात्रि में जब कोई प्रदीप लेकर चलता है, वो जो जो राजभवन पीछे छूटते जाते हैं, वे अन्धकार में मुस्कर धुंधले पड़ते जाते हैं उसी प्रकार जिन-जिन राजाओं को छोड़कर इन्दुमती आगे बढ़ती जाती है उन उन राजाओं की मुखकान्ति विवर्ण (उदास) होती जाती है। (वन में) राजा दिलीप के हाथ में धनुष देखकर भी हरिणियाँ भयभीत नहीं होती, अपितु उनके सुन्दर शरीर को वे इस प्रकार अनिमेष नेत्रों से देखती रह जाती हैं, मानो नेत्रों के बड़े होने का फल उन्हें प्राप्त हो गया हो।[1]

यहाँ औत्सुक्य भाव का व्यञ्जना हो रहा है।

सिंह का वध करने के लिए दिलीप ने ज्यों ही तरकश से बाण निकालना चाहा त्यों ही उनकी अंगुलियाँ बाणों से चिपक गयी और चित्रलिखित के समान निश्चेष्ट हो गए।[2]

यहाँ जड़ता भाव का व्यञ्जना हो रहा है।

(इन्दुमती द्वारा अज को पति रूप में वरण कर लेने के पश्चात्) अन्य राजा प्रातःकाल के तारों के समान अपना उदास मुँह लेकर अपने-अपने निवेश में यह कहते हुए लौट गए कि जब इन्दुमती ही नहीं मिलती तो हम लोगों का यह रूप और वेष किस काम का।[3]

यहाँ ग्लानि भाव का व्यञ्जना हो रहा है।

चिन्ताभाव—

जैसे—महाराज जनक ने जब एक ओर श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न बालक राम के सुकोमल गात को देखा और दूसरी ओर कठोर धनुष पर दृष्टिपात किया जिसे कि बड़े-बड़े वीर योद्धा भी न झुका सके थे, तो उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि मैंने कन्या के विवाह के लिए धनुषभङ्ग का प्रस्ताव व्यर्थ में ही रखा।[4]

मार्ग में जब दशरथ जी ने क्षत्रियों का नाश करने वाले परशुराम को अचानक आते हुए देखा तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई क्योंकि उनके पुत्र अभी बालक ही थे।[5]

---

१ रघुवंश २।११
२ रघुवंश २।३१
३ वही, ७।२
४ वही, ११।३८
५ वही, ११।६७

(सीता द्वारा दी गयी) मणि को हृदय से लगाकर राम सुध-बुध खोकर मग्न हो गए और उनके नेत्र बन्द हो गए। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा मानो स्तन के स्पर्श को छोडकर सीता जी ही साक्षात् उनके हृदय से आ लगी हो।[१]

'यहाँ विवाध' भाव की व्यजना हो रही है।

स्मृति भाव—

जैसे—(राम सीता से कहते हैं) आज मुझे वे दिन स्मरण हो आए हैं जब मेघ गर्जन से भयभीत होकर तुम मुझसे लिपट जाती थी। हे सीते! तुम नही समझ सकती कि माल्यवान् पर्वत पर ये पावस के दिन मैंने कितने कष्ट से व्यतीत किए हैं।[२]

देखो! यह वही स्थान है, तुम्हें ढूढते हुए मैंने पृथ्वी पर पडा हुआ तुम्हारा नूपुर देखा था। इस समय ध्वनिविहीन यह इस प्रकार पडा हुआ है, मानो तुम्हारे चरणो से वियुक्त हो जाने के कारण दुःख से शान्त हो गया हो।[३]

वे दिन मेरे स्मृति-पटल पर साकार हो रहे हैं जब मैं एकान्त मे बेंत की झोपडी मे तुम्हारे अङ्क मे सिर रखकर सोया करता था और गोदावरी का शीतल पवन मेरे मृगया परिखेद का अपनोदन करता था।[४]

आज बहुत दिनो के पश्चात् पचवटी को देखकर मेरा हृदय कमल खिल उठा है। वह देखो! मृग ऊपर सिर उठाकर विमान को देख रहे हैं। यही पर तुमने घटाम्बु से आम्रवृक्षो को सवर्धित किया था।[५]

अज द्वारा सम्मोहन अस्त्र छोडने ही शत्रु राजाओ की सेना ऐसी मूढ हो गयी कि धनुष सचालन मे भी असमर्थ हो गयी। उनके शिरस्त्राण (पगडियाँ) बिखर गए और वह ध्वज स्तम्भ के सहारे सो गए।[६]

यहाँ 'निद्रा' भाव की व्यजना हो रही है।

सुन्दर अज को देखने के लिए नगर की सुन्दरियाँ शीघ्रता से अपने-अपने कार्यों को छोडकर अपने अपने भवनो के झरोखो की ओर दौड पडी।[७]

यहाँ 'चपलता' भाव की व्यजना हो रही है।

---

१ रघुवंश १२।६५
२ रघुवंश १३।२८
३ वही, १३।२३
४ वही, १३।३५
५ वही, १३।३४
६ वही, ७।६२
७ वही, ७।५

हर्ष-भाव—

जैसे कार्तिकेय समान पुत्र को प्राप्त कर शङ्कर-पार्वती को अत्यन्त प्रसन्नता हुई था, जयन्त को प्राप्त कर इन्द्र और शची को प्रसन्नता हुई थी, वैसे ही तजस्वी पुत्र को प्राप्त कर दिलीप और सुदक्षिणा को अपार प्रसन्नता हुई।[१]

राजा दिलीप, सिंह से प्रार्थना करते हुए कहते हैं—हे भाई! तुम भी दूसरे के सेवक और बड़े यत्न से इस देवदारु की रक्षा कर रहे हो। अत तुम यह भली प्रकार समझ सकते हो कि सेवक को जिसकी रक्षा का भार सौंपा जाय यदि वह नष्ट हो जाए और सेवक जीवित रह जाए तो वह अपने स्वामी के समक्ष किस मुँह से जायेगा। यदि तुम किसी कारण से मेरे ऊपर अनुकम्पा करना चाहते हो तो मेरे यश शरीर की रक्षा करो। हे भाई देखो! परस्पर वार्तालाप होने के कारण हम मित्र हो गए हैं इसलिए तुम अपने मित्र की प्रार्थना को न ठुकराओ।[२]

यहाँ 'दैन्य' भाव की व्यंजना हो रही है।

(सिंह दिलीप से बड़े गर्व से कहता है) हे राजन्! तुम मुझे मारने का प्रयत्न मत करो क्योंकि मुझ पर जो भी अस्त्र चलाओगे वह व्यर्थ हो जायगा। देखो! तीव्र वेग वायु वृक्षों का उन्मूलन तो कर सकता है किन्तु पर्वत का कुछ भी अनर्थ नहीं कर सकता। (मुझे तुम साधारण सिंह न समझना) मैं सर्वशक्तिशाली शङ्कर जी का कृपापात्र सेवक कुम्भोदर नाम का गण हूँ और शिव के शक्तिशालीगण निकुम्भ का मित्र हूँ।[३]

यहाँ गर्व भाव की व्यंजना हो रही है।

(स्वयम्वर में) अज इन्दुमती को समक्ष देखकर शङ्कित हो उठे कि यह मेरा वरण करेगी अथवा नहीं।[४]

यहाँ 'शङ्का' भाव की व्यञ्जना हो रही है।

(अज इन्दुमती का विवाह सम्पन्न हो जाने पर) जिस प्रकार ताल के निर्मल जल के अन्दर भीषण घड़ियाल रहते हैं उसी प्रकार ऊपर से प्रसन्न दिखाई पड़ने वाले राजा मन ही मन क्षुब्ध हो जाते हैं और वे सब विदर्भराज की आज्ञा लेकर उनके द्वारा प्रदत्त सामग्री को भेंट के ब्याज से लौटाकर अपने-अपने देश लौट जाते हैं।[५]

---

१ रघुवंश २।२३ — २ रघुवंश २।५८
३ वही, २।३५ — ४ वही ३।६८
५ वही, ७।३१

यहाँ 'अमर्ष भाव की व्यंजना हो रही है।

राजाओं ने मिलकर पहले ही यह निश्चय कर लिया था कि, जब अज इन्दुमती को लेकर (अपनी राजधानी की ओर) चलें तो उनसे सुन्दरी इन्दुमती को छीन लिया जाए इसलिए वे अज का मार्ग घेरकर बीच में ही ठहर गये।[१]

यहाँ 'मति' भाव की व्यंजना हो रही है।

मार्ग में डटे हुए राजा तो पहले ही से अज से जले बैठे थे क्योंकि कौशलपति रघु ने दिग्विजय में उनका सम्पूर्ण धन अधिकृत कर लिया था इसलिए इस समय वे यह (अपमान) न सह सके कि रघु-पुत्र अज हम लोगों के समक्ष स्त्रीरत्न इन्दुमती को लेकर चला जाए।[२]

यहाँ 'असूया' भाव की व्यंजना हो रही है।

(प्रिय पत्नी पर प्रजा द्वारा लगाए गए कलङ्क को सुनकर) राम मन में यह विचार करने लगे कि अब दो ही उपाय हैं। या तो प्रजा की बात अनसुनी कर उपेक्षा कर दूँ, या निर्दोष सीता का त्याग कर दूँ। उस समय उनकी चित्तवृत्ति इस प्रकार दोलायमान हो रही थी कि वे कुछ निश्चय न कर सके कि क्या करणीय है क्या अकरणीय।[३]

यहाँ 'वितर्क' भाव की व्यंजना हो रही है।

जब कभी (अग्निमित्र के) उसके साथ बहुत देर तक सम्भोग करने के कारण स्त्रियाँ निश्चेष्ट हो जाती थीं तो वे उसके (अग्निवर्ण के) वक्षस्थल पर लगे चन्दन को पोंछती हुई इस प्रकार सो जाती थीं मानो वे सम्भोग का वह कण्ठ-सूत्र नामक आसन सजा रही हों जिसमें स्त्रियाँ अपने प्रियतम के वक्षस्थल से लिपट जाती हैं।[४]

यहाँ 'आलस्य' और 'श्रम' भाव की व्यंजना हो रही है।

मलय पर्वत से आये हुए दक्षिण पवन का स्पर्श प्राप्त कर आमों में बौर छा गये जिन्हें देखकर प्रेमिकाएँ कामोन्मत्त होकर राजा (अग्निमित्र) से रूठना छोड़कर विरह में व्याकुल हो उन्हें स्वयं खोजने लगीं।[५]

यहाँ 'उन्माद' भाव की व्यंजना हो रही है।

---

१ रघुवंश ७।३४ २ रघुवंश ७।३१
३ वही, ७।३४ ४ वही, १६।३२
५ वही, १६।३४

अहर्निश भोग विलास में लीन रहने से राजा को क्षयरोग हो गया और वह धीरे धीरे बढ़ने लगा।[1]

यहाँ व्याधि भाव की व्यंजना हो रही है।

अनेक रानियों के होते हुए भी राजा पुत्र का मुँह न देख सका और वैद्यों के अनेक प्रयत्नों के पश्चात् भी—वायु के समक्ष प्रदीप के समान राजा को रोग से न बचाया जा सका।

यहाँ मरण भाव की व्यंजना हो रही है।

रसाभास—

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि अनुभयनिष्ठ रति ही आभास की प्रयोजक बनती है। इन्दुमती-परिणय का महत्ता आरम्भ में देश देशान्तर के नृप स्वयम्वर में सम्मिलित होने के लिए विदर्भ देश में आते हैं। स्वयम्वर में उन्हें सादर सुन्दर मंचों पर बैठाया जाता है। इसी समय ब्रह्मा की अपूर्व रचना राजकुमारी इन्दुमती स्वयम्वर मण्डप में प्रवेश करती है। इन्दुमती के असाधारण सौन्दर्य को देखकर सभी राजा टकटकी लगाकर देखने लगते हैं और इस प्रकार उसकी ओर आकर्षित हो जाते हैं, मानो मन तो इन्दुमती के पास चला गया केवल शरीर मात्र ही मञ्च पर रह गया हो।[3] अपने-अपने प्रेम को प्रकट करने के लिए राजागण नेत्र सञ्चालनादि अनेक प्रकार की शृङ्गारिक चेष्टाएँ करने लगते हैं।[4] कोई राजा हाथ में कमल लेकर उसके नाल को पकड़कर कन्धे से लटकी हुई तथा भुजबन्ध में उलझी हुई, रत्नों की माला उठाकर पुनः उसे कण्ठ में ठीक से पहनने लगता है।[5] दूसरा राजा भौंह नचाता हुआ पैर की अँगुलियों को मोड़कर उन अँगुलियों से स्वर्ण पादपीठ पर कुछ लिखने लगता है।[6] एक राजा सिंहासन के वामपार्श्व में मुड़ा टेढ़ा समान आसीन मित्र से इस प्रकार वार्तालाप करने लगता है कि उसका बायाँ कन्धा उन्नमित हो जाता है और कण्ठ की माला भी पीठ पर लटक पड़ती है।[7] एक दूसरा युवा नृप नखों के अग्रभाग से—जो प्रिया के नितम्बों पर चिह्न बनाने के लिए ही बने थे केतकी की पंखुड़ियों को नोचने लगता है जो किसी विलासी स्त्री के शृङ्गार के लिए

---

१ रघुवंश १९।४८ — २ रघुवंश १९।५३

३ वही, ६।११ — ४ वही, ६।१२

५ वही ६।१३ — ६ वही, ६।१४

७ वही, ६।१५

कर्णभूषण रूप मे कटे हुए थे।[1] एक अन्य राजा अपनी हथेली मे जो कमल के समान रक्त था तथा जिस पर ध्वजा की रेखाएँ अङ्कित थी, पाँसा उछालने लगता है। पुन एक दूसरा राजा हाथ से अपने किरीट को ही बार बार ठीक करने लगता है।[2]

यहाँ विभिन्न राजागण आश्रय हैं। इन्दुमती आलम्बन है उसका अपूर्व सौन्दर्य उद्दीपन विभाव है। राजाओं द्वारा की गयी विभिन्न शृङ्गारिक चेष्टाएँ अनुभाव हैं। चपलता, आवेग, औत्सुक्य, मोह, व्यभिचारीभाव हैं। यहाँ राजाओं की रति उभयनिष्ठ न होने के कारण, रत्याभास की व्यंजना करा रहा है।

पिता द्वारा चौदह वर्ष के वनवास की कठोर आज्ञा देने के पश्चात् राम, सीता लक्ष्मण सहित वन की ओर प्रस्थान करते हैं और अनेक स्थलों पर भ्रमण करते हुए अन्त मे पञ्चवटी मे निवास करते हैं। इसी समय मदनातुर रावण की भगिनी सूर्पणखा, राम के सौन्दर्य पर मोहित होकर अपना सुवेश बनाकर उनके पास जाती है।[८] पहले वह अपने कुल का परिचय देती है, पुन सीता के समक्ष कहती है, 'हे राम! मैं तुम्हें अपना पति मानती हूँ' क्योंकि कामासक्त स्त्रियो को करणीयाकरणीय का ज्ञान नही रहता।[3] कामासक्त सूर्पणखा की बात सुनकर वृषस्कन्ध राम कहते हैं—मेरा विवाह हो गया है तू मेरे छोटे भाई के पास जा।[4] वह शीघ्रता से लक्ष्मण के पास जाती है और लक्ष्मण कहते हैं— तू मेरे माता के समान है अत मैं तुमसे विवाह नही कर सकता।[5]

यहाँ राम आलम्बन तथा सूर्पणखा आश्रय है। राम का सुन्दर रूप उद्दीपन विभाव। सूर्पणखा द्वारा राम के पास जाना, अपने कुल का परिचय देना, उन्हे पति कहना, पुन लक्ष्मण के पास जाना अनुभाव है। यहाँ सूर्पणखा की रति भी अनुभयनिष्ठ होने के कारण रत्याभास की प्रयोजक बन रही है।

(अतिथि के अपूर्व सौन्दर्य को देखकर)—जैसे शरद् ऋतु की निर्मल रात्रि के तारे ध्रुव के चारों ओर घूमते हैं वैसे ही नगर की स्त्रियो के प्रेम भरे नेत्र भी अतिथि पर लट्टू हो गए।[6]

यहाँ वर्णित नगरस्त्रियो के रति वर्णन मे, अनुभयगत होने के कारण शृङ्गाराभास की व्यंजना हो रही है।

---

१ रघुवंश १६।१६ | २ रघुवंश १६।१७
३ वही, १२।३२ | ४ वही, १२।३४
५ वही, १७।३५

भावाभास—

स्वयम्वर में इन्दुमती द्वारा वरमाला प्राप्त करने के पश्चात् महाराज अज अपनी प्रिया इन्दुमती के साथ विवाह-मण्डप की ओर प्रस्थान करते हैं। ज्योंही वे राजमार्ग से जाने लगते हैं नगर की सुन्दरियाँ अज के अनुपम रूप का दर्शन करने के लिए अपने अपने भवनों के गवाक्ष की ओर दौड़ पड़ती हैं। इस शीघ्रता में एक स्त्री का केशपाश खुल जाता है और उसे बाँधने की उसे सुध नहीं रहती और वह उसे हाथ में पकड़े ही वातायन की ओर चल पड़ती है।[1] एक दूसरी स्त्री पैर में महावर लगवा रही थी कि सहसा चल पड़ती है और इस प्रकार गवाक्ष तक पैरों के छाप की पंक्ति सी बन जाती है।[2] एक तीसरी स्त्री दक्षिण नेत्र में अञ्जन लगाकर वाम नेत्र में बिना लगाए ही चल पड़ती है।[3] एक स्त्री अभी मणिमाल गूथ ही रही थी कि अज को देखने के लिए गवाक्ष की ओर भागती है जिससे सारी मणियाँ इतस्ततः बिखर जाती हैं। इस प्रकार गवाक्षों में उत्सुकता से झाँकती हुई सुन्दरियों के मुख भौंरों से युक्त कमल के समान प्रतीत हो रहे थे।[5]

वे तन्मय होकर इस प्रकार निर्निमेष नेत्रों से अज को देखने लगती हैं मानो सभी इन्द्रियाँ नेत्रों में ही समाहित हो गयी हों। वे परस्पर वार्तालाप करती हुई कहती हैं—स्वयम्वर में जिस प्रकार लक्ष्मी ने नारायण का वरण किया था उस प्रकार इन्दुमती ने अज का वरण किया। हे सखी! स्वयम्वर के बिना ऐसा योग्य वर कैसे मिल सकता है। यदि परस्पर स्पृहणीय शोभा वाले ब्रह्मा इस सुन्दर जोड़े का मिलन न कराते तो इन दोनों को सुन्दर बनाने का प्रयत्न व्यर्थ हो जाता।[7] हे आली! ये दोनों पूर्वजन्म में रति-कामदेव अवश्य रहे होंगे तभी सहस्रों नृपों के मध्य इन्दुमती ने अज को प्राप्त किया है क्योंकि मन जन्मान्तर के सम्बन्धों को भली प्रकार पहचान ही लेता है।[8]

(कुछ इसी प्रकार का वर्णन कुमारसम्भव में राजमार्ग से जाते हुए शङ्कर के प्रसङ्ग में भी हुआ है)

यहाँ चपलता आवेग हर्ष मोह औत्सुक्य जड़ता, इत्यादि भावों की व्यञ्जना हो रही है किन्तु इनका वर्णन उभयगत न होने के कारण ये भावाभास का कारण बन रहे हैं।

---

१ रघुवंश ७।६ २ रघुवंश ७।७
३ वही ७।८ ४ वही ७।१०
५ वही, ७।११ ६ वही ७।१२
७ वही ७।१४ ८ वही, ७।१५

भावोदय—

(सिंह द्वारा गौ को दबोच लिए जाने पर) सिंह के समान गति वाले, शरणागतरक्षक और बलपूर्वक शत्रुओं के संहारकर्ता राजा दिलीप क्रोध से लाल हो जाते हैं और वे समझते हैं कि सिंह मेरी शरण में आई हुई गौ को मारकर मेरा अपमान करना चाहता है, बस शीघ्र ही वे उस सिंह को मारने के लिए तूणीर से बाण निकालने को हाथ उठाते हैं। (जडीभूत हो जाने के कारण) मनुवंश के शिरोमणि महाराज दिलीप अपनी दशा पर पहले ही विस्मय में पड़े थे किन्तु जब वह सिंह मनुष्य की वाणी में बोलने लगता है तो वे और आश्चर्य चकित हो उठते हैं।[१]

यहां 'विस्मय' भावोदय की व्यंजना हो रही है। किन्तु तूणीर में हाथ के बद्ध हो जाने से राजा निकट स्थित अपराधी पर प्रहार न कर सकने के कारण क्रोधाभिभूत हो उठते हैं, और अपने तेज से अन्दर ही अन्दर इस प्रकार जलने लगते हैं जैसे मन्त्रविधि से अवरुद्ध सर्प।[२]

यहां 'अमर्ष' भाव का उदय हो रहा है। अयोध्यानिवासियों को कुश लव के गायनकौशल पर इतना आश्चर्य नहीं होता, जितना जब वे दोनों (बालक) राम द्वारा प्रीतिपूर्वक दिये गये दान को नहीं ग्रहण करते, तब वे विस्मित हो उठते हैं।

यहां 'विस्मय' भावोदय की व्यंजना हो रही है।

एक बार तृणबिन्दु नामक ऋषि तप कर रहे थे। तपस्या से भयभीत हो इन्द्र उनका तप-भङ्ग करने के लिए हरिणी नामक अप्सरा को भेजते हैं। जैसे प्रलयकाल की लहर समुद्रतट को नष्ट कर देता है वैसे ही ऋषि का तप भङ्ग करने के लिए अप्सरा वहां जाती है। उसे देखते ही ऋषि क्रोधित हो उठते हैं और उसे यह शाप देते हैं—कि तू संसार में मनुष्य की स्त्री हो जा।[३]

यहां अमर्ष भावोदय की व्यंजना हो रही है।

भावशान्ति—

सिंह की गर्वोक्तियों को सुनकर महाराज दिलीप को जब यह विश्वास हो गया कि भगवान् शङ्कर के प्रभाव के कारण ही मैं शर-संचालन न कर सका, तो उनके हृदय की आत्मग्लानि कम हो जाती है।[४]

---

१ रघुवंश २।३३ २ रघुवंश २।३०
३ वही, ८।८० ४ वही, २।४१

यहाँ ग्लानि भाव की शांति की व्यंजना हो रही है ।

इन्दुमती को समक्ष देखकर अज का उत्पन्न हुई शङ्का शात्र हा दक्षिण भुजा के फडकने के कारण दूर हो जाती है ।[1]

यहाँ 'शङ्का' भाव-शान्ति की व्यंजना हो रही है । विवाहोपरान्त पुत्र वधुआ सहित महाराज दशरथ अपना राजधाना का आर लौट पडत हैं किन्तु माग म प्रताप-वायु तथा अपशकुन घटित होते देखकर व चिन्तित हो उठत हैं और अपने गुरु से शान्ति का उपाय पूछत हैं । गुरुजी कहते हैं—महाराज चिन्ता की कोई बात नहीं है—इसका परिणाम अच्छा होगा । यह सुनकर दशरथ जी को कुछ शान्ति होता [illegible] ।[2]

यहा चिन्ता —भाव 'शान्ति' की व्यंजना हा रही है ।

पृथ्वी द्वारा सीता का समाहित कर लिए जान पर राम पृथ्वी पर बडे क्रोधित हो उठते हैं और पृथ्वी म सीता का वापस प्राप्त करन क लिए अपना शर सधान करत हैं । उसा समय ब्रह्मा जी जा सर्वविद थ, आकर राम का समझात हैं और उनक क्रोध को शान्त करत हैं ।[3]

यहाँ 'अमर्ष' भाव की शान्ति की व्यंजना है ।

कुमुदनाग द्वारा आभूषण हरण कर लिए जान के पश्चात् कुश सहसा क्रोधित हो उठत हैं और उसका वध करन क लिए गरुडास्त्र चढात हैं किन्तु शान्त्र हा कुमुद हाथ म आभूषण लेकर जल क अन्दर से निकल आता है और उस देखकर कुश धनुष पर स गरुडास्त्र उतार लत हैं ।[4]

यहाँ भी अमर्ष भाव शान्ति का व्यंजना हा रहा है ।

(तृणबिन्दु नामक ऋषि तप म विघ्न उत्पन्न करने क कारण हरिणी नामक अप्सरा का शाप दत हैं) शाप सुनत हा अप्सरा घबरा उठती है और ऋषि से करुण याचना करता हुई कहती है—हे भगवन् ! मैं परवश हूँ मैंन पराधीन वृत्ति के कारण हा प्रतिकूलाचरण किया है इसलिए मुझे क्षमा करें । यह सुनकर ऋषि का क्रोध शान्त हाता है और कहत हैं—जब तक तुम्हे स्वर्गीय पुष्प नहीं दिखाई पडेंगे तब तक तुम्हे पृथ्वी पर हा रहना पडेगा ।[5]

यहाँ 'अमर्ष भाव शान्ति की व्यंजना है ।

---

१ रघुवंश ६।६८   २ रघुवंश ११।६२

३ वही, १५।८५   ४ वही १६।८०

५ वही, ८।८१

राम दु खी कैकेयी से कहते हैं—माँ ! तुम्हारे पुण्यप्रताप से ही पिताजी उस सत्य से स्खलित नही हुए जिससे स्वग प्राप्त होता है। यदि तुम उनसे वरदान न माँगती तो, उनकी वर देने की प्रतिज्ञा असत्य हो जाती। यह सुनकर कैकेयी के मन की आत्मग्लानि कुछ कम हो गयी है।[१]

यहाँ लज्जा भाव की शान्ति की व्यजना हो रही है।

भावसंधि—

राजधानी अयोध्या को लौटते हुए राजा दशरथ परशुराम के आने का समाचार सुनते हैं। कवि कहता है—जैसे कण्ठ के हार और सर्प दोनो मे रहने वाली मणि आनन्द भी देती है और भय भी, वैसे ही अपने पुत्र और परशुराम दोनो म आए 'राम' नाम से उन्हे भय हुआ आनन्द भी।[२]

यहाँ 'भय और 'हर्ष' दो भावो की संधि का वर्णन होने से भावसंधि है।

मेघदूत—

भाव-व्यग्य—

मेघदूत म यत्र-तत्र व्यग्य भावो के सुन्दर तथा मार्मिक चित्र प्राप्त होते हैं। कुबेर की कठोर आज्ञा से निर्वासित यक्ष को प्रिया की मधुर स्मृति व्याकुल बनाये दे रही है। प्रिया के बिना जो यक्ष एक क्षण भी न रह पाता था अब वही प्रेमी प्रिया से बहुत दूर दशान्तर मे स्थित है। अभी वह अपने शाप की अवधि व्यतीत ही कर रहा था कि आषाढ के प्रथम दिन उमडते मेघ को देखकर चकित रह जाता है। मन म प्रेम उद्दीप्त करने वाले उन मेघखण्डो को देखकर, वह अपने अश्रुओ को रोककर ज्यो का त्यो बहुत देर तक खडा हो रह गया।[३]

यहा 'जडता' भाव व्यग्य हो रहा है।

मेघ को देखते ही यक्ष विचार करता है कि आषाढ के पश्चात् श्रावण आयेगा और उस समय मेरी प्रिय पत्नी मुझे समीप न पाकर निश्चय ही जीवन का त्याग कर देगी। इसलिए उसने सोचा कि अपनी प्रिया को धैर्यावलम्ब कराने के लिए तथा उसकी प्राण रक्षा के लिए मैं क्यो न इन बादलो के हाथ ही अपना कुशल समाचार भेज दूँ।[४]

---

१ रघुवंश १४।१६   २ रघुवंश ११।६८
३ पू० मे० ३   ४ पू० मे० ४

यहाँ 'चिन्ता' एवं 'वितर्क' भावों की व्यंजना हो रही है। यक्ष वियोग में इतना असहाय हो गया है कि उसकी विवेकशीलता पूर्णतया नष्ट हो गयी है। प्रिया को सन्देश प्रेषण की उत्सुकता एवं व्यग्रता में उसे चेतन और अचेतन का भी ध्यान नहीं रहता। प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु तथा औत्सुक्यादपरिगणयन् इन दोनों वाक्यों में 'भ्रम एवं आवेग' भाव की व्यंजना हो रही है।[१]

यक्ष मेघ से कहता है—हे मेघ! संसार के सन्तप्त प्राणियों के एकमात्र तुम ही तो शरण हो, इसलिए हे प्यारे! कुबेर के क्रोध से विश्लेषित और प्रिया से दूर स्थित मुझ वियुक्त का सन्देश तुम मेरी प्रिया के पास पहुँचा दो।[२]

यहाँ 'दैन्य' भाव व्यक्त हो रहा है।

'औत्सुक्य भाव' का चित्रण बड़े मार्मिक ढङ्ग से व्यक्त हुआ है—जब तुम वायु पर पैर रखकर ऊपर चढ़ोगे तब पथिक वनिताएँ अपनी पलकें उठा उठाकर बड़े विश्वास के साथ आश्वासन पाकर तुम्हारी ओर एकटक देखेंगी, क्योंकि मुझ जैसे पराधीन को छोड़कर कौन ऐसा निर्दय है जो तुम्हें देखकर वियोग में व्याकुल अपनी पत्नी से मिलने के लिए उतावला न हो उठे।

'हे मेघ! लहलहे खेतों से आपूर्ण जब इन पहाड़ों में तुम उड़ोगे तो तब तुम्हारा उड़ना देखकर सिद्धों की भोलीभाली स्त्रियाँ किंचित चकित होकर आँखें फाड़ फाड़कर तुम्हारी ओर देखती हुई सोचेंगी कि कहीं पहाड़ की चोटी को ही तो पवन नहीं उड़ाए लिए जा रहा है।[४]

यहाँ 'विस्मय' भाव की व्यंजना हो रही है।

यक्ष मेघ से कहता है ऊपर ही ऊपर जल बिन्दुओं को ग्रहण करने वाले चातकों को देखने वाली तथा श्रेणियों में उड़ते हुए बगुलों को गिनने वाली सिद्धों की प्यारी स्त्रियाँ जब तुम्हारा गर्जन सुनकर शीघ्रता से घबराकर अपने प्रिय के कण्ठ से लग जायेंगी, तब वे सिद्धगण तुम्हारा बड़ा भला मनायेंगे।[५]

यहाँ 'त्रास' भाव की व्यंजना हो रही है।

विषादभाव—'हे मेघ! देखो निर्विन्ध्या नदी की धारा तुम्हारी वियोग-वेणी के समान कृश हो गयी होगी और तट के पादपगण पत्तों के झड़ झड़कर गिरने से

---

१ पू० मे० ५ २ पू० मे० ७
३ वही, ४ वही, १४
५ वही, २३

उसका रङ्ग भी पीला पड गया होगा । इस प्रकार वह अपनी वियोग दशा दिखाकर यह बता रही होगी कि हे मेघ ! मैं तुम्हारे वियोग मे कृश होती जा रही हूँ ।[१]

अमर्ष भाव—जैसे कनखल मे हिमालय से अवतरित हुई गङ्गा जी मिलेंगी जिन्होंने सोपान बनाकर सगर के पुत्रो को स्वर्ग पहुँचा दिया था । उनकी स्वच्छ फेन युक्त धारा ऐसी प्रतीत होती है मानो वह फेन की हँसी से खिल्ली उडाती हुई पार्वती जी का निरादर कर रही हो जो ईर्ष्या से गङ्गाजी पर भौंह तरेर रही हो और गङ्गाजी के लहर रूपी हाथ चन्द्रमा पर रखकर शिवजी के केशग्रहण कर पार्वती को यह बता रही हो कि तुमसे बढकर चन्द्रमा मेरी मुट्ठी मे है ।[२]

हे मेघ ! (अलकापुरी मे) प्रेमी लोग चञ्चल हाथो से अपनी प्रियाओ के कामवश गाँठ खोल देने से ढीले पडे रेशमी वस्त्र हटाने से लज्जा से वे इतनी अभिभूत हो जाती हैं कि (कुछ पाकर) मुट्ठी म गुलाल भरकर ही, जगमगाते हुए रत्नदीपो पर फेंकने लगती हैं, और उनकी सारी चेष्टाएँ व्यर्थ हो जाती हैं ।[३]

'यहाँ 'लज्जा' भाव की व्यजना हो रही है ।

हे मेघ ! वायु के झोके से मेघखण्ड सतमजिले भवन के ऊर्ध्वभाग म प्रवेश कर वहाँ के चित्रो को अपने नव जलकणो से नष्ट कर फिर शङ्कित सा होकर धूम्र के समान शीघ्रता से निकलने मे चतुर, टुकडे-टुकडे होकर झरोखो से निकल भागते हैं ।[४]

यहाँ 'चपलता' भाव की व्यजना हो रही है ।

यह अपने गृह म स्थित क्रीडापर्वत का वर्णन करता हुआ मेघ से कहता है—(मेरे घर के) उस (बावली) के किनारे सुन्दर इन्द्रनीलमणियो से निर्मित शिखर वाला तथा सुनहरे केले से वेष्टित होने के कारण देखने म सुन्दर क्रीडा पर्वत है ।

हे मेघ ! वह पर्वत मेरी गृहिणी को अत्यन्त प्रिय है इसलिए चमकती हुई बिजली वाले तुम्हे देखकर मेरा चित्त उदास हो जाता है और मैं उस पर्वत का स्मरण करने लगता हूँ ।[५]

---

१ पू० मे० ३१ २ पू० मे० ५४
३ उ० मे० ७ ४ उ० मे० ७
५ उ० १७

हे मघ ! (मेरे घर म) वृक्षा के मध्य म कुछ कुछ पके हुए बाँस की काति वाली मणिया से निचले भाग मे जटित एव स्फटिक से निर्मित ऊपरी भाग वाली एक सुनहरी बैठने का यष्टि है। जिसम कगना की झङ्कार से मनाहर तालियो से मेरी प्रियतमा द्वारा नर्तित तुम्हारा मयूर मित्र दिन के अवसान मे आकर बैठा करता है।

यहाँ स्मृति' भाव की व्यजना हो रहा है।

हृ सज्जन ! हृदय म निहित इन लक्षणा से द्वार के दोनो ओर चित्रित शङ्ख और पद्म देखकर तुम मेरे भवन को पहचान लोगे जो इस समय मेरे वियोग मे निश्चय ही कान्तिहीन हो गया होगा क्याकि सूय के अस्त हो जाने पर कमल अपनी शोभा को निश्चय ही नही धारण करता।[२]

यहाँ विषाद भाव की व्यजना हुई है।

ऋतुसहार

भावादि व्यग्य—

ऋतुसहार म स्वतत्र रूप म भावा का वणन प्राय नही मिलता। कही-कही ऋतुआ तथा अनुभावो क माध्यम स ही उनकी अभिव्यक्ति दिखाई पडती है। अतएव हम उन्हें केवल भाव मात्र ही कह सक्त हैं। कुछ भावो का वणन इस प्रकार है—

दूर देश म गए हुए जिन प्रमिया का हृदय अपनी प्रमिकाओ के वियोग की तपन से झुलस गया है, वे *याभा क भाका स उठी हुई धूल के बवण्डरा वाला तथा* कडी धूप का लपटा से तपी हुई धरती की ओर देखत हैं तो उनसे देखा नही जाता।[३]

यहाँ दैन्य' भाव का व्यजना हा रही है।

हर्ष भाव—

जैस वन म चारा छोर विकसित कदम्ब के पुष्प ऐसे लग रह हैं माना वर्षा के नवीन जल से गर्मी दूर हो जाने स सारा वन मग्न हो उठा हा। पवन मे झूलती हुई शाखाआ का देखकर ऐसा लगता है माना पूरा जगत अपन हाथ मटका-मटका कर नृत्य कर रहा हो और कतकी की उज्वल कलियों को देखकर ऐसा लगता है माना सारा वन खिलखिला कर हँस रहा हो।[४]

---

१ उ० मे० १९ २ उ० मे० २०
३ ऋ० स० १।१० ४ ऋ० स० २।२४

देशान्तर गए हुए लोगों की स्त्रियाँ अपने बिम्बफल जैसे लाल और नई कोपलों जैसे कोमल होठों पर अपनी कमल जैसी आँखों से अश्रु विमोचन करती हुई, अपनी माला, आभूषण, तेल, उबटनादि—सब कुछ त्याग कर गाल पर हाथ रख कर बैठी हैं।[१]

यहाँ 'विषाद' भाव की व्यंजना हो रही है।

पति के विदेश गमन करने के बाद मृगनयनी स्त्रियाँ जब सूखे हुए मार्ग को देखती हैं, तो देशान्तरस्थित अपने दुःखी पतियों की प्रतीक्षा करती हुई यह सोचती हैं कि जब हमारे पति आयेंगे तो हम इस प्रकार बातें करेंगे, इस प्रकार उनमे रूठेंगे।[२]

यहाँ 'चिन्ता', 'वितर्क' भावों की व्यंजना हो रही है।

बादलों का घोर गर्जन सुनकर और विद्युत की कड़क से चौंकी हुई स्त्रियाँ, सोते समय अपने अपराधी पति से भी लिपट जाती हैं।[३]

यहाँ 'त्रास' भाव की व्यंजना हो रही है।

(वसन्त मे) काम से स्त्रियाँ अलसा जाती हैं, मद से उनका बोलना और चलना भी कठिन हो जाता है और उनके टेढ़े भ्रूविक्षेप बड़े तीक्ष्ण लगते हैं।[४]

यहाँ 'आलस्य' भाव की व्यंजना हो रही है।

रसाभास—

वर्षाऋतु का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—देखो! सदैव मीठी बोली बोलने वाले, गर्जन करते हुए बादलों की शोभा पर तन्मय होकर उठने वाले, अपने पङ्ख खोलकर फैलाने से सुन्दर लगने वाले, ये मयूरों के झुण्ड, शीघ्रता से अपनी प्यारी मोरनियों को गले लगाते हुए तथा उनका चुम्बन करते हुए, आज नृत्य कर रहे हैं।

यहाँ मोर आश्रय और मोरनियाँ आलम्बन हैं। मोरों द्वारा अपनी मोरनियों का आलिङ्गन करना, चुम्बन करना अनुभाव हैं तथा हर्ष-चपलता व्यभिचारीभाव हैं। इस प्रकार यहाँ मोरों की रति का वर्णन हुआ है किन्तु काव्यशास्त्र में तिर्यगादि के रति का वर्णन वर्जित होने से यहाँ रसाभास की व्यंजना हो रही है।

---

१ ऋ० सं० २।१२ | २ ऋ० सं० ४।१० |
३, वही २।११ | ४ वही, ६।१३ |
५ वही, २।६

१ ऋ० सं० २।१२
२ ऋ० सं० ४।१०
३, वही २।११
४ वही, ६।१३
५ वही, २।६

चतुर्थ अध्याय

अलंकार व्यंग्य

अलङ्कारों का प्राधान्य स्थिति रहने पर अलङ्कार ध्वनि काव्य होता है। जैसा कि अभी कहा गया है कि ध्वनि-सम्प्रदाय के अनुसार सारा अलङ्कार प्रपंच काव्य के वाच्य वाचक मात्र पर ही आश्रित है। यथालङ्कार अभिधान के विभिन्न प्रकार हैं। ध्वनिवादी आचार्यों ने जिस प्रकार काव्य में तीन गुण मानकर गुणों की संख्या निर्धारित की है, उसी प्रकार अलङ्कारों की संख्या वा वे कोई भी सीमा निर्धारित न कर सके क्योंकि अलङ्कार तो केवल उक्ति के प्रकार हैं। अतएव जितनी ही कथन शैलियाँ सम्भव हो सकती हैं उतने ही अलङ्कार प्रकार भी सम्भव हैं।[1]

ध्वनिवादी अलङ्कारों को काव्य में चारुत्व-हेतु मानता है,[2] किन्तु यह चारुत्व हेतुता किस प्रकार से काव्य में उत्पन्न होती है इस सम्बन्ध में इन आचार्यों का अपना स्वतन्त्र मत है। इनके अनुसार तो समस्त सौंदर्य व्यंग्य-व्यञ्जकता में निहित है। अतएव काव्य में जो भी चारुत्व स्थानीय होंगे वे सभी या तो व्यंग्य की या व्यञ्जकता की चारुता के हेतु होंगे तथा ध्वनि सौन्दर्य का अभिवृद्धि करेंगे। काव्य की आत्मा व्यंग्य है, और शरीर है व्यञ्जक शब्द और अर्थ। परमार्थतः जिस प्रकार मानव के अङ्गों में धारण किये गये अलङ्कार पूरे अङ्गी की शोभा का वर्धन करते हैं, ठीक उसी प्रकार काव्य में अङ्गभूत रस व्यंग्य के ही सौन्दर्य का वर्धन करते हैं।[3]

प्राचीन भामह इत्यादि अलङ्कारिकों ने जिन अलङ्कारों का विवेचन किया है उन्हीं अलङ्कारों को अत्यन्त प्रधान रूप देकर ध्वनिकार ने उन्हें उच्चता के आसन पर अधिष्ठित किया है। ध्वनिकार का यह प्रयत्न सर्वथा श्लाघनीय एवं नवीन है। जो उपमादि वाच्यालंकार कटक कुण्डल स्थानीय होने के कारण काव्य के शरीर-रूप

---

१ काव्यालंकार १४८ २ ध्व० पृ० २२३

३ का० प्र० ८।७

भा नहीं वन सकते थे, वे ही व्यग्यता को प्राप्त कर काव्यात्मा बन परमसौन्दय को प्राप्त हो जाते हैं।[1] वाच्यार्थ को सज्जित करने के कारण जिन उपमादि अलङ्कारों को अलङ्कारता सवत्र सिद्ध होती है, व ही उपमादि अलङ्कार ध्वनि कोटि (व्यग्य रूप) में आ जाने के कारण अलङ्कार न होकर अलङ्काय बन जाते हैं। अलङ्काय रूप वतमान रहन पर भी उन्हे नामत (ब्राह्मणश्रमणन्यायेन) अलङ्कार ही कहा जाता है।

वा सलक्ष्यक्रमध्वनि के अन्तगत अलङ्कार-ध्वनि तथा वस्तु ध्वनि आता है, क्योंकि इनमे वाच्य एव व्यग्य का क्रम लक्षित होना रहता है। इन दोनों के पुन दो भेद किए गए हैं—शब्दशक्तिमूलअलङ्कार ध्वनि तथा अर्थशक्तिमूल अलङ्कार-ध्वनि। ध्वनिकार शब्द शक्ति-मूल मे केवल अलङ्कार व्यग्य को ही स्वीकार करते हैं, उनके अनुसार जहाँ वस्तु रूप अर्थान्तर की प्रतीति होगी—वह श्लेष का विषय होता है, वस्तु व्यग्य का नहीं।[2] किन्तु मम्मट शब्दशक्तिमूल के अन्तगत अलङ्कार ध्वनि तथा वस्तु ध्वनि दोनों मानते हैं। उनके अनुसार वस्तुव्यग्य का प्रकाशन होने पर जहाँ एक अर्थ का अभिधा द्वारा नियमन हो जाता है वहाँ दूसरा अर्थ व्यग्यमान होने से वस्तु ध्वनि का विषय बन जाता है।

कालिदास की काव्य कृतियो मे शब्द शक्ति मूल अलङ्कार-व्यग्य के स्थल विरल हैं। इनमे शाब्दिक चमत्कार के माध्यम से ही कवि अलङ्कारान्तर या वस्त्वन्तर की प्रतीति करवाता है। कालिदास इस प्रकार के चमत्कारवादी कवि नहीं हैं उनके काव्य म शब्दालङ्कारो का चमत्कार प्राय नहीं दिखाई पडता। रघुवश के नवमसग म उन्होने यद्यपि यमक का प्रयोग किया है किन्तु स्थल इतना सरस है कि अपनी प्रतिभा से कवि ने उस यमक के माध्यम से अपने काव्य की उत्तमता (ध्वनित्व) तथा सरसता को अक्षुण्ण बनाए रखा, अन्यथा यमक म काव्य निश्चय ही नीरस हो जाता।

अनुप्रास उनके काव्य में सहज रूप म ही आया है—प्रजा प्रजानाथ पितेव पासि। 'मनुष्य वाचा मनुवश केतु' इत्यादि। इसलिये उनके काव्य म शब्दशक्ति मूल अलङ्कार-ध्वनि का विवेचन नहीं किया जायेगा।

अर्थशक्तिमूलक-अलङ्कार—ध्वनि वहाँ होती है, जहाँ वाच्य अर्थ की व्यजना-शक्ति के द्वारा अलङ्कार-व्यग्य होता है।[3] अलङ्कार-ध्वनि तभी होगी, जब व्यग्य-

१ ध्व० २।२८ २ ध्व० पृ० २३५
३ ध्व० २।२५

अलङ्कार ही नागरभूत रहे—अर्थात् प्रधान रूप में स्थित रहें क्योंकि जैसे दीपक, आवृत्ति इत्यादि वाच्यभूत अलङ्कारों में उपमालङ्कार व्यंग्य होता है, किन्तु यहाँ उपमा प्रधान न होकर वाच्य रूपक आदि अलङ्कारों का उत्कर्षक होने के कारण गुणीभूत हो जाता है। व्यंग्य अलङ्कार यदि वाच्य अलङ्कार अथवा वस्तु के व्यंग्य रूप में रहेगा तो उसका गुणीभूत व्यंग्यता ही माना जायगा। इसलिए जहाँ अलङ्कार वाच्य का गुणीभाव न होकर प्राधान्येन स्थित रहता है, वहीं अलङ्कार-काव्य होता है।[1]

जैसा कि प्रथम अध्याय में कह चुके हैं कि अर्थशक्तिमूल-अनुरणन रूप व्यंग्य भी दो प्रकार का होता है—(१) कविप्रौढोक्तिमात्र निष्पन्न शरीर अथवा कविनिबद्ध वक्तृ प्रौढोक्तिनिष्पन्नशरीर (२) स्वतः सम्भवी।

मम्मट ने इनको अलग अलग मानकर अर्थशक्तिमूल के तीन भेद माने हैं। और उनके वस्तु एवं अलङ्कार दो प्रकार होने से छः भेद किये हैं।

कविप्रौढोक्तिसिद्ध वस्तु से अलङ्कार व्यंग्य—

कुमारसम्भव में पार्वती के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—चंचल शोभावाली लक्ष्मी बड़ी दुविधा में पड़ी रहती थी क्योंकि रात में जब वे चन्द्रमा में पहुँचती थीं तब उन्हें कमल का आनन्द नहीं मिलता था और दिन में जब कमल में पहुँचती थीं तब उन्हें रात चन्द्रमा का आनन्द नहीं मिल पाता था किन्तु जब से वे पार्वती के मुख में आ बसी हैं तब से उन्हें दोनों का आनन्द मिलने लगा है।[2]

यहाँ उपमानभूत कमल और चन्द्र की अपेक्षा पार्वती मुख के उत्कर्ष का कथन होने से व्यतिरेक अलङ्कार व्यंग्य है।

कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलङ्कार से अलङ्कार व्यंग्य—

पार्वती की तपस्या का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—जाड़े की उन रातों में जल के ऊपर पार्वती जी का मुँह मात्र दिखाई पड़ता है। जाड़े से उनके होंठ काँपते हैं और उनकी श्वास से कमल की गन्ध के समान जो सुगन्ध निकलती है उसकी सुगन्धि चारों ओर फैल जाती है। उस समय जल में पड़ी वे ऐसी लगती हैं मानो पाले से मारे हुए कमलों के जल जाने पर भी उनके मुख कमल ने उस सरोवर को कमलयुक्त बनाए रखा हो।[3] यहाँ पार्वती का मुख कमल, जल-कमलों की अपेक्षा श्रेष्ठ है यह अभिप्राय होने से व्यतिरेक अलङ्कार व्यंग्य हो रहा है।

---

१ ध्व० २।२७   २ कुमारसम्भव ५।४३

३ कुमारसम्भव ५।२७

स्वत सम्भवी अलङ्कार से अलङ्कार व्यग्य—

सुनन्दा अङ्गदेश के राजा का परिचय देती हुई कहती है (इन्होंने जिन राजाओ को युद्ध मे मार डाला) उनकी स्त्रिया ने अपने पतियो के शोक मे मोतिया के हार तो उतार फेंके, पर उनके स्तनो पर गिरती हुई आँसुओ की बूँदे बडी-बडी मोतियो के समान लगती हैं, उन्हे देखकर ऐसा लगता है, मानो शत्रुओ की स्त्रियों के कण्ठ से हार उतारकर उन्हे बिना डोरे वाला हार पहना दिया हो।[१]

यहाँ अश्रुबिन्दु तथा मुक्ताफलों में साम्य दिखलाकर फिर अतिशयोक्ति द्वारा उसमे अभेद प्रतिपादित कर बिना डोरे वाला हार पहना दिया हो 'इस कथन मे विभावना, विनोक्ति का निर्देश किया गया। इन अलङ्कारो से उत्प्रेक्षा अलङ्कार व्यग्य हो रहा है।

उपर्युक्त अलङ्कारो की व्यग्यता का उदाहरण केवल एक बानगी के ही रूप मे प्रस्तुत किया गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि महाकवि की कृतियों मे प्रधानेन व्यग्य अलङ्कारा के स्थल प्राय बहुत कम प्राप्त होते हैं क्याकि कालिदास अलङ्कार प्रेमी न होकर रस-भाव प्रेमी कवि ही हैं।

---

१ का० प्र० सू० १७४

पंचम अध्याय

वस्तु व्यङ्ग्य

कुमारसम्भव-कवि प्रौढोक्तिसिद्ध वस्तु से वस्तु व्यंग्य—

"प्रचण्ड किरणों वाला सूर्य भी उससे इतना डरता है कि उसके नगर पर वह केवल उतनी ही किरणें फैलाता है जिनसे बाग के कमल भर खिल उठें।'

यहाँ (तारकासुर के भय के कारण, तीक्ष्ण किरणों वाला सूर्य भी मन्दोष्ण होकर उसके नगर में प्रकट होता है—इस वस्तु की व्यंजना (श्लोकोक्त वस्तु से) हो रही है।

"चन्द्रमा पूरे महीने भर अपनी पूरी कला लेकर चमकता है केवल उस एक कला को छोड़ देता है जिसे शिव जी ने अपने मस्तक का मणि बना लिया है।'[2]

'चन्द्रमा सदैव कृष्णपक्ष में ही स्थित रहकर तारकासुर की सेवा करता है—इस वस्तु की व्यंजना हो रही है।"

'समुद्र भी उसके पास भेंट के योग्य रत्न भेजने के लिए तब तक जल के भीतर बाट जोहता रहता है जब तक वे बन न जाएँ।'

यहाँ 'समुद्र तारकासुर की प्रसन्नता तथा अभिरुचि का पूर्ण ध्यान रखता है, इस प्रकार समुद्र बड़ा ही स्वामिभक्त एवं धैर्यशील है" इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है।[3]

"आम की मंजरियाँ खा लेने से जिस कोकिल का कण्ठ मीठा हो गया था वह जब मीठे स्वर से कूक उठता था तो उसे सुनकर रूठी हुई स्त्रियाँ अपना रूठना भी भूल जाती थीं।"[4]

यहाँ 'कोयल की ध्वनि सुनकर स्त्रियाँ कामोन्मत्त हो उठीं' इस वस्तुरूपार्थ की व्यञ्जना हो रही है।

---

१ कुमारसम्भव २।३३
२ कुमारसम्भव २।३४
३ वही, २।३१
४ वही २।३२

आकाशवाणी पर विश्वास कर रति ने प्राण त्याग करने का विचार छोड दिया और कामदेव के मित्र वसन्त ने भी बहुत समझाकर ढाढस बँधाया।[१]

यहाँ रति तुम दुःखी मत हो, तुम्हारा प्रिय से समागम अवश्य होगा—इस वस्तु रूप की व्यजना हो रही है।

"पार्वती ने तपस्या हेतु अपनी कमर मे जो मूँज की मेखला बाँध रखी थी, वह इतनी चुभती थी कि वे प्रतिक्षण काँप उठती थी, तथा प्रथम बार पहनने से उनकी सारी कमर लाल पड गयी थी।"

यहा पार्वती का काँप उठना तथा कमर लाल पड जाना—इस कथन से, 'उनकी अतिशय शारीरिक कोमलता तथा सुकुमारता' व्यग्य हो रही है।[२]

"कमलिनी के समान अपने कोमल अङ्गो को इस प्रकार तपस्या से दिन-रात सुखाकर पार्वती ने कठोर शरीर वाले तपस्विया को भी लजा दिया।"

यहाँ 'बडे बडे तपस्वीगण भी पार्वती के समान कठोर तपस्या नही कर सकते' इस वस्तु की व्यजना हो रही है।[३]

'आपने जो दीर्घ श्वास लिया उससे मैं यह समझता हूँ कि आप योग्य पति पाने के लिए तपस्या कर रही हैं। आश्चर्य है कि आप जिसे चाहे, वही आपको न मिले क्योंकि मुझे तो ससार मे ऐसा कोई पुरुष नही दिखलाई पडता जिसे प्राप्त करने के लिए आपको इतनी कठोर तपस्या करनी पडे।"

यहाँ "आप जैसी सुन्दरी को पति पाने के लिए तपस्या नही करना चाहिए —अपितु पुरुष को ही आपको प्राप्त करने के लिए तपस्या करना चाहिये"—यह वस्तु रूप अर्थ व्यग्य हो रहा है।[४]

सप्तर्षिगण से हिमालय कहते हैं—आपने मेरे चल और अचल दोना शरीरा पर अलग अलग कृपा की है। मेरे शरीर को तो आपने अपना दास बना लिया है और मेरे अचल शरीर पर आपने अपने पवित्र चरण रख दिये हैं।"[५]

यहाँ पर 'आज मैं पूर्णरूपेण पवित्र हो गया' इस वस्तु की व्यजना हो रही है।

---

१ कुमारसम्भव ४।४५
२ कुमारसम्भव ५।१०
३ वही, ५।२४
४ वही, ५।५६
५ वही, ५।५८

स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य—

एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥ ६।८४

देवर्षिगण तथा पिता के समीप बैठी हुई पार्वती का चित्र खींचता हुआ कवि कहता है—जिस समय देवर्षिगण विवाह की बात कह रहे थे, उस समय पार्वती जी पिता के पास नीचा मुँह किए लीलाकमल के पत्ते गिन रही थीं।

ध्वनिवादी आचार्यों ने इस श्लोक को वस्तु ध्वनि का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण माना है। यहाँ पर पार्वती के लज्जारूप व्यभिचारीभाव की व्यंजना अर्थ सामर्थ्य से हो रही है। यदि कमलपत्रगणना तथा अधोमुखत्वरूप अनुभावों द्वारा लज्जारूप भाव की झटिति प्रतीति हो जाती तो यह अवश्य असंलक्ष्यक्रमता के कारण भाव-ध्वनि का विषय बनता किन्तु यहाँ ऐसा नहीं है क्योंकि कमलपत्र-गणना तथा अधोमुखत्व आवश्यक रूप से केवल लज्जा के ही अनुभाव नहीं हैं। आनन्दवर्धन का कथन है— कि ये (कमलपत्र गणना-अधोमुखत्व) तो कुमारियों में लज्जा से अति-रिक्त, कारणान्तर में भी हो सकते हैं अतः इनके द्वारा लज्जा की झटिति प्रतीति नहीं होती अपितु पार्वती के द्वारा शम्भु को वर रूप में प्राप्त करने के हेतु की गयी तपस्या तथा नारदकृत विवाहादि प्रसङ्ग के ज्ञान के अनन्तर ही लज्जा वाले अर्थ का ज्ञान होता है। इस व्यवधान के कारण ही यहाँ संलक्ष्यक्रमता है।[1]

लज्जा रूप व्यभिचारी भाव के पर्यालोचन के अनन्तर ही रस की प्रतीति होती है। अतः लज्जा तथा रस प्रतीति के बीच तो क्रम लक्षित न होने के कारण रस की दृष्टि से इसमें भी असंलक्ष्यक्रमता मानी जा सकती है ऐसी लोचनकार की मान्यता है किन्तु कमलपत्रगणना अधोमुखत्व तथा लज्जा का मध्यवर्ती क्रम संलक्ष्य है अतः लज्जा रूप अर्थ भावध्वनि का विषय न बनकर वस्तुध्वनि का विषय बनेगा। यद्यपि आनन्दवर्धन तथा मम्मट दोनों ने ही 'लज्जादि' अर्थ स्पष्ट शब्दों में वस्तुरूप नहीं बताया किन्तु इनका आशय यही रहा होगा। पण्डितराज जगन्नाथ संलक्ष्य-क्रमतया व्यज्यमान रसादि अर्थ को स्पष्ट रूप में वस्तु ध्वनि ही मानते हैं[2] और इसको अभिनव गुप्त का ही आशय बताते हैं।

शिव-पार्वती विवाह सम्पन्न हो जाने पर 'ब्रह्मा जी ने पार्वती को यह आशी-र्वाद दिया कि तुम वीर पुत्र की माता बनो किन्तु इच्छाओं से परे रहने वाले शंकर जी को हम क्या आशीर्वाद दें—यह उनकी समझ में नहीं आया।[3]

---

१ लो० पृ० २४६ ५० २ रसग०, पृ० १०७ ८

३ कुमारसम्भव ७।८७

यहाँ—शङ्कर को किसी इच्छा की कामना नहीं है—अर्थात् शङ्कर निःस्पृह हैं—इस वस्तु की व्यंजना हुई है।

'शृङ्गार का सब वस्तुएँ पास होने पर भी सभी सुहागिन स्त्रियां पार्वती की स्वाभाविक शोभा पर इतना मुग्ध हो गयी कि उन्हें एकटक निहारती ही रह गयी।'[1]

'पार्वती जी प्रकृति से ही अत्यधिक सुन्दर थीं अतः उनके शृङ्गार के लिए सौन्दर्य प्रसाधन की कोई आवश्यकता नहीं थी' यह वस्तु रूप अर्थ व्यंग्य हो रहा है।

कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्ति वस्तु से वस्तु व्यंग्य—

इन्द्र कामदेव से कहते हैं—तुम सब कुछ कर सकते हो क्योंकि तुम और वज्र दो ही मेरे अस्त्र हैं। पर उनमें वज्र की धारा तो शत्रुओं ने उतार दी है। अब तुम ही ऐसे बचे हो, जो अप्रतिहत गति से सब ओर जा सकते हो और हमारा काम भी कर सकते हो।[2]

यहाँ 'तुम सर्वशक्तिमान हो और तुम्हारे अतिरिक्त शिव की तपस्या कोई भी नहीं भङ्ग कर सकता'—इस वस्तु की व्यंजना हो रही है।

रति कहती है—'वर्षा के दिनों में, रात में, घने अन्धकार से भरे डरावने नगर के मार्ग में बिजली की कड़कड़ाहट से डर उठने वाली कामिनियों को उनके प्यारों के घर तुम्हारे बिना कौन पहुँचायेगा।'[3]

यहाँ 'कामान्धों को भय नहीं लगता' इस वस्तु की व्यंजना हो रही है।

यह आश्चर्य है कि जिस युवक को आप चाहती हैं वह ऐसा कठोर है कि बहुत दिनों से कर्णफूल से शून्य आपके कपोल पर लटकती हुई इन धान के समान पीली जटाओं को देखकर भी नहीं द्रवित होता है।[4]

यहाँ 'आपकी अत्यन्त कारुण्य एवं दयनीय दशा को देखकर भी जो दुःखित नहीं होता वह अवश्य ही पाषाण हृदय है' इस वस्तु की व्यंजना हो रही है।

सप्तर्षिगण हिमालय से कहते हैं—आपने सारी कठोरता अपने अचल शरीर में भर ली है। आपका यह चल शरीर ऐसा झुका हुआ है कि सज्जन लोग आकर इसकी पूजा किया करते हैं।[5]

---

१ कुमारसम्भव ७।१३
२ कुमारसम्भव ३।१२
३ वही, ४।११
४ वही, ५।३८
५ वही ५।४७

यहाँ आपमें काठिन्य का लेशमात्र भी नहीं है अन्यथा नम्रता असम्भव होती इस वस्तु रूप अर्थ की व्यंजना हो रही है।

कविप्रौढोक्तिनिबद्ध अलङ्कार से वस्तु व्यंग्य—

इस पर्वत पर उत्पन्न जिन भोजपत्रों पर लिखे हुए अक्षर हाथी की सूँड पर बनी हुई लाल बुँदकियों जैसे दिखाई पड़ते हैं, उन्हें विद्याधरियाँ अपने प्रेम पत्र लिखने के काम में लाया करती हैं।[1]

यहाँ उपमा अलङ्कार से—दिव्याङ्गनाओं के विरहयोग्य यह पर्वत है इस वस्तु रूप अर्थ की व्यंजना हो रही है।

सूर्य ने आकाश से धूप का पानी खींच लिया है। अतः आकाश उस तालाब के समान दिखायी पड़ता है जिसमें पूर्व की ओर अँधेरा बढ़ जाने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि उधर पङ्क बच गया है तथा पश्चिम में कुछ-कुछ उजाला रहने से ऐसा लग रहा है कि उधर अभी थोड़ा-थोड़ा पानी बच गया है।[2]

यहाँ उपमा अलङ्कार से—दिन व्यतीत हो गया अब रात्रि का आगमन हो रहा है इस वस्तु की व्यंजना हो रही है।

जब पार्वती जी हाव भाव से चलती थीं तो ऐसा जान पड़ता था कि मानों उनके बिछुओं से निकलने वाली मधुरध्वनि को सीखने के लिए ललचाये हुए राजहंसों ने अपनी हाव भाव भरी चाल पहले ही उन्हें बदले में सिखा दी हो।

यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है— पार्वती की चाल बड़ी ही मनमोहक थी इस वस्तु की व्यंजना हो रही है।

पार्वती के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—उनके सिर पर जो वर्षाकाल का जल पड़ता था वह पलभर को उनकी पलकों पर टिकता था, फिर वहाँ से गिरकर उनके ओठों पर जा पड़ता था, वहाँ से उनके स्तनों पर गिरकर बिखर जाता था फिर उनके पेट पर बनी हुई त्रिवलियों से होता हुआ बड़ी देर में नाभि में पहुँचता था।[4]

यहाँ साभिप्राय विशेषणों द्वारा विशिष्ट की उक्ति होने से परिकर अलङ्कार[5] है तथा नेत्र में पानी ठहरने से नेत्र लोम की क्षणिक स्थिरता की, ठहरने से अधर के

१ कुमारसम्भव १।७
२ कुमारसम्भव ८।३७
३ वही, ३४
४ वही, ५।२४
५ वही, २।२२

मादव का, स्तन पर ठहरने से स्तनो की कठोरता का, नाभि म ठहरने से नाभि का गम्भीरता की व्यजना हो रही है।

कविनिवद्धवक्तृप्रौढोक्ति अलङ्कार से वस्तु व्यग्य—

'ब्रह्मा जा कुवेर,से कहत हैं—'कुवेर का यह वाहु भी गदा के विना ऐसा क्या लग रहा है जैसे कटी हुई शाखा वाला वृक्ष का ठूंठ हो। यह वता रहा है कि किसी बड़े शत्रु से हार जाने का काटा इनके हृदय मे कसक रहा हो।''

यहाँ उपमा अलङ्कार से—'वृत्रासुर के घोर अत्याचार से कुवेर अत्यन्त दु खी हैं' इस वस्तु स्वार्थ की व्यजना हो रही है— यह उक्ति वक्ता के द्वारा कहलायी गयी है अतएव सारा सौन्दय वक्ता के कथन के माध्यम से व्यक्त होता है।

'षष्ठ ऋतुएँ अपने समय का विचार छोड़कर एक साथ वाटिका का मालिना के समान, एक दूसरी ऋतुओं के पुष्प का विना छेड़े हुए, अपने-अपने ऋतु के फूल पुष्पित कर तारकासुर की सेवा करती हैं।[१]

यहाँ उपमा अलङ्कार से 'तारकासुर के राज्य से शीत, उष्णादि दोष दूर भाग गये थे'—इस वस्तु की व्यजना हो रही है।

मैना कहती है—'कहाँ तो तपस्या और कहाँ तुम्हारा कोमल शरीर। देखो! शिरीष के फूल पर भौंरे आकर बैठ जाये, तो क्या वह झड नही जायेगा।[३]

यहाँ उपमा अलङ्कार से तुम जैसी कोमलाङ्गी को तपस्या नही करना चाहिए, इस निषेध रूप अर्थ की व्यजना हो रही है।

'अपने निस्तेज दण्ड से पृथ्वी का कुरेदते हुए यमराज ऐसे क्या लग रहे हैं मानो उनका कठोर दण्ड भी बुझी हुई लूक जैसा बेकाम हो गया है।[४]

यहाँ—'करारा दण्ड तथा लूक का सम्भव सम्वन्ध द्वारा साहचय व्यक्त करने म निदर्शना अलङ्कार है'—उसस यमराज आप इतने दु खी मत हो[५], इस वस्तु की व्यजना हो रही है।

स्वत सम्भवी अलङ्कार से वस्तु-व्यजना—

हिमालय की विशाल गुफाओं म दिन में भी अँधेरा छाया रहता है अतएव दिन से डरने वाले उल्लू को हिमालय अपनी गोद म शरण दे देना था क्योंकि जो

---

१ कुमारसम्भव २।३६   २ कुमारसम्भव २।३६

३ वही, ५।४   ४ वही, २।२३

५ वही, २।१२

अपने पिता के वचन सत्य करने के लिये राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ दण्डक वन में ही नहीं वरन् अपने इस सत्य व्यवहार से सज्जनों के मन में भी घर कर लिया।[1]

यहां—श्री राम की एकनिष्ठ पितृभक्ति से सभी ऋषि मुनि सन्तुष्ट हुए—इस बात की व्यंजना हो रही है।

जब हिमालय पर अपना झण्डा गाड़ कर रघु आगे कैलाश की ओर न बढ़कर लौट पड़े तब कैलाश पर्वत को इस बात की बड़ी लज्जा हुई कि एक बार रावण ने मुझे क्या उठा लिया, सभी मुझे हारा हुआ समझने लगे।

यहाँ 'गुरवार को किसी शत्रु से पराजित नहीं होना चाहिये' इस निषेध रूप वस्तु की व्यंजना हो रही है।[2]

रघु के विजय के अवसर पर पहाड़ी राजाओं ने रत्नों के ढेर रघु को भेंट में दिए जिसे देखकर रघु ने हिमालय के अतुल धन का अनुमान किया और हिमालय ने भी युद्ध में रघु के पराक्रम का अनुमान कर लिया।[3]

यहाँ हिमालय में बहुमूल्य वस्तुएँ मिली और वे प्रथम बार पराजित हुए थे—इस वस्तु की व्यंजना हो रही है।

रघु के जन्म होने पर कवि कहता है—बालक तो संसार का कल्याण करने वाला था इसलिए उसके जन्म लेने पर केवल सुदक्षिणा-पति दिलीप के राजमंदिर में ही मनोहर बाजे और वेश्याओं के नृत्यादि उत्सव नहीं हो रहे थे, अपितु आकाश में देवताओं के यहाँ भी नाच गान हो रहे थे।[4]

यहाँ ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न रघु देवताओं का अवश्य सङ्कट दूर करेगा—यह सोचकर देवगण बहुत प्रसन्न हुए—इस वस्तु रूप अर्थ की व्यंजना हो रही है।

जब ये शक्तिशाली राजा शत्रुओं पर चढ़ाई करते हैं तब सेना के आगे चलने वाले घोड़ों के टापों से उठी हुई धूल से शत्रुओं के मुकुटों की चमक धुँधली पड़ जाती है।[5]

यहाँ हे सखि! इनका कोई शत्रु नहीं है अर्थात् इनसे (अवन्ती देश के राजा से) सभी शत्रुगण पराजित हो गये हैं इस वस्तु की व्यंजना हो रही है।

---

१ रघुवंश १।९६ २ रघुवंश ४।८०
३ वही, ४।७६ ४ वही ३।१९
५ वही ७।३३

उन्ही प्रसिद्ध वश मे (कार्तवीय के वश मे) ये अनूप देश के राजा उत्पन्न हुए है ये वेदों और बड़े-बूढो की बडी सेवा किया करते हैं। लक्ष्मी को जो चचलता का दोप लगाया जाता है उनका वह दाप भी तव से धुल गया, जब से वह इनके साथ रहने लगी।[१]

यहा 'यह राजा सब प्रकार क दोप, व्यसन से रहित हैं। अतएव लक्ष्मी सदैव इनके साथ रहती हैं अर्थात् यह प्रभूत समृद्धिवान् हैं इस वस्तु की व्यजना हो रही है।

कविप्रौढोक्ति अलङ्कार से वस्तु व्यग्य—

'दिग्विजय के लिए रघु की सेना मे जो झण्डिया थी वे फरफराती हुई ऐसी लग रही थी, मानो शत्रुआ का अँगुला उठा-उठाकर डाट रही थी।[२]

यहाँ 'उत्प्रेक्षा अलङ्कार स—शत्रुओ सावधान हो जाओ तुम्हारा विजयश्रा खतर मे है'—इस वात की व्यजना हो रही है।

राजा दशरथ बूढे हो गय थे। अब उनकी दशा प्रात काल क उस दीपक जैसा हो गयी थी जिसका तेल समाप्त हो गया हो और वह बस बुझने ही वाला हो।[३]

यहाँ उपमा अलङ्कार से—'राजा दशरथ की सब इन्द्रियाँ शिथिल हो गयी थी और उनकी मृत्यु निकट था' इस वस्तु की व्यजना हो रहा है।

राजा दिलीप प्रजापालक थे इसलिए उनक जङ्गल मे पहुँचते हा, वर्षा के विना ही वन की अग्नि शान्त हो गयी, वहा क पेड भी फल और पुष्प से युक्त हो गये तथा बडे जीवा ने छोटे जीवा को पीडित करना भी छाड दिया।[४]

यहाँ विभावना अलङ्कार से—महाराज दिलीप इतने महान थ कि स्थावर-जगम सभी उनका आदर करत थे'—इस वस्तु की व्यजना हो रही है।

कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्ति अलङ्कार से वस्तु—

चारणगण कहत हैं—तुम्हारी सौन्दय लक्ष्मी न जब यह देखा कि तुम निद्रा रूपी दूसरी स्त्री क वश मे हो तब वह तुम्ह चाहते रहन पर भी रुष्ट होकर तुम्हार ही मुख के समान सुन्दर चन्द्रमा क पास चली गया। पर इस समय चन्द्रमा भा मलिन हा गया इसलिए वह सौन्दय लक्ष्मी पुन निराधार हा गया है।

यहाँ उपमा अलङ्कार से तुम्हारी अतिरिक्त सौन्दय लक्ष्मी को धारण करने का और किसी मे कोई सामर्थ्य नही है अथात् आप अपूर्व शोभावान् हैं इस वस्तु की व्यजना हो रही है।

---

१ रघुवश ६।४१ २ रघुवश ४।२८
३ वही, १२।१ ४ वही, २।१४

इनका राज-भवन महाकाल के मंदिर में बैठे हुये और मस्तक पर चन्द्रमा धारण करने वाले शिव जी के पास ही है। इसलिए कृष्णपक्ष में भी शिव जी के सिर पर बने हुए चन्द्रमा की चाँदनी से ये अपनी स्त्रियों के साथ सदा शुक्ल पक्ष का ही आनन्द लेते हैं। हे रम्भोरु! क्या तुम अवन्ती के उन उद्यानों में विहार करना चाहती हो जिसमें दिनरात शिप्रा नदी का शीतल वायु प्रवाहित होता रहता है।[1]

यहाँ उपमा अलङ्कार से—हे सखि! नित्य ज्योत्स्ना में विहार का सुख ही इनके पास है अन्य कुछ नहीं—इस वस्तु रूप अर्थ की व्यंजना हो रही है।

कौत्स राजा रघु से कहते हैं—हे राजन्! आपने अपना सब धन अच्छे मांगने वालों को दे डाला और केवल यह शरीर मात्र आपके पास बचा है। इससे आप उस तिन्नी के पौधे का ठूँठ जैसे रह गए हैं, जिसके दानें तपस्वियों ने झाड़ लिए हैं। सब कुछ देकर और दरिद्र होकर भी आप उस चन्द्रमा के समान सुन्दर लग रहे हैं जिसकी सारी कलाएँ देवताओं ने पी डाली हों।[2]

यहाँ उपमा अलङ्कार से सब कुछ दान कर देने से महाराज की आध्यात्मिक एवं शारीरिक आभा द्विगुणित हो गयी है इस वस्तु की व्यंजना हो रही है।

स्वतः सम्भवी अलङ्कार से वस्तु व्यंग्य—

अज शत्रुओं के सिर पर बायां पैर रखकर सुन्दरी इन्दुमती को लेकर चले। उनके रथ के घोड़ों की टापों से उठी हुई धूल से, इन्दुमती के केश भर गए और वह साक्षात् विजयलक्ष्मी जैसे जान पड़ रही थी।[3]

यहाँ उपमा अलङ्कार से—जब विजयलक्ष्मी स्वरूपा इन्दुमती साथ में है—तो अन्य की क्या आवश्यकता है—यह वस्तु की व्यंजना हो रही है।

रघु के जन्म होने पर कवि कहता है—बालक का तेज सौरी-घर में चारों ओर इतना फैला हुआ था कि आधी रात समय घर में रखे हुए दीपों का प्रकाश भी बिल्कुल फीका पड़ गया और वे ऐसे जान पड़ने लगे—मानो चित्र में बने हुए हों।[4]

यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार से—देवताओं का अंश आने के कारण रघु की शारीरिक कांति के समक्ष अन्य सभी फीके पड़ गए इस वस्तु की व्यंजना हो रही है।

---

१ रघुवंश ६।३४ | २ रघुवंश ५।१५
३ वही ७।७० | ४ वही ३।१५

मेघदूत—

मेघदूत विरह शृङ्गार प्रधान काव्य है। उसमे वियोग का जैसा अनूठा वर्णन हुआ है—वह विश्वविदित है। अतएव मेघदूत मे अलङ्कार एव वस्तु व्यग्य का वैसा सौन्दर्य प्राप्त नही होता जैसा रसव्यग्य का। काव्य मे प्रयुक्त वस्तु एव अलङ्कार-रस के दो चारुत्वोत्कर्ष के साधन हैं। केवल एक दो स्थलो मे ही वस्तु ध्वनि का किंचित सौन्दर्य लक्षित होता है। जिनका कुछ वर्णन किया जा रहा है—

कविनिवद्धवक्तृप्रौढोक्ति वस्तु से वस्तु व्यग्य—

प्रात काल उज्जयिनी में बहुत से प्रेमी लोग अपनी उन स्त्रियो के आँसू पोछ रहे होंगे, जिन्हे रात मे अकेली छोडकर वे कही दूसरी जगह रमे थे। इसलिए उस समय तुम सूर्य को भी मत आच्छादित करना क्योकि वे भी उस समय अपनी प्रिय कमलिनी के मुह कमल पर पडी हुई ओस की बूदे पोछने के लिए आ गये होगे। तुम उनके हाथ न रोकना नही तो बहुत बुरा मान जायेगे।[1]

यहाँ कामिनियो की इच्छा में अवरोध होने से वे अत्यधिक क्रुद्ध हो जाती हैं जिससे तुम्हारे काय मे हानि हो सकती है।

इस वस्तु की ध्वनि हो रही है।

हे मेघ! तुम वहाँ (कैलास पवत पर) पहुँच कर पहले तो तुम मानसरोवर का जल पान करना जिसम सुनहरे कमल खिला करते हैं। एरावत के मुह पर थोडी देर वस्त्र के समान छाकर उसका मन बहला देना, फिर जाकर कल्पद्रुम के कोमल पत्ता को महीन कपडे की भाति हिला देना। इस प्रकार अनेक प्रकार की क्रीडा करते हुये तुम कैलास पर स्वेच्छा पूवक घूमना।[2]

यहाँ कैलाश पवत तो तुम्हारा सहज मित्र है अतएव मित्र के घर मे किसी प्रकार का सकोच नही करना चाहिए—इस वस्तु रूप अथ की व्यजना निकल रही है।

अलकापुरी में रगविरगे वस्त्र, नेत्रो में बाँकापन बढाने वाली मदिरा, कोमल पत्ते और फूल, तरह-तरह के आभूषण, पैरो मे लगाने का महावरादि स्त्रियो के शृगार की समस्त वस्तुयें अकेले कल्पवृक्ष से ही मिल जाती हैं।[3]

---

१ पू० मे० ३१ २ पू० मे० ७२
३ वही, १२

यहाँ अलकापुरी में किसी वस्तु के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता, कल्पवृक्ष समस्त इच्छाओं की पूर्ति कर देता है इस वस्तु की व्यंजना हो रही है।

कविनिबद्धवक्तृअलंकार से वस्तु व्यंग्य—

अवन्ति देश का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—वह नगरी ऐसा लगता है मानो स्वर्ग में अपने पुण्यों का फल भोगने वाले पुण्यात्मा लोग अपने पुण्य समाप्त होने से पूर्व ही, अपने बचे हुए पुण्य के बदले स्वर्ग का कोई चमकीला भाग अपने साथ लेकर उसे पृथ्वी पर उतार लाये हों।[1]

यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार से—समस्त भूलोक का अतिक्रमण करने वाली—उज्जयिनी बड़ी ही सौभाग्यवती है इस वस्तु की व्यंजना हो रही है।

यक्ष कहता है—हे सज्जन! हृदय में रखे हुए इन लक्षणों से द्वार के अगल-बगल चित्रित शंख और पद्म को देखकर निश्चय ही तुम मेरे भवन को पहचान लोगे। सूर्य के अस्त हो जाने पर कमल अपनी शोभा नहीं धारण करता।[2]

यहाँ भवन के सामान्य धर्म शोभाहीन होने का कथन होने से प्रतिवस्तूपमा अलंकार[3] से—स्वामी अथवा पति से हीन घर की कोई शोभा नहीं होती', इस वस्तु रूप अर्थ की व्यंजना हो रही है।

हे मेघ!—तीव्र वायु चलने पर देवदारु के वृक्षों के आपस में घर्षण से जब जंगल में आग लग जाय और उड़ते हुए अंगारे सुरगाय के लम्बे लम्बे रोयें जलाने लगें तब तुम धुआँधार जल बरसा कर उसे बुझा देना क्योंकि भले लोगों के पास जो कुछ भी होता है, वह दीन दुखियों का दुःख मिटाने के लिए ही होता है।[4]

यहाँ विशेष का सामान्य से समर्थन होने के कारण—अर्थान्तरन्यास अलंकार से आपत्ति संकट में पड़े लोगों की सहायता अवश्य करनी चाहिए —इस वस्तु की व्यंजना हो रही है।

ऋतुसंहार—

इस काव्य में ऋतुओं का वर्णनात्मक शैली में वर्णन होने के कारण, वस्तु, अलंकार, इत्यादि की व्यंग्यता के उदाहरण प्रायः नहीं प्राप्त होते। उद्दीपन विभावादि के अन्तर्गत ऋतुओं का वर्णन होने के कारण भाव एवं रस की व्यंजना परिलक्षित हो जाती है किन्तु अलंकार एवं वस्तु की व्यंजना का आस्वाद नहीं मिल पाता। अतएव प्रस्तुत काव्य में वस्तु व्यंजना की चर्चा नहीं की गयी है।

---

१ पू० मे० ३२   २ पू० मे० १७

३ मु० १५३, पृ० ४८४   ४ पू० मे० ५६

षष्ठ अध्याय

गुणीभूतव्यंग्य

जैसा कि प्रथमाध्याय में संकेत किया जा चुका है, कि जहां व्यंग्य के सम्बन्ध के कारण वाच्यता की चारुता अधिक रहती है वहाँ गुणीभूतव्यंग्य नामक काव्य का प्रकार होता है।[1] वस्तुत वाच्य अर्थ के प्रधानरूपेण चारुत्वस्थानीय होने के कारण तथा व्यंग्य अर्थ के गुणीभूत होने से ही कारण इसे 'गुणीभूत व्यंग्य' नाम दिया गया है। ध्वनिकार द्वारा दिये गये 'गुणीभूत-व्यंग्य' के लक्षण को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि व्यंग्यार्थ का वाच्यार्थ से समप्राधान्य की स्थिति होने पर भी गुणीभूत-व्यंग्य ही माना है। यद्यपि इस समप्रधानता की चर्चा आनन्दवर्धन ने स्पष्ट शब्दों में नहीं की है तथापि उनके लक्षण में आए 'चारुत्वप्रकर्षवत्' पद की व्याख्या करते हुए दीधितिकार कहते हैं —

'वाच्यस्य चारुत्वप्रकर्ष इति चारुत्वसाम्यस्याप्युपलक्षणम्' — दीधित पृ० ४६३

किन्तु आचार्य मम्मट इस बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं— अतादृशि गुणीभूतव्यंग्यं व्यंग्ये तु मध्यमम्'। का० प्र० सूत्र ३ पृ० ३१

अतादृशि वाच्यादनतिशायिनि।

अर्थात् वाच्य से व्यंग्य के अनतिशायी होने पर गुणीभूतव्यंग्य नामक मध्यम काव्य होता है। यहाँ व्यंग्य का वाच्य से अतिशायी न होने का अर्थ है, व्यंग्य का वाच्य से न्यून होना अथवा तुल्यकोटिता होना।[2] इस प्रकार यह निश्चित होता है कि इन दोनों ही अवस्थाओं में गुणीभूतव्यंग्य नामक काव्य माना जायेगा।

जैसे—

लावण्यसिन्धुरपरैव हि केयमत्र यत्रोत्पलानि शशिना सह सम्प्लवन्ते।
उन्मज्जति द्विरदकुम्भतटी च यत्र यत्रापरे कदलिकाण्डमृणालदण्डाः॥

ध्व पृ० ४५६

---

१ ध्वन्यालोक ३।३४ २ का० बो० पृ० २१

यहाँ निषेध रूप में परिणत होना उत्तर रूप में पटाक्षेप, तथा ... में मुख आदि अर्थों की व्यञ्जना हो रही है किन्तु ये सभी अर्थ ... में अप्रतिष्ठित रहते हुए अतएव स्वयमेव इस विस्मयरूप वाच्यार्थ के उत्कर्ष के साधन बन रहे हैं। अतः वाच्यार्थ के ही अधिक चमत्कारकारी होने से गुणीभूतव्यङ्ग्यकाव्य माना जायगा। किन्तु साथ ही इस श्लोक का पर्यवेक्षण करने पर यह तथ्य सामने आता है कि यहाँ नायिका रूप विस्मय का ... अभिलाषरूप विप्रलम्भ का आलम्बन बन रहा है। अतः प्रश्न यह होता है कि रस की स्थिति होने पर तो यह श्लोक ध्वनिकाव्य की कोटि में आ जायगा फिर यहाँ गुणीभूत व्यङ्ग्य क्यों माना गया ?

इसका समाधान यह है कि रस के प्रसङ्ग में विभावादि ही वाच्यार्थ स्थानीय होते हैं अतः विस्मय से अभिलाष तक का सारा प्रसङ्ग वाच्य ही माना जायगा क्योंकि इसी में सारा चमत्कार निहित है। उसके बाद इस वाच्यार्थस्थानीय (नायिका रूप) विभावादि के पर्यालोचित होने वाला विप्रलम्भशृङ्गाररस अवश्य ही व्यङ्ग्य स्थानीय होकर ध्वनि कोटि तक पहुँच जायगा।[1] इस प्रकार रस दृष्टि से यह ध्वनि काव्य की सीमा में अन्तर्निहित होगा। इसी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए ध्वनिकार कहते हैं — रसभावादि रूप से भी पद्य की पर्यालोचना करने पर तो यह गुणीभूत व्यङ्ग्यता में भी ध्वनिकाव्य स्थानीय हो जाता है। अतः गुणीभूतव्यङ्ग्यता तो उस प्रथम न्याय की दृष्टि से मानी जाती है।

आचार्य आनन्दवर्धन ने रसभावादि के व्यङ्ग्य के अप्रधान या अङ्गरूप में स्थित रहने को गुणीभूतव्यङ्ग्यकाव्य माना है। अङ्गरूप से रहने पर रसभावादि अन्य वाक्यार्थीभूत रसादि के उपकारक होने के कारण अलङ्कार की कोटि में आ जाते हैं। इस प्रकार रसादि प्रधानरूपेण स्थित रहने पर ध्वनिकाव्य के अन्तर्गत आयेंगे, किन्तु अप्रधानरूपेण स्थित होने पर वे अन्य के चारुत्व के हेतु होने से वे अलङ्कार रूप बन जायेंगे। जैसे—

अयं स रशनोत्कर्षी पीनस्तनविमर्दनः ।
नाभ्यूरुजघनस्पर्शी नीवीविस्रंसनः करः ॥

यहाँ शृङ्गार रस करुण का उत्कर्षाधायक होने के कारण अलङ्कार की कोटि में आ जाता है ध्वनि में नहीं। आचार्य विश्वनाथ भी इसी बात का समर्थन करते हैं।[3] यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि रस तो सर्वथा अलङ्कार्य है फिर उसे अलङ्कार क्यों कहा गया ?

---

१ लोच० पृ० ४६१ २ ध्व० ३।४०
३ सा० द० पृ० ३२१

आचार्य आनन्दवर्धन का कथन है कि वस्तुत रसादि अन्य प्रधान वाच्यार्थ के चारुत्व हेतु होने के कारण उन्हें अलङ्कार कहा जाता है, अन्यथा वे सदैव अलकार्य ही होते हैं।[1]

अतएव अप्रधानरूप से स्थित रस को रस व्यंग्य न कहकर रसवत् अलङ्कार कहा जाता है, और इसी प्रकार रसाभास, भावाभास, भावशान्ति के अङ्गरूप से स्थित होने पर क्रमश प्रेयस ऊर्जस्वि तथा समाहित नामक अलङ्कार कहा जाता है।[2] इस समय उनकी स्थिति भृत्य के विवाह में उपस्थित भृत्यानुगामी (वस्तुत प्रधान, किन्तु इस समय अप्रधान बने) राजा के समान है।[3]

यद्यपि रसादि की चर्चा अति प्राचीन है, किन्तु उन सबको इस प्रकार से व्यवस्थित करने का परम श्रेय आचार्य आनन्दवर्धन को ही है।

इस प्रकार गुणीभूतव्यंग्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। व्यंग्यार्थ से उपस्कृत हुआ वाच्य सहृदयों में चमत्कारातिशय का जनक होता है। इसीलिए ध्वनिकार इसे 'ध्वनिनिष्पन्द रूप' कहते हैं।[4] वस्तुत गुणीभूतव्यंग्य काव्य का वास्तविक अभिप्राय 'व्यंग्यार्थ' के सम्बन्ध से विशेष रमणीय वाच्य सौन्दर्यमय 'काव्यबन्ध' का है।[5] अतएव प्रसादगुणयुक्त तथा व्यंग्यार्थयोग के कारण गम्भीरपदों से युक्त काव्यप्रबन्धों में ध्वनि की सम्भावना न रहने पर, गुणीभूतव्यंग्यकाव्य प्रकार की ही योजना करनी चाहिये।[6]

ध्वनिकार के यह कहने का वास्तविक अर्थ यह है कि 'ध्वन्यात्मक काव्य प्रबन्ध' तो सर्वश्रेष्ठ काव्य है ही। उसमें किसी प्रकार की शङ्का नहीं किन्तु ऐसी भी कृतियाँ काव्य हैं, जिनमें व्यंग्य सौन्दर्य के आकर्षण की अपेक्षा वाच्यसौन्दर्य का आकर्षण अधिक प्रबल हुआ करता है।

'गुणीभूतव्यंग्य'-काव्य की श्रेणी में संस्कृत काव्य साहित्य की अनेकानेक रचनायें स्थान पाती हैं। ध्वनिवादी काव्याचार्यों ने इस काव्य विभाग में उन सभी अलकृत सूक्तियों को भी अन्तर्भूत कर दिया है जिन्हें प्राचीन अलङ्कारवादी आचार्य केवल किसी न किसी अलङ्कार से अलंकृत कह कर मौन रह गये थे, किन्तु आनन्दवर्धन ने स्पष्ट कहा है कि—वे सभी वाच्यालङ्कार विभूषित रचनाएँ 'गुणीभूतव्यंग्य

१ ध्व० पृ० २२३
२ का० बो० पृ० ८५
३ वही, ४६५
४ ध्व० पृ० ५०७
५ वही, ३।३४
६ वही, ३।३५

काव्य' की श्रेणी में अन्तर्भूत हो जाएँगी, जिनकी काव्यात्मक रमणीयता का रहस्य उनके वाच्यालङ्कार में नहीं, अपितु उन वाच्यालङ्कारों में अन्तर्लीन वस्तु या अलङ्कार रूप व्यंग्यार्थ के अवभास में रहा करता है।'[1]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यदि 'ध्वनिकाव्य' ध्वनितत्त्व का पूर्णावतार है तो 'गुणीभूतव्यंग्य' काव्य उसका अंशावतार अवश्य है। अतः दोनों रमणीय काव्य-प्रकार हैं।

आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में कुछ अलङ्कारों को व्यंग्य तत्त्व से युक्त स्वीकार करके उनके व्यंग्यार्थ का मूल्यांकन किया है और उनसे युक्त काव्य को गुणीभूत व्यंग्य काव्य की गणना में रखा है क्योंकि उन सब में वाच्य का सौंदर्य व्यंग्य की अपेक्षा अधिक हुआ करता है। ये अलङ्कार हैं—समासोक्ति, आक्षेप, अप्रस्तुतप्रशंसा, अनुक्तनिमित्ताविशेषोक्ति, अपह्नुति, दीपक, पर्यायोक्ति, सङ्कर इत्यादि। इनमें से कुछ अलङ्कार कालिदास के काव्य में यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं जिनका विवेचन इस प्रकार है—

समासोक्ति—

श्लेषयुक्त विशेषणों द्वारा अप्रकृत (के व्यवहार) का कथन—समासेन संक्षेपेण उक्ति (अर्थात् दो अर्थों का संक्षेप में कथन होने के कारण) समासोक्ति अलङ्कार कहलाता है।[2]

कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग में वसन्त ऋतु के वर्णन में समासोक्ति की सुन्दर योजना हुई है—वसन्त का समागम होते ही दूज के चन्द्रमा के समान टेढ़े रक्तवर्ण के अर्धविकसित, वनभूमि में विकीर्ण, पलाश के पुष्प ऐसे लग रहे थे मानो वसन्त ने वनस्थलियों के साथ विहार करके, उन पर अपने नखक्षत बना दिए हों।[3]

यहाँ प्रस्तुत वसन्त-वनस्थलियों के साम्य से अप्रस्तुत नायक नायिका के व्यवहार की व्यंजना होती है किन्तु यह अप्रस्तुत अर्थ प्रस्तुत अर्थ का ही उत्कर्षाधायक होने के कारण गुणीभूतव्यंग्य का स्थल बन रहा है।

रात्रि का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—इस समय चन्द्र ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे वह अपनी (किरण) अंगुलियों से रजनी के मुखमण्डल पर पर्यस्त केश समूहों को हटाकर उसका मुख चुम्बन कर रहा हो और रजनी भी उस चुम्बन का आस्वाद लेने के लिए अपने कमल-नेत्र को निमीलित किए बैठी हो।[4]

---

१ ध्व० पृ० ५०३
२ का० प्र० सूत्र १४७
३ कुमारसम्भव ३।२९
४ कुमारसम्भव ८।६३

यहाँ प्रस्तुत चन्द्र-रजनी के साम्य से नायक-नायिका के व्यवहार की व्यंजना हो रही है किन्तु यह व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ का ही सौन्दय वधन करने के कारण, गुणीभूत व्यंग्य के अन्तगत आ जायेगा।

मेघदूत म निर्विन्ध्या नदी का वणन करता हुआ यक्ष कहता है—'निर्विन्ध्या तुम्हारे वियोग मे वेणीवत् कृश हो गयी होगी, और तट स्थित वृक्षा के पर्ण गिरने के कारण उसका वण पीत हो गया होगा। हे मेघ! अपना इस वियोग दशा को दिखाकर, वह यह कह रही होगी कि मैं तुम्हारे वियोग म क्षीण होती जा रही हूँ।[1]'

यहाँ मेघ-निर्विन्ध्या के माध्यम से नायक-नायिका के व्यवहार की व्यंजना हो रही है, किन्तु यह व्यंग्याथ वाच्याथ का ही उपस्कारक बन जाता है।

हे मेघ! तुम्हारे समान अनेक मेघखण्ड, वायु के झोंके के साथ, वहा (अलका-पुरी मे) के उच्च भवनो के अग्रभाग म पहुँचकर, वहाँ स्थित चित्रो को अपने जलकणो से आद्र कर और फिर शीघ्र ही धूम का रूप ग्रहण करने मे निपुण, शङ्कित होकर वातायन मार्गों से जजर होकर निकल जाते हैं।[2]

यहाँ भी प्रस्तुत द्वारा अप्रस्तुत नायक नायिका की गतिविधियो की व्यंजना हो रही है, किन्तु वह प्रस्तुत का ही शोभावधक होने से गुणीभूत व्यंग्य का स्थल बन रहा है।

पर्यायोक्त—

वाच्य वाचकभाव के बिना (व्यंजना व्यापार-द्वारा प्रकारान्तर से) जो (वाच्याथ का) कथन करना, वह पर्यायोक्त (अलङ्कार कहलाता) है।[3]

'रघुवंश के द्वितीय सग में पर्यायोक्त के सुन्दर स्थल प्राप्त होते हैं। दिन भर अपने सचरण से दिगन्तो को पवित्र कर, अब दिन के अवसान समय नवकिसलय सी अरुण सूय की आभा न तथा मुनि की धेनु नन्दिनी ने निलय की ओर चलने का उपक्रम किया।[4]

यहाँ व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य की चारुता अधिक है।

'सन्ध्या वेला म, वसिष्ठ की धेनु के पीछे वन से लौटे, राजा को सुदक्षिणा अपलक नेत्रो से देखती रह गई मानो वह बहुत देर से राजा के रूप-सौन्दय को पान करने को प्यासी हो।[5]

---

१ पू० मे० २१ २ उ० मे० ८
३ का० प्र० सूत्र १७४ ४ रघुवंश २।१५
५ रघुवंश २।१६

यहाँ व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य का सौन्दर्य अधिक है अतएव यह गुणाभूत व्यंग्य के अन्तर्गत आ जाता है।

रघुवंश के षष्ठ सर्ग में पर्यायोक्त का जिस निपुणता से योजना हुई है, वह प्रशंसनीय है। स्वयम्वर के अवसर पर, देशान्तर से आये आठ राजाओं के परिचय में कवि ने सर्वथा अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया। मगधेश्वर की प्रशंसा करती हुई सुनन्दा इन्दुमती से कहती है—

यदि तुम इनके साथ विवाह करना चाहती हो, तो अवश्य करो। क्योंकि जब तुम विवाह कर इनके साथ (इनकी) राजधानी (पाटलीपुत्र) में प्रवेश करोगी तब तुम्हारे (दिव्य) सौन्दर्य को देखकर वहाँ की स्त्रियों को बड़ा सुख मिलेगा।[1]

यहाँ पर, हे राजकुमारी ! इनके राज्य में स्त्रियाँ तुम्हारा बड़ा स्वागत करेंगी इसलिए इच्छा हो इनके साथ विवाह कर लो, यह व्यंग्य हो रहा है किन्तु इस व्यंग्यार्थ की अपेक्षा वाच्य में चारुता अधिक है अतः गुणीभूतव्यंग्य के अन्तर्गत आ जाता है।

पुनः अङ्गराज के समक्ष पहुँचकर कहती है—प्रख्यात है कि, लक्ष्मी और सरस्वती में स्वाभाविक विरोध है फिर भी इनके यहाँ दोनों परस्पर मैत्रीभाव से रहती हैं। हे कल्याणि ! तुम रूप में लक्ष्मी के समान एवं वाणी में सरस्वती के समान हो, अतएव उन दोनों के साथ मिलकर उनकी भी तीसरी हो जाओ।[2]

यहाँ यह नृप रूप और विद्या दोनों से मण्डित है, अतः यदि इच्छा हो तो इनके साथ विवाह कर लो इस व्यंग्य अर्थ की अपेक्षा वाच्य में सौन्दर्य अधिक है अतः गुणीभूतव्यंग्य काव्य की कोटि में आ जाता है।

अनूपराज के देश में नर्मदा की प्राकृतिक शोभा अनुपम है। नर्मदा के अभिनव अभिराम-दृश्य का वर्णन करती हुई कहती है—यदि तुम भवन के झरोखे में आसीन हो सुन्दर तरङ्गोंवाली नर्मदा के मनोरम दृश्य देखना चाहती हो, तो इन महाराज की अङ्कलक्ष्मी बन जाओ।[3]

यहाँ भी इस राजा का राजभवन नर्मदा के अत्यन्त समीप है इस व्यंग्य अर्थ की अपेक्षा वाच्य की चारुता अधिक उत्कर्ष युक्त है।

---

१ रघुवंश ६।२४ २ रघुवंश ६।२९
३ वही, ६।४३

राजा सुषेण का वर्णन करती हुई कहती है—"इनके साथ पाणिग्रहण कर, आप धनपति के चैत्ररथ नामक उद्यान से अधिक सुन्दर, वृन्दावन में मृदु प्रवाल एवं पुष्पों की शैय्या पर विहार कीजिये।[1]

यहाँ भी 'हे बाले! उनके राज उद्यान की शोभा अद्वितीय है, अतः यदि अभिलाषा हो तो इनके साथ विवाह कर लो' इस व्यंग्य अर्थ की अपेक्षा वाच्य का सौन्दर्य अधिक उत्कृष्ट है।

इसी प्रकार शेष राजाओं के वर्णन में भी पर्यायोक्त का निबन्धन हुआ है।

दीपक—

जहाँ प्रकृत (प्राकरणिक अर्थात् उपमेय) तथा अप्रकृत (अप्राकरणिक अर्थात् उपमान) के (क्रियादिरूप) धर्मों का एक बार ग्रहण किया जाए (अर्थात् जहाँ एक ही क्रियादिरूप धर्म का अनेक कारकों के साथ सम्बन्ध हो, वहाँ क्रियादीपक नामक दीपक का एक भेद होता है। इसी प्रकार (२) बहुत सी क्रियाओं का एक ही कारक से सम्बन्ध किया जाए, वह दीपक अलङ्कार का दूसरा भेद अर्थात् कारक दीपक होता है।[2]

कुमारसम्भव में हिमराज सप्तर्षियों से विनम्र प्रार्थना करते हुए कहते हैं—"हे महर्षियो! मैं अपने को दो प्रकार से पवित्र मानता हूँ, एक तो मेरे सिर गङ्गा की पवित्र धारा गिरने से तथा दूसरे आप लोगों के चरणों का प्रक्षालन व्यात कर लेने से।[3]

यहाँ अनेक कारकों का एक क्रिया से सम्बन्ध होने से क्रियादीपक है। यहाँ चरण एवं पवित्र धारा में साम्य द्वारा उपमा की व्यंजना होती है साथ ही उन दोनों का (चरण धारा) सम्बन्ध हिमवान में होने के कारण उनकी पवित्रता की व्यंजना होती है, किन्तु इस व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य का चारुत्व अधिक होने से गुणीभूत व्यंग्य का स्थल माना जायेगा।

उत्तरमेघ में यक्ष अपनी प्रिया के विरही जीवन का चित्र खींचते हुए कहता है—'या तो वह देवताओं की पूजा कर रही होगी, या अनुमान से मेरा चित्र अङ्कित कर रही होगी अथवा पिंजरस्थ मधुरभाषिणी मैना से—हे रसिके! क्या तुझे अपने स्वामी का याद आती है? क्योंकि तू ही उनकी प्रिया है—इस प्रकार की वार्ता करती हुई समित होगी।[4]

---

१ रघुवंश ६।५०   २ का० प्र० सूत्र १५५
३ कु० स० ६।५७   ४ उ० मे० २५

यहाँ अनेक क्रियाओं का एक कारक से सम्बन्ध होने से कारक दीपक है। इस अलङ्कार में यक्षिणी की विरहावस्था की व्यंजना हो रही है किन्तु यह अर्थ वाच्य का ही उत्कर्षापादक बनने के कारण गुणीभूतव्यंग्य के अन्तर्गत आ जाता है।

सङ्कर—

अपने स्वरूपमात्र में जिनकी विश्रान्ति न हो (अर्थात् जो परस्पर निरपेक्ष रूप से स्थित न रह कर अलङ्कार न बनते हों) उनका अङ्गाङ्गिभाव होने पर सङ्कर अलङ्कार होता है।[1]

सङ्कर अलङ्कार में दो या दो से अधिक अलङ्कारों (शब्द अथवा अर्थ अथवा दोनों का मिश्रण) का कथन होने से व्यंजना की सम्भावना ही नहीं रहती अतः इसमें सर्वत्र वाच्य में ही चमत्कृति हुआ करती है।

कुमारसम्भव में पार्वती के नेत्रों की शोभा का कथन करता हुआ कवि कहता है— उस आयतनयना पार्वती ने नेत्र हवा से चंचल नीलकमल के समान अधीर दृष्टि क्या मृगियों से ली थी, अथवा मृगियों ने उससे ली थी।

यहाँ हरिणी की दृष्टि के समान पार्वती की दृष्टि है—यह उपमा यद्यपि व्यंग्य है, तथापि वह सन्देह सङ्कर रूप वाच्य का ही अनुग्रहण करता है, अतः स्वयं गुणीभूत हो जाता है, क्योंकि उसका पर्यवसान सन्देह की पुष्टि में ही हो रहा है।[3]

रघुवंश के षष्ठ सर्ग में अङ्गदेश के राजा का परिचय देती हुई सुनन्दा कहती है—'इन्होंने (जिन राजाओं को युद्ध में मृत्यु के घाट उतार दिया) उनकी स्त्रियों ने स्वामियों के शोक में मुक्ताहार भी उतार फेंके किन्तु उनके रोने से उनके स्तनों पर गिरते हुए अश्रुबिन्दु, मुक्ता के समान प्रतीत होते थे। अतः उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो इन्होंने शत्रुओं की स्त्रियों के कण्ठ से मुक्ताहार उतार कर बिना सूत्र का हार पहना दिया हो।[4]

यहाँ अश्रुबिन्दु तथा मुक्ताहार में साम्य प्रतिपादित कर, फिर अतिशयोक्ति द्वारा उसमें अभेद प्रतिपादित किया गया है। तत्पश्चात्, बिनासूत्र का हार पहना दिया इसमें विभावना का कथन किया गया है। इन अलङ्कारों (उपमा अतिशयोक्ति विभावना) से पर्यायोक्ति का अङ्गाङ्गिभाव है। अतः इनका (अलङ्कारों का) गुणीभाव होने से यहाँ गुणीभूतव्यंग्य है।

---

१ का० प्र० सूत्र २०७   २ कु० सं० १

३ लो०   ४ रघुवंश ६।२८

त्रयोदश सग मे सरयू नदी का वणन करते हुए राम कहते हैं—'माननीय महाराज दशरथ से वियुक्त मेरी माता के समान यह सरयू अपने शीतल पवन से प्रेरित तरङ्ग रूप हाथ को उठाकर माना दूर स्थित मुझे कण्ठ से लगाना चाहती है।[१]

यहाँ महाराज दशरथ एव सरयू मे साम्य द्वारा यद्यपि उपमा व्यग्य है, तथापि तरङ्ग रूप हाथ' म रूपक तथा 'मानो मुझे कण्ठ से लगाना चाहती हैं' म उत्प्रेक्षा रूप वाच्य को ही उपस्थित करने के कारण, उसका गुणीभूत भाव हो गया है।

मेघदूत म सङ्कर के अनेक स्थल प्राप्त होत हैं।

(१) यक्ष की विक्षिप्तावस्था का कथन करता हुआ कवि कहता है—कहाँ तो धूमाग्निमरुतसलिल के सम्मिलन से बना मेघ और कहाँ स देस को ले जाने वाले चतुर लोग। किन्तु यक्ष को इसका ध्यान कहाँ, अत वह अपना स देश ले जाने के लिय मघ से प्रार्थना करने लगा, क्योकि काम विक्षिप्त को जड-चेतन की सुध कहाँ रहती है।[२]

यहा मेघ एव स देश ले जाना—इन दो अनुरूप वस्तुओ के घटना का वणन होने से विषमालङ्कार है, और उत्तराध म अथा तर-यास का कथन किया गया है। इन दोनो अलङ्कारो की स्थिति होने से सङ्कर अलङ्कार है, जो गुणीभूत व्यग्य के अ तगत आता है।

(२) मेघ के विख्यात वश का कथन करता हुआ यक्ष कहता है— हे मेघ! विश्वमे प्रसिद्ध पुष्कर एव आवत नामक वश मे तुम्हारा ज म हुआ है। मैं यह भी जानता हूँ कि तुम इन्द्र के दूत तथा यथेच्छया रूप धारण करने म समथ हो। इसलिये प्रिया से दूर स्थित, मैं अभागा अञ्जलीबद्ध होकर तुमसे प्रार्थना कर रहा हूँ, क्योकि गुणी के सम्मुख हाथ फैलाकर भी निराश लौट आना श्रेयस्कर है, अधम स इच्छित फल प्राप्त करना ठीक नही।[३]

यहाँ मेघ के प्रियतर आख्यान का कथन होने से प्रेय अलङ्कार है तथा उत्तराध म मघ जैसे गुणवान से प्रार्थना करने का समथन होने से अर्थान्तर-यास है। इनकी स्थिति से सङ्कर अलङ्कार होने से गुणीभूत व्यग्य का स्थल माना जायगा।

---

१ रघुवश १३।६३

२ पू० मे० ५

३ पू० मे० ६

(३) मेघ से कहता है—'रात्रि समय जब कामिनी स्त्रियाँ अपने प्रमियो के समीप रात्रि में गमन करती हैं, तो उनकी वेणी सज्जित कल्पद्रुम के पुष्प एवं पग पग में स्थित स्वर्ण कमल, हार के मुक्ता इतस्ततः गिरकर बिखर जाते हैं। (प्रातः काल) जब सूर्य उदित होता है तो इन चिह्नों द्वारा उनके गमन मार्ग की सूचना मिल जाती है।'[1]

यहाँ नैश मार्ग की सूचना के लिए अलकादि से पतित मन्दार कुसुमादि आदि कारणों के उक्त होने के कारण समुच्चय अलङ्कार है तथा पथ में पतित मन्दार-कुसुमादि साधनों द्वारा अभिसारिकाओं के गमन का अनुमान होने से अनुमान अलङ्कार है। इन दोनों अलङ्कारों की स्थिति उपस्कार-उपस्कृत भावेन होने से सङ्कर अलङ्कार है जो गुणीभूत व्यंग्य का स्थल बन रहा है।

(४) अपने गृह का परिचय देता हुआ यक्ष कहता है—हे मेघ ! उस (वापी के) के तीर पर इन्द्रनीलमणि से रचित एक (कृत्रिम) पर्वत है—जो चारों ओर से स्वर्ण कदली से वेष्टित है। यह मेरी प्रिया को अत्यन्त प्रिय है अतएव विद्युत से युक्त तुम्हें देखता हूँ तो उन्मन हो जाता हूँ और उसी पर्वत का स्मरण करने लगता हूँ।[2]

यहाँ मेघ को देखकर क्रीडाशैल का स्मरण होने से स्मरण अलङ्कार है। अथच लोकातिशयी सम्पत्ति का वर्णन होने से उदात्त अलङ्कार है। इन दोनों की स्थिति होने से सङ्कर अलङ्कार है जो गुणीभूत व्यंग्य के अन्तर्गत आता है।

आचार्य आनन्दवर्धन के पश्चात् मम्मट ने विस्तार पूर्वक गुणीभूतव्यंग्य पर विचार किया और उसे आठ भागों में विभाजित किया—तुल्यप्राधान्य, सन्दिग्ध-प्राधान्य, काक्वाक्षिप्त असुन्दर व्यंग्य अपराङ्ग-व्यंग्य वाच्यसिद्ध्यङ्ग अगूढ़व्यंग्य, अस्फुट व्यंग्य।

इन्हीं में से किसी की भी स्थिति होने पर गुणीभूत व्यंग्य माना जायेगा। इनमें से एक दो का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

सन्दिग्ध प्राधान्य—

कुमार सम्भव के तृतीय सर्ग में पार्वती को देखकर शङ्कर की जो अवस्था हुई, उसका वर्णन करते हुये कवि कहता है—चन्द्र के उदय के आरम्भ में समुद्र के

---

१ उ० मे० ११ २ उ० मे० १७

(उद्वेलित हो उठने के) समान अधीर होकर शङ्कर ने बिम्बाफल के समान (रक्त-वर्ण) अधरोष्ठ से युक्त पार्वती के मुखमण्डल पर अपने तीनों नेत्र गड़ा दिये।[1]

शिव पार्वती का मुख-चुम्बन करना चाहते थे—यह प्रधानत्वेन व्यंग्य हो रहा है, अथवा वाच्य रूप नेत्रों का व्यापार (देखना) प्रधान है—यह सन्देहास्पद होने के कारण, यहाँ गुणीभूत व्यंग्य माना जायगा।[2]

कालिदास के काव्य में गुणीभूत व्यंग्य के स्थल बहुत कम प्राप्त होते हैं। सच तो यह है कि, महाकवि की लेखनी से जो भी श्लोक प्रसूत हुआ, वह ध्वनिकाव्य का ही उत्कृष्ट उदाहरण बन गया जिनमें किसी भाव या रस की ही प्राधान्येन व्यञ्जना होती है। अतः व्यंग्य का ही उनके काव्य में महत्त्व है। फिर भी यत्र तत्र जो भी उनके काव्य में गुणीभूतव्यंग्य के स्थल प्राप्त होते हैं, उन्हीं का विवेचन इस अध्याय में किया गया है।

---

१ कुमारसम्भव

२ का० प्र०, पृष्ठ २१०

सप्तम अध्याय

कालिदास की शैली मे व्यञ्जक योजना का वैशिष्ट्य

(क) कथानक की व्यजकता—

अक्षरादिरचनेव योज्यते यत्र वस्तुरचना पुरातनी ।
नूतने स्फुरित काव्यवस्तुनि व्यक्तमेव खलु सा न दुष्यति ॥[1]

काव्य मे पौराणिक कथानक का महत्व—

काव्य मे पौराणिक तथा एतिहासिक कथानक का महत्वपूर्ण स्थान होता है। मानव का अपने पुरातन देवो देवताओ तथा राजाओं के प्रति अटूट विश्वास एव प्रेम होता है। पुराणो मे प्राय एसे व्यक्तियो का चित्रण किया गया है, जो इसी मानव-समाज के अङ्ग थे इसलिए समाज उन पौराणिक वृत्तो मे अपने ही जीवन तथा अपनी ही कहानी का सत्य रूप मे पाता है। पौराणिक व्यक्तियो की प्रसिद्धि तथा लोकप्रियता का यही प्रधान कारण है कि वे कुछ एसे महत्वपूर्ण काय कर गए जो मानव-समाज के बहुत कुछ पथप्रदशन का काय करते हैं। अतीत की स्मृति केवल सुखकारी ही नहीं होती वह अत्यन्त मर्मस्पर्शी भी होती है। पुराण युग की जिन बातो को हम जानते समझते रहते हैं—उन्ही बातो को कवि जब अपनी भावना एव कल्पना के आधार पर मूर्त रूप प्रदान कर काव्यबद्ध करता है तो वे और भी सजीव एव मार्मिक हो उठती हैं और हम उनमे लीन हो जाते हैं। सत्य एव कल्पना के इस अद्भुत समन्वय की मनोग्राह्यता का ध्यान करके ही आचार्यों ने काव्य कथानक के लिये पौराणिक तथा इतिहास-प्रसिद्ध वृत्त की प्रधानता का निर्देश किया है। नितान्त कल्पित कथानक महाकाव्य के लिये उपयोगी नही माना जाता, क्योंकि ऐसे कथानक

---

१ ध्वन्यालोक ४।११६

म कवि के अपने उच्च आदर्शों से बहक जाने तथा काव्य के प्रमुख प्रयोजन एव प्रधान लक्ष्य (कान्तासम्मितयोपदेशप्रदत्व) से भ्रष्ट हो जाने का भय रहता है।

पौराणिक वृत्त काव्य का सहारा पाकर नव्य, भव्य, विश्वसनीय एव प्रभ-विष्णु बन जाता है। इस प्रकार का कथानक लोगो म काव्य के प्रति विश्वास उत्पन्न कराता है और पाठको को इस बात का विश्वास होता जाता है कि काव्य वर्णित यह सत्य इसी लोक का है। पौराणिक कथानक समाजगत आदर्शों को सजीवता से अनुरंजित कर देता है और कवि कल्पना को उडान के खोखल आकाश से प्रतीति-योग्यता के धरातल पर ला खडा करता है। जिससे हम उसके साथ साधारणीकरण तथा तादात्म्य स्थापित करने म बडा सुगमता होती है। यह सत्य है कि काव्य मे कल्पना का विशेष स्थान रहता है किन्तु प्रसिद्ध कथानक के आश्रय से वह उपहास का कारण नही बनने पाता।

काव्य मे पौराणिक तथा ऐतिहासिक वृत्त के रखने का एक विशेष कारण और है—वह यह है कि उनके अध्ययन मे पात्रो के जीवन एव स्वभाव के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है क्योकि उसका समग्र रूप हमारे सामने रहता है। यदि वर्तमान पात्र के जीवन का आश्रय लिया जाय तो उसका ठीक ठीक चित्रण नही हो सकता क्योकि किस व्यक्ति के आगामी जीवन मे क्या परिवर्तन होगा इसको नही जाना जा सकता। अतएव इस प्रकार के पात्र का संयोजन करने मे बडा भय रहता है, हो सकता है हम उसके चरित्र म जिस गुण का वर्णन करने जा रहे हैं—वह आगे चल कर उसके चरित्र मे न घटित हो तो इस स्थिति म काव्य विश्वसनीय न होने पायेगा—वह अविश्वसनीय तथा तिरस्कारयोग्य हो जायगा।

महाकाव्य मे किसी के सम्पूर्ण जीवन की प्रत्येक कथा का वर्णन नही किया जाता, अपितु कवि उसके जीवन का केवल उतना ही अंश उद्धृत करता है जितना काव्य रस विशेष के लिए उपयोगी होता है। इसीलिए आनन्दवर्धन का मत है कि विभाव, अनुभाव तथा सचारीभाव की उचित योजना द्वारा सुन्दर (प्रसिद्ध पौरा० ऐति० इत्या०) या कल्पित कथानक से युक्त प्रबन्ध ही रस का व्यंजक होता है। उसमे मनोनीत रस की प्रतिकूल घटनाओं का त्याग तथा अनुकूल घटनाओं की कल्पना भी की जा सकती है।[1] यदि उतने म ही वह अपने पात्रो के अभीष्ट चरित्र का समग्र रूप से प्रदर्शन कर सका तो मानो उसने पूर्ण सफलता प्राप्त कर ली। कालिदास के काव्यो का कथानक कल्पित भी है तथा ऐतिहासिक भी। रसभाव की

---

[1] ध्वन्यालोक ३।६६ ६७

व्यंजना के अनुकूल अनेक मनोरम प्रसङ्गों की महाकवि ने अनेक स्थलों पर कल्पना भी की है, जो न किसी पुराण में मिलते हैं न इतिहास में किन्तु फिर भी सर्वथा समीचीन लगते हैं अस्तु !

कुमारसम्भव—

शिव एवं पार्वती की कथा प्राचीनकाल से प्रसिद्ध रही है। वाल्मीकि रामायण में शिव द्वारा काम भस्म की कथा का उल्लेख मात्र किया गया है। राम द्वारा आश्रम के विषय में पूछे जाने पर गुरु विश्वामित्र कहते हैं—हे राम! सुनो यह किसका आश्रम है। पहले कन्दर्प अर्थात् कामदेव मूर्तिमान था। एक समय यहीं हो शङ्कर भगवान व्रत लेकर तप करते थे, तब उस दुर्बुद्धि काम ने उन पर आक्रमण करके उनके मन में विकार उत्पन्न कर दिया। तब महात्मा शिव ने हुङ्कार करके उसकी *ओर देखा जिससे शरीर के सब अङ्ग गल गलकर गिर पड़े। इसी आश्रम पर उसका* शरीर नष्ट हुआ था, या यों कहिये कि देवेश्वर शङ्कर जी ने क्रोध कर यहीं हो उसे अनङ्ग किया था।

पुराणों में भी इस शिव पार्वती की कथा का उल्लेख हुआ। मत्स्य-पुराण में काम को भस्म करने वाले शिव का वर्णन है। स्कन्द पुराण में शिव-पार्वती की कथा विस्तृत रूप में आयी है—पार्वती भगवान् शिव की सेवा कर रही थी। उसी समय वसन्त के साथ काम ने उनके मन में विकार उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। कारण जानने पर शिव अत्यन्त क्रोधित हो उठे और उन्होंने अपनी क्रोधाग्नि से काम को जला कर भस्म कर दिया। यह रौद्रदृश्य देखकर पार्वती ने भयाकुल होकर अपने नेत्र बन्द कर लिए और शिव वहीं से अन्तर्हित हो गये।[3]

शिवपुराण में तो पार्वती का शिव की सेवा करना, शिव द्वारा कामदेव को भस्म कर देना, पार्वती द्वारा शिवप्राप्ति निमित्त घोर तपस्या करना, तत्पश्चात् उनका विवाह सम्पन्न होने इत्यादि का विस्तार के साथ वर्णन हुआ है।[4]

इन स्थलों को देखकर विद्वानों का ऐसा मत है कि कालिदास ने शिवपुराण तथा स्कन्दपुराण से अपनी कथा सामग्री ली है किन्तु अब यह निर्णीत हो चुका है कि यह परवर्ती युग की रचनायें हैं और इनमें कालिदास का ही अनुसरण किया गया

---

१ वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड २३वां सर्ग ११।१२।१३

२ मत्स्यपुराण श्लो०नं० ३ पृष्ठ २५०

३ स्कन्दपु० ८।८७ ४ स्कन्दपु० पृ० ६२४

है। 'मत्स्य पुराण' का समय अवश्य कालिदास से पूर्व माना गया है किन्तु उसमें इस कथा का विस्तार नहीं दिखाई पड़ता केवल एक स्थान पर-काम को भस्म करने वाले शिव का उल्लेख मात्र हुआ है। हाँ वाल्मीकि रामायण से कालिदास ने किंचित प्रेरणा अवश्य ग्रहण की होगी किन्तु कला की दृष्टि से कालिदास ने उसमें परिवर्तन करना आवश्यक समझा।

इस प्रकार कवि ने 'कुमारसम्भव' की कथा सामग्री प्राचीन स्रोतों से ग्रहण की है—किन्तु प्रेम का जैसा ममस्पर्शी एवं प्रभावोत्पादक चित्रण किया है—उसके लिए वह किसी भी परम्परा का ऋणी नहीं है। काव्य में जो विविध घटनाओं का गुम्फन हुआ है—वह कालिदास की अपनी काव्य-कला प्रतिभा है।

काव्य के नायक नायिका साधारण मानव स्तर पर वर्णित होते हुए भी अलौकिक शक्ति सम्भूत हैं। एक हैं जगत्पिता शिव, दूसरी जगन्माता पार्वती। कालिदास की भावना के अनुसार उनके लिए पार्वती परमेश्वर जगत के माता पिता थे। काव्य में वर्णित उनका विवाह साधारण स्त्री पुरुष का विवाह नहीं है (अपितु दर्शन के शब्दों में) वह आत्मा का परमात्मा से तथा पुरुष का प्रकृति से मिलन का प्रतीक है। वह जगत् के स्रष्टा पुरुष का जगत् की जननी प्रकृति के साथ मिलन है। उनकी कथा के माध्यम से सर्वत्र, त्याग और भोग तप एवं विलास में सामंजस्य स्थापित करना ही कालिदास का महान उद्देश्य रहा है।

हिमालय के द्विविध रूप का वर्णन—

काव्य का प्रारम्भ हिमालय के भव्य वर्णन से हुआ है। कवि ने उसके जङ्गम तथा स्थावर दोनों रूप का कथन किया है। हिमालय के उत्तुङ्ग शिखर हिम-मण्डित हैं, वहाँ नाना रत्न तथा विविध औषधियाँ उत्पन्न होती हैं। अनेक धातुओं वाले उसके शिखर इस प्रकार शोभित होते हैं—मानो रङ्ग विरङ्गे मेघखण्डों से मण्डित अकाल सन्ध्या वहाँ स्थिर हो गयी हो। चाँदनी के समान शुभ्र पूँछ वाली चमरी गायें इतस्ततः भ्रमण करती हैं।[1]

हिमालय के स्वरूप वर्णन के माध्यम से तप विलास में सामंजस्य उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया है हिमालय पर एक ओर जहाँ किन्नरगण अपनी प्रियतमाओं के साथ केलि क्रीडा में मग्न हैं वहीं दूसरी ओर योगी तथा तपस्वी लोग ध्याना-वस्थित तपस्या कर रहे हैं। हिमालय की ही एक चोटी 'कैलाश' पर भगवान शङ्कर भी अपनी पवित्र समाधि लगाए घोर तपस्या कर रहे हैं। तप और विलास का यह

---

१ कुमारसम्भव १।४ ६

वर्णन बड़ा ही सार्थक तथा कवि की भावना के अनुसार है। कारा तप असफलता का कारण समझा जाता है और कोरा विलास अनिष्ट का सूचक होता है। इसलिए भारतीय संस्कृति दोनों के सामंजस्य में विश्वास रखती है। कालिदास ने सम्पूर्ण काव्य में तप प्रेम में साहचर्य उपस्थित किया है इसलिए प्रारम्भ में ही वह इस ओर संकेत करता है जिससे आगे चलकर उसका यथेष्ट पल्लवन हो सके।

नख शिख वर्णन—

कवि की अनुपम काव्य कला, नवयौवना पार्वती के नख शिख के चित्रण में प्रस्फुटित हुई है। वह कन्या क्या थी ब्रह्मा की एक मात्र अनुपम सृष्टि थी। उनको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि विधाता के चित्त में यह कुतूहल हुआ कि संसार के समस्त सौन्दर्य को यदि एक स्थान पर एकत्र किया जाए तो वह कैसा हो? इसीलिये उन्होंने उसके एक-एक अङ्ग को बड़े यत्न से रचना की थी। विधाता ने लावण्योत्पादक जितनी सामग्री एकत्रित की थी वे सभी पार्वती की गोल और सुडौल जांघों के निर्माण में ही समाप्त हो गया था इसलिये शेष अङ्ग की रचना के निमित्त उन्हें और सौन्दर्य विधायक उपकरणों को जुटाने में अत्यधिक कष्ट उठाना पड़ा।[२] पार्वती के रूपवर्णन में कवि की मनोहर कल्पना का मनोरम उन्मीलन हुआ है। प्रारम्भ में ही पार्वती के अनुपम सौन्दर्य के वर्णन का विशेष प्रयोजन है। यदि वह अनुपम सुन्दरी नहीं होगी तो समाधिस्थ शिव को अपनी ओर आकर्षित न कर सकेगी। तपोभूमि में भी जब काम शिव के दिव्य रूप को देखकर भयभीत हो जाता है तो उस पार्वती के आनन्दित सौन्दर्य का ही सहारा मिलता है। इसलिए कवि पार्वती के विषय में और कुछ कहने से पहले उनकी अपूर्व रूप राशि का वर्णन करना श्रेयस्कर समझता है।

पार्वती के प्रेम का बीजारोपण—

एक दिन पार्वती जब अपने पिता के समीप बैठी हुई थी तभी ऋषि नारद का सहसा आगमन होता है और वे नवयौवन में पदार्पण करती हुई पार्वती को देखते हैं एवं इस बात की उद्भावना करते हैं कि वह पूर्वजन्म में भी शिव जी की पत्नी थी और अब भी उनका विवाह उन्हीं के साथ होगा। नारद की यह उक्ति पार्वती के प्रेम के उद्दीपन का कार्य करती है और शिव के प्रति उनके हृदय में प्रेम का बीजारोपण करने में सहायक सिद्ध होता है। उनका हृदय शिव के प्रति आकर्षित होने लगता

---

१ कुमारसम्भव १।४८ २ कुमारसम्भव १।३५
३ वही ४ वही, १।५०

है और वह पिता की आज्ञा लेकर सखी के साथ शिव जी की सेवा करने लगती हैं। यद्यपि जितेन्द्रिय शिव को यह अच्छा नहीं लगता है, किन्तु वे उनकी भक्ति भावना को ठेस न पहुँचाना चाहते थे—इसलिये उन्हें अनुमति दे देते हैं क्योंकि जो सच्चा धीर महात्मा होता है उसका मन विकार उत्पन्न करने वाली वस्तुओं के बीच रहकर भी विचलित नहीं होता।[1]

शिव-पार्वती के इस प्रसङ्ग को अधिक विस्तृत रूप न देकर-कवि यहीं समाप्त कर देता है और वृत्रासुर द्वारा त्रसित देवताओं का ब्रह्मा के साथ गमन का कथानक उपस्थित करता है, जो कामदेव को शङ्कर के समक्ष उपस्थित होने का हेतु बनता है।

उत्पीड़ित देवगण ब्रह्मा से करुण स्वर में प्रार्थना करते हैं कि 'हे ब्रह्मन्! आप हमारे कष्ट का निवारण कीजिये। ब्रह्मा उन्हें आश्वासन देते हैं और कहते हैं—महादेव के वीर्य से उत्पन्न होने वाला पुत्र ही इस भयङ्कर असुर का संहार करने में समर्थ होगा। आप लोग कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे समाधि में लगे हुये शङ्कर का मन पार्वती के रूप की ओर आकर्षित हो जाय। यह सुन इन्द्र को किञ्चित धैर्य मिलता है और वह कामदेव का स्मरण करते हैं।

कामदेव

इन्द्र की आज्ञा से कामदेव उनके दरबार में उपस्थित होता है। इन्द्र उससे प्रार्थना करते हैं कि तुम कोई ऐसा उपाय करो जिससे शिव जो आत्मा को परमात्मा के ध्यान में लीन कर समाधि लगाए बैठे हैं उनका हृदय हिमवान की कन्या पार्वती की ओर आकर्षित हो जाये—जो उनकी सेवा कर रही हैं। इस कार्य के लिये सब देवता तुमसे अनुनय कर रहे हैं।

यह सुनकर कामदेव घबरा जाता है क्योंकि शिव जी जैसे योगी एवं हठी मन वाले की समाधि भङ्ग करना कोई अच्छा काम न था किन्तु देवताओं की भलाई का विचार कर आज्ञा पालक सेवक की भाँति 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा का पालन करता हुआ शिव की तपोभूमि में पहुँचता है।

वसन्त का आगमन—

कामदेव ने वसन्त के साथ शिव की योग भूमि में असमय में जिस उद्दाम एवं उन्मत्त वातावरण की सर्जना की—वह यद्यपि कथानक के विकास के अनुकूल था, किन्तु नैतिक न था।

---

१ कुमारसम्भव १।५९ २ कु० स० २।५७।५६

सम्पूर्ण कुमारसम्भव में कवि का यही कार्य अनैतिक एवं अनुचित समझा जाता है। किन्तु अनैतिक क्या ? कवि इसके लिए पहले से ही सावधान है उसने पहले ही यह स्पष्ट कर दिया है कि इस कार्य में कामदेव की कोई स्वेच्छा एवं स्वार्थ नहीं है। उसने देवताओं के कल्याण एवं वृत्रासुर के अत्याचार में त्राहि त्राहि करती हुई प्रजा के सुख के लिये यह कार्य किया है और जो कार्य परसुख एवं कल्याण के लिए किया जाता है जिसमें व्यक्ति का अपना कोई स्वार्थ निहित नहीं रहता—वह कार्य कभी भी अनैतिक नहीं होता अनुचित नहीं होता। सबसे बड़ी बात तो यह है कि कामदेव एक देवता हैं और देवता भोग जो कार्य करते हैं—वह सदैव दूसरों की भलाई के लिए ही करते हैं। यही है महाकवि के उद्देश्य की गरिमा। देव स्तुति की इस कथा का रखने का विशेष कारण है। वस्तुत यह प्रसङ्ग शिव-पार्वती के विवाह एवं कार्तिकेय के जन्म के निमित्त रूप में आया है। शिव पार्वती से विवाह उनकी रूपासक्ति से आकर्षित हो नहीं करते, बल्कि लोक-कल्याण एवं देवताओं की इच्छा से करते हैं क्योंकि उनके लिए व्यक्तिगत सुख का कोई महत्व नहीं है।

कामदेव दहन और उसका प्रतीकार्थ—

मन में विकार उत्पन्न करने वाले कामदेव के इस कार्य से शिव जी बड़े ही क्रोधित होते हैं और अपने क्रोध की ज्वाला से उसे जलाकर क्षणभर में भस्म कर देते हैं। कवि द्वारा वर्णित काम-दहन का अपना एक विशिष्ट अर्थ है।

मानव न केवल शरीर इन्द्रिय है न केवल मन है और न केवल मानसिक विचार। अपितु पूर्ण मानव शरीर-इन्द्रिय मन तथा आत्मा की समष्टि है। उसी प्रकार प्रेम के भी तीन स्वरूप या तीन स्तर हो सकते हैं। (१) शारीरिक ऐन्द्रिक या वासनात्मक प्रेम (फिजिकल लेवल आफ लव)। (२) मानसिक प्रेम (इमोशनल इन्टलेक्चुअल लेवल आफ लव)। (३) आध्यात्मिक प्रेम (स्पिरिचुअल लेवल आफ लव)। जब प्रेम का उत्स शारीरिक या ऐन्द्रिक सौन्दर्य पर आधारित होता है तब ऐसा प्रेम केवल पाशविक प्रेम होता है और स्वस्थ दृष्टि रखने वाले मानव का कर्तव्य है कि अपनी आध्यात्मिक ज्योति से ऐसे वासनात्मक प्रेम को भस्मीभूत कर दे।

कुमारसम्भव में वर्णित 'कामदहन' में प्रथमतः काम इसी एन्द्रिक-वासनात्मक या पाशविक प्रेम का प्रतीक है। विश्व सुन्दरी पार्वती के रूप वर्णन मात्र से शिव के मन में प्रेम या काम उत्पन्न होता है। पार्वती के अनुपम सौन्दर्य से जो आकर्षण प्रस्फुटित होकर शिव के मन में हलचल उत्पन्न करता है, वही काम के बाण हैं। पार्वती के मन और आत्मा का परख किये बिना, मात्र बाह्य रूप सौन्दर्य से शिव के

मन मे काम का जागरण होता है। इसका सामना करने के लिए शङ्कर की सारी आध्यात्मिक ज्योति जग उठती है और जगी काम भावना सुदृढ मानसिक तथा आध्यात्मिक अग्नि से भस्मीभूत हो जाती है। कुमारसम्भव मे 'कामदहन' का यही गूढार्थ है। 'कामदहन' के माध्यम से महाकवि कालिदास ने मानो उदात्त प्रेम भावना की व्यजना की और स्वस्थ मानव प्रेम का सन्देश दिया। महाकवि के अनुसार, जो प्रेम केवल वाह्यरूप सौन्दर्य से उत्पन्न होता है बिना मन-आत्मा की निष्ठा के, वह विकार है, निकृष्ट है, अतएव ऐसे काम के वशीभूत न होकर, स्वयं सयम को उसका दहन करना चाहिये। किन्तु जब अन्तःकरण की निष्ठा, अनन्यता स्थिरता तथा आध्यात्मिकतापूत भावना से प्रेम उत्पन्न हो, तब ऐसा काम 'स्वस्थ काम' है और वह दो निष्ठावान आत्माओ के ऐक्य का सम्भूत प्रतिफलन है अतएव स्पृहणीय है। महाकवि कालिदास इसी पूर्ण प्रेम के समर्थक हैं। रूप दर्शन मात्र से जिनमे प्रेम उत्पन्न होता है कालिदास उन सभी पात्रो को तपोधनी बनाते हैं और तपस्या के पश्चात जब मन-आत्मा शुद्ध हो जाते हैं, तभी 'स्वस्थ काम' का समर्थन करते हैं। दुष्यन्त शकुन्तला के प्रथम मिलन मे भी रूपाकर्षण की प्रमुखता है। यही कारण है कि कालिदास शकुन्तला से तप करवाते हैं तब जाकर अन्त मे तपोवन मे शकुन्तला और दुष्यन्त का पुनर्मिलन होता है।

कुमारसम्भव मे वर्णित, 'कामदहन' और फिर काम पुनर्जीवन मे इसी स्वस्थ, उदात्त, परिपूर्ण प्रेम की अभिव्यजना की गई है। यदि इन्ही दोनो पक्षो के गूढार्थ समझ लिया जाए तो न 'कामदहन' आलोचनीय है और न विवाहोपरान्त शिव-पार्वती विलास ही निन्दनीय है। दोनो पूर्ण तथा उदात्त मानवीय प्रेम के आवश्यक अङ्ग हैं। इस प्रसङ्ग के माध्यम से कालिदास का प्रेम सन्देश या प्रेम-दर्शन आज भी उतना ही सत्य है, जितना प्राचीनकाल मे था।

रूप सौन्दर्य मात्र से सच्चे प्रेम की प्राप्ति नहीं हो सकती—

कामदेव के अनैतिक कार्य से शिव बड़े ही खिन्न हो जाते हैं और अपने सहचरो के साथ पार्वती की उपेक्षा करके शीघ्र ही उस स्थान से अन्तर्हित हो जाते हैं। यह देख कर पार्वती दुःखी एव लज्जित होती हैं शिव ने उनकी सखियो तथा पिता के सम्मुख उनके रूपाकर्षण का साक्षात निरादर किया है यह देख पार्वती इस बात को भली प्रकार समझ लेती हैं कि शिव वाह्य सौन्दर्य मात्र से आकर्षित होने वाले साधारण पुरुष नहीं हैं। अतः वह कठोर साधना और तपस्या द्वारा उन्हें प्राप्त करने का निश्चय करती हैं। कवि वाह्य सौन्दर्य से उत्प्रेरित प्रेम को सदैव निम्न मानता रहा है इस प्रकार के प्रेम मे स्थायित्व का लेश भी नहीं होता।

भारतीय संस्कृति में प्रेम का स्वरूप बड़ा ही उच्च है। वह हृदय की सच्ची भावना पर आधारित प्रेम का समर्थन करता है। कालिदास भी हृदय की भावना से पवित्र एवं निश्छल रूप में उत्प्रेरित प्रेम को ही सर्वोच्च मानते हैं।

रति का प्रसङ्ग और करुण रस—

कालिदास ने जहाँ पार्वती के माध्यम से प्रेम का आदर्श रखा वहीं दूसरी ओर रति के माध्यम से प्रेम की पत्यानुरक्तता तथा पतिव्रता नारी के आदर्श को उपस्थित किया है। पति की मृत्यु के उपरान्त वह विधि को कुछ नहीं कहती सारा दोष अपने को देती है और सोचती है कि मुझ से ही कर्म क्षेत्र में किसी प्रकार की त्रुटि हुई है जिससे काम उसे सहसा ही छोड़ कर चला गया है।

यही है नारी का उच्चादर्श। पति की मृत्यु के पश्चात् रति का अब इहलोक में रह ही क्या गया था। भारतीय पतिव्रताओं का सर्वस्व तो पति की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाता है। यह कालिदास के युग की संस्कृति का प्रभाव था और हमारी भारतीय सनातन धर्म। उस युग में स्त्रियाँ पति की चिता पर जल कर भस्म हो जाती थीं।

रति का यह प्रसङ्ग जहाँ एक ओर पतिव्रता नारी के उच्च आदर्शों का व्यञ्जक है, वहीं दूसरी ओर करुण रस की मार्मिक व्यञ्जना भी कराता है।

पार्वती तपस्या—

मानवीय धरातल पर स्थित पार्वती साधना के क्षेत्र में प्रवेश करती है। अपने रूप की महत्ता रखने वाली पार्वती जो अब तक यह समझती थी कि संसार में रूप की आवश्यकता है वही आज मानसिक एवं शारीरिक तप को सुन्दर देखने लगती है जिसके द्वारा प्रदत्त समस्त सुख-वैभव को त्याग कर हाथ में रुद्राक्ष की माला व वल्कल धारण कर साक्षात् साध्वियों का वेश बनाकर तप करना प्रारम्भ करती है। कवि कहता है— जो कभी अनायास पुष्प-शयन पर जाया करती थी वही अब मुनियों के समान कठोर भूमि शयन में तत्पर हो गई है। उसका शरीर भी समस्त आकर्षण का केन्द्र था आज कुम्हलाकर श्यामल सा हो गया है। शिव के वियोगानल में जल रही पार्वती जिसे चन्दन के लेप तथा हिम से ढकी ठण्डी चट्टानों में भी चैन नहीं मिलता था[2] उसे ही अब जेठ की दुपहरी में पञ्चाग्नि के मध्य बैठी देख कर बड़ा आश्चर्य होता है।[4] वर्षा की अँधियारी रात्रि विद्युत् की ... आँखों में पार्वती

---

१ कुमारसम्भव ५।८
२ कुमारसम्भव ५।११
३ वही ५।५५
४ वही ५।२०

की उग्र तपस्या को देख, दयार्द्र हो आसू बहाने लगती है। पार्वती की सारी तपस्या शिव की प्राप्ति के लिए उपायभूत है। कवि यह कहना चाहता है कि जो पार्वती केवल ऐश्वर्य के वातावरण मे पालित थी, वे केवल कोमलाङ्गी ही नही अपितु घोर तपस्या भी कर सकती हैं जिसे देखकर शिव का आसन भी डोल जाता है।

सच्चे प्रेम का शिव पर प्रभाव—

पार्वती की एकनिष्ठ तपस्या के वशीभूत होकर, शिव स्वय ब्रह्मचारी का वेष बनाकर-परीक्षा लेने के लिए पहुँचते हैं, तो अतिथि सत्कार करने वाली पार्वती बडे सम्मान पूर्वक उनका सत्कार करती हैं।[१] अन्य प्रेमी शङ्कर जो एक दिन उनके सुकुमार सौन्दर्य का तिरस्कार करके चले गये थे, वे इस बात को अच्छी प्रकार जान लेते हैं कि पार्वती ऐश्वर्य-वैभव तथा इन्द्रादि लोकपालो के दिव्य रूप की आकाक्षा नही है[२] वे तो मन-वचन से केवल शिव को ही चाहती हैं और मन ही मन शिव के चरणो मे अपना सर्वस्व समर्पित कर चुकी हैं। वे उनकी तनिक भी निन्दा नही सुन सकती। यह देख शिव बडे प्रसन्न होते हैं और अपने वास्तविक रूप को प्रकट कर देते हैं। और कहते हैं—'तुमने अपनी तपस्या से जिसे जीत लिया है यह वही तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हैं।'[३]

यह था पार्वती की कठोर साधना का परिणाम। उनकी कठोर तपस्या जितना इस बात पर जोर नही देती कि तप से उन्हे कष्ट हुआ, जितना इस बात पर कि पार्वती का प्रेम एकनिष्ठ और अनन्य है। उन्होने अपने हृदय की सारी भावनाओ को शिव के ध्यान मे ही लगा दिया है। पहले वाला उनका चचल मन, तप की भीषण अग्नि मे तपकर स्थिर और एकाग्र हो गया है और जैसे ही उनका चित्त एकाग्र हुआ वैसे ही श्रेय और प्रेय के प्रतीक शङ्कर की उन्हे प्राप्ति हो जाती हैं।

प्रेम के सम्मुख पार्वती अपना कर्तव्य नही भूली—

पार्वती ने अपनी साधना से शिव के स्नेह को प्राप्त कर लिया था किन्तु प्रेम के प्रति एकनिष्ठ होते हुए भी माता पिता के प्रति अपने कर्त्तव्य को नही भूली। इस प्रकार पार्वती जीवन मे एक आदर्श कन्या रूप मे चित्रित की गयी हैं। यही कालिदास का आदर्श रहा है। उनकी नायिकायें स्वतन्त्र नहीं हो पायी हैं। पार्वती

---

१ कुमारसम्भव ५।३१ २ कुमारसम्भव ५।४३
३ वही ५।८६

सामाजिक नियमों को विशृङ्खलित नहीं होने देती। वह सप्तर्षियों द्वारा कहलवा देती है कि यदि आप मुझसे विवाह करना चाहते हैं तो मेरे पिता पर्वतराज हिमालय से प्रार्थना कीजिये।" पार्वती ने अपना हृदय तो शिव को समर्पित कर ही दिया है किन्तु शरीर पर अपने पिता का अधिकार समझती हैं। लोक की मर्यादा और समाज का नियम भी यही है।[1]

सप्तर्षिगण का हिमालयराज के पास गमन—

सर्वात्मा शिव क्या नहीं कर सकते थे किन्तु समाज की मर्यादा का पालन करना उन्होंने उचित समझा। इसलिए वे सप्त ऋषि गणों को आदर सहित बुलाते हैं और कहते हैं— हे मुनिगण! आप लोग जानते हैं कि हम अपने लिए कुछ नहीं करते। हमारी आठों मूर्तियाँ (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, होता) इस बात की साक्षी हैं। जैसे प्यासे चातक, बादलों से जल की बूँदें माँगते हैं, वैसे ही शत्रुओं से सताए हुए देवता लोग भी मुझसे पुत्र उत्पन्न कराना चाहते हैं। इसलिए पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से, मैं पार्वती जी को उसी प्रकार लाना चाहता हूँ जैसे अग्नि उत्पन्न करने के लिए यजमान अरणि लाता है। आप लोग मेरी ओर से हिमालय से पार्वती को माँग लाइये। यद्यपि सज्जन लोग बीच में पड़कर जो सम्बन्ध कराते हैं—उसमें बाधा नहीं होती, फिर ऐसे ऊँचे प्रतिष्ठा वाले और पृथ्वी को धारण करने वाले हिमालय से सम्बन्ध करके मैं भी अपने को धन्य समझूँगा।[2]

यह सुनकर ऋषिगण उनकी प्रशंसा करते हैं और शीघ्र ही हिमालय के पास पहुँचते हैं।

पिता का आदेश—

ऋषिगण शिव का शुभ सन्देश हिमालय राज से निवेदन करते हैं तो वे बड़े ही प्रसन्न होते हैं। किन्तु उनके द्वारा विवाह के लिए पुत्री एवं पत्नी से भी स्वीकृति लेना उनके सद्गृहस्थ होने का परिचायक है।

इसके पश्चात् पार्वती का जो विस्तृत रूप वर्णन है वह विवाह का अङ्ग है तथा पार्वती के सौन्दर्य को बढ़ाने के लिये है जिससे उनका एक उदात्त रूप सामने आता है।

इसके पश्चात् कथानक का विकास विवाह की तैयारी, बारात के प्रस्थान तथा शिव के रूप सौन्दर्य के माध्यम से विकसित हुआ। विवाह के समय के समस्त

---

१ कुमारसम्भव ६।१

२ कुमारसम्भव ६।२६ ३० तक

माङ्गलिक क्रियाओं का वर्णन कुमारसम्भव में हुआ है जिससे तत्कालीन संस्कृति एवं सामाजिक रीति रिवाजों का स्पष्ट ज्ञान होता है।[1] बारात के आने से पूर्व पार्वती का सर्वांङ्ग शृङ्गार किया जाता है, माँ उनके हाथ में कङ्कन बाँधती हैं। फिर विवाह के सब रीति रिवाजों को जानने वाली मैना अपने कुल का यश बढ़ाने वाली पार्वती जी से सब कुल के देवताओं को प्रणाम करवाती हैं और फिर सब सखियों के पैर छुवाती हैं।[2] यह सब कुछ तत्कालीन समाज में प्रसिद्ध वैवाहिक पद्धति का उज्ज्वल स्वरूप हो है।

शिव शृङ्गार वर्णन—

कवि ने शिव के शृङ्गार का बड़ा ही उचित समय में वर्णन किया है। प्रारम्भ में कवि ने उनके जिस दिव्य रूप को समक्ष उपस्थित किया है वहाँ उनके शृङ्गारवर्णन का कोई अवसर न था किन्तु जब अवसर मिला तो शिव का शृङ्गारवर्णन भी बड़ी तन्मयता के साथ किया, क्योंकि विवाह सौन्दर्य का राजप्रासाद है। मङ्गल सामग्रियों के स्पर्श मात्र से ही उनके शरीर पर पुती हुई चिता की भस्म, अङ्गराग बन गया, कपाल, गले के सुन्दर आभूषण बन गए, हाथी का चर्म, रेशमी वस्त्र बन गया और आँचल में गोरोचन से हंस के जोड़े छप गए। उनके मस्तक का नेत्र हरताल का सुन्दर तिलक बन गया। और सो और अङ्गों के सर्प भी उन उन अङ्गों के आभूषण बन गए और फणों के मणि चमकने लगे। चन्द्रमा उनका चूड़ामणि बन गया। फिर नन्दी के हाथ का सहारा लेकर सिंह की खाल बिछी हुई, बैल की पीठ पर बैठ तो, मानो शिव जी में भक्ति के कारण कैलास ने अपने रूप को छोटा बना लिया हो। सूर्य ने छत्र का काम किया गङ्गा-यमुना ने चवर डुलाया और विष्णु ने जय जयकार करके उनकी महिमा को और भी बढ़ा दिया।[3]

शिव के शृङ्गार वर्णन के माध्यम से उनकी महिमा एवं दिव्य स्वरूप की ही व्यंजना हुई है। इतना ही नहीं उनके शृङ्गार के साथ उनकी वरयात्रा की शोभा भी दैवी सम्पत्तियों से भरी थी।

इसके पश्चात् शिव पार्वती का विवाह एवं उनकी विलास क्रीड़ाओं का सर्वाङ्गीण वर्णन किया गया है। कवि ने अष्टम सर्ग में अपने इष्ट रस शृङ्गार को बड़ा विस्तृत रूप प्रदान किया है। विद्वानों ने इस शृङ्गार को अति मानवीय स्तर पर चित्रित

---

१ कुमारसम्भव ६।५८-६८ २ कुमारसम्भव ७।२५, २६

३ वही, ७।३१ ४३ तक

होने के कारण लोग पूर्ण कहते हैं किन्तु यदि हम विचार करें, तो यह सर्वथा निर्दोष पूर्ण शृङ्गार का वर्णन लगता है। कवि ने एक साधारण स्त्री-पुरुष के शृङ्गार का वर्णन नहीं किया है अपितु यह जगत्पिता शिव एवं जगन्माता पार्वती का शृङ्गार वर्णन है। यह वह शृङ्गार है जिसके लिए देवताओं को ब्रह्मा से स्तुति करनी पड़ी और जिसके लिए कामदेव को भस्म होना पड़ा। पार्वती ने अपनी घोर तपस्या द्वारा शिव को प्राप्त किया था। उचित कवि ने उनकी काम क्रीड़ा का स्पष्ट वर्णन किया है। शिव पार्वती का विवाह संसार कल्याण एवं गुरुजनों के आशीर्वाद के फल-स्वरूप हुआ है — इसलिए उनका यह काम सर्वथा दोष रहित और आदर्शमय है।

कालिदास के समय तक लोग … में शिव पार्वती के प्रणय का वाद नहीं था इसलिए कालिदास ने स्वामी शिव-पार्वती की प्रणय कथा को काव्यबद्ध करने में असीम साहस का परिचय दिया। कवि ने यहाँ भी उनके भावाभिव्यञ्जना को उत्तेजित नहीं किया बल्कि प्रणय क्रिया को ही नितान्त उदात्त स्तर पर चित्रित किया है। यह सब कुछ महाकवि की प्रतिभा का ही परिणाम है।

इस प्रकार कुमारसम्भव के कथानक-संयोजन में घटनाओं के विकास में कवि ने अपनी कारयित्री तथा भावयित्री प्रतिभा का परिचय दिया है। काव्य का कथानक शृङ्गार रस की व्यञ्जना एवं कवि के उद्देश्य की व्यञ्जना में पूर्ण समर्थ है।

रघुवंश—

रघुवंश एक चरित्र प्रधान महाकाव्य है। इसमें रघुवंशी राजाओं के आदर्श चरित्र का विस्तार से वर्णन किया गया है। दिलीप, रघु, अज, राम इत्यादि सभी सूर्यवंशी राजाओं के माध्यम से मानव जीवन के सर्वाङ्गीण पक्षों का उत्तम चित्रण हुआ है। रघुवंश का प्रत्येक राजा अनुपम शौर्य का आदर्श प्रतीक है एवं शास्त्रानुशासन न्यायपरायणता, औदार्य, क्षमाशीलता, प्रजानुरंजन, शासन कुशलता, दृढ़चरित्र, यथा समय धर्म-पालन, अतुल-तपस्या, निःस्वार्थी मुमुक्षुवादी ये सभी उदात्त गुण उन सम्राटों के चरित्र में विद्यमान हैं।

दिलीप और उनकी गो सेवा—

महाराज दिलीप प्रजा पालक एवं धर्म के महान् रक्षक हैं। पुत्र विहीन होने के कारण, वे वशिष्ठ ऋषि की आज्ञा से अपनी भार्या सहित पुत्र लाभ हेतु बड़ी भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक नन्दिनी की सेवा करने लगते हैं। इतना ही नहीं सिंह के समक्ष वे नन्दिनी के प्राण रक्षा हेतु अपना शरीर दान देना भी स्वीकार कर लेते हैं।

दिलीप का इस गौ-सेवा एव अनुपम भक्ति का ऐसा अनूठा वृत्तान्त अन्य किसी भी ग्रन्थ मे नहीं पाया जाता। यह कवि का प्रतिभा की नितान्त मौलिक सूझ है जिसे उसने दिलीप के धर्मवीर स्वरूप की व्यजना के लिए निबद्ध किया। अन्त मे उनके द्वारा सौवा अश्वमेध यज्ञ करना उनकी धार्मिक आस्था को व्यजित करता है। काव्य का नाम 'रघुवश' देखकर पाठको को यह शङ्का हो सकती है कि काव्य का प्रारम्भ रघु के वर्णन से होना चाहिए, फिर दिलीप का प्रसङ्ग पहले क्या रखा गया ?

इस विषय मे पहले भी निर्दिष्ट किया जा चुका है कि काव्य मे दिलीप का वर्णन वस्तुत रघु के हेतुभूत रूप मे किया गया है जिससे उनके महान् आदर्शों का सक्रमण रघु के जीवन में सरलता से किया जा सके। (प्रवर्तिता इव दीप प्रदीपात्) ऐसे उच्च आदर्शों वाले पिता का पुत्र भी अवश्य उच्चादर्शों से युक्त होगा।

रघु-इन्द्र युद्ध एव कौत्स का आगमन—

रघु इस काव्य के सर्वशक्तिशाली स्तम्भ हैं। कवि ने विविध प्रसङ्गो की योजना कर युद्ध दान एव धर्म तीनो प्रकार के वीर की व्यजना रघु के माध्यम से की है। इन्द्र के साथ युद्ध कर उन्होने जिस साहस एव अपूर्व रण-कौशल का परिचय दिया—वह उनके वीर चरित्र के सर्वथा अनुकूल है। रघु चतुर्दिशाओ मे एकछत्र राज्य की स्थापना करते हैं, किन्तु विरोधी राजाओ के साथ युद्ध करते समय भी वे धर्म का पल्ला नही छोडते।[1] इस प्रकार यह दोनो ही प्रसङ्ग रघु के युद्ध कौशल के व्यजक हैं।

रघु की दान वृत्ति भी सर्वविदित है। उनकी असाम दान वृत्ति के कारण ही उनका कोष भी रिक्त हो गया है। उनके दान विषयक उत्साह की व्यजना के लिए कवि ने बडे ही सुन्दर ढङ्ग से कौत्स का आगमन कराया है। अन्त मे रघु मोक्ष द्वारा शरीर त्याग करते हैं।

काव्य मे रघु के जीवन का आद्यन्त चित्रण देखकर यह सत्य ही प्रतीत होता है कि काव्य का नाम रघु के नाम पर ही पडा है क्योकि कवि ने बडी तन्मयता से रघु के जीवन का वर्णन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च नैतिक गुणो से युक्त रघु के चरित्र के प्रति, कवि कुछ विशेष झुकाव एव आकर्षण अवश्य रखता था क्योकि कालिदास ने किसी भी रघुवशी राजा का वर्णन जन्म से मृत्यु

---

१ धर्मविजयी स नृप । रघुवश

पयन्त नहीं किया, केवल रघु ही इसके अपवाद हैं। इस प्रकार काव्य में रघु का चरित्र बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है।

अज—

दो वार चरित्रों में वीर प्रसङ्गों को उपस्थित करने के पश्चात् ऐसा लगता है कि महाकवि रस में कुछ परिवर्तन करना चाहते थे। इसलिए अब वह ऐसे नायक को उपस्थित करना चाहते हैं—जो शृङ्गार के सर्वथा उपयुक्त हो। सर्व सौन्दर्य से युक्त अज ही ऐसे नायक हैं जो शृङ्गार के आश्रय बन सकते हैं अतः कवि ने उनके माध्यम से शृङ्गार की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। वीर के पार्श्व में शृङ्गार सबसे अधिक सुशोभित होता है अतः शृङ्गार का नायक यदि वीर भी हो—तो उसका आकर्षण द्विगुणित हो जाता है (सोने में सुहागा) अज एक प्रेमी ही नहीं अद्भुत वीर भी हैं। विरोधी राजाओं के साथ भयङ्कर युद्ध कर उन्होंने अपनी जिस वीरता का परिचय दिया—वह उनके कुल परम्परा के अनुकूल था।

स्वयंवर—

स्वयंवर के प्रसङ्ग में, अज के माध्यम से कवि ने शृङ्गार की जो व्यंजना की है—वह नितान्त मौलिक एवं चिर नवीन है। अज एवं ब्रह्मा के रूप निर्माण की अद्भुत रचना इन्दुमती के शृङ्गारिक अनुभावों एवं विभावों का ऐसा अनूठा वर्णन किसी भी काव्य में नहीं मिलता। इस प्रकार स्वयंवर का प्रसङ्ग बड़ा ही सप्रयोजन है।

अज विलाप—

ऐसा लगता है कि शृङ्गार के पश्चात् करुण का प्रसङ्ग उपस्थित करना कालिदास का अभ्यास सा बन गया था। अज-इन्दुमती का विवाह हुए अभी थोड़े ही दिन हुए थे कि सहसा ही इन्दुमती का निधन हो जाता है और इस प्रकार अज इस कठोर वज्रपात का दुःख सहन के लिए अकेले रह जाते हैं। प्रिया के मृत शरीर को देखकर अज करुण विलाप करने लगते हैं। अज के विलाप के माध्यम से एक ओर जहाँ करुण की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है, वहीं दूसरी ओर अज के एकनिष्ठ प्रेम की भी सुन्दर व्यंजना हुई है। प्रिया के वियोग में उनका जीवित रहना दूभर हो जाता है। अन्त में वह किसी प्रकार शरीरधारण कर—प्रिया की प्रतिकृति को देख देख कर दिन व्यतीत करने लगते हैं।

इसके बाद कथानक का विकास दशरथ, राम, भरत, लक्ष्मण इत्यादि रघुवंशी नरेशों के माध्यम से हुआ है जो वाल्मीकि-रामायण के आधार पर ही वर्णित है।

कवि ने इन राजाओं के विषय में कुछ नवीन न कहकर, कथानक की आवश्यकता के अनुसार काव्य में उनका निर्वाचन किया है।

महाराज दशरथ अनन्य प्रजावत्सल एवं धर्मप्रिय नृप हैं। राम रघुवंश के महान उन्नायक हैं। कवि ने उनका वर्णन विस्तार के साथ चार सर्गों में किया है। कुछ विद्वानों का मत है कि—यह अंश यदि रघुवंश से अलग कर लिया जाए तो यह एक खण्डकाव्य का रूप ग्रहण कर सकता है। राम एक आदर्श राजा, आदर्श प्रजापालक, आदर्श पुत्र, आदर्श-पति, आदर्श-भ्राता हैं। श्रीराम महाप्रस्थान से पूर्व सारे राज्य को चारों भाइयों के आठों पुत्रों में बाँट देते हैं। इनमें कुश सबसे बड़े थे इसलिए राम उन्हें उत्तराधिकाररूप में एक विशेष रत्न देते हैं जो उन्हें अगस्त्य ऋषि से प्राप्त हुआ था। अन्त में यमराज की प्रार्थना पर राम वैकुण्ठ गमन करते हैं।

कुश और अयोध्या की नगरवधू—

कुश की राजधानी कुशावती है। उनका विवाह नागकन्या कुशावती से हुआ है। एक दिन रात्रि को जब कुश शयनकर रहे थे उनके शयन कक्ष में अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी का आगमन होता है। उसे देखकर कुश आश्चर्य से भर जाते हैं फिर कुछ सजग होते हुए पूछते हैं—हे शुभे! तुम (अर्धरात्रि में) मेरे पास किस प्रयोजन से आयी हो। कुश के यह वाक्य उनके चरित्र की उच्चता एवं जितेन्द्रियता की व्यंजना करते हैं। तत्पश्चात् वह स्त्री अपना परिचय देकर अयोध्या की दुर्दशा का बड़ा ही करुण वर्णन करती है और कुश से अयोध्या में निवास करने की प्रार्थना करती है। अयोध्या की मार्मिक दशा कथन में करुण रस की बड़ी ही सुन्दर व्यंजना हुई है।

कुश के शयनकक्ष में अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी का आगमन और अयोध्या की करुण दशा का वर्णन न किसी काव्य में और न ही इतिहास में कहीं देखने को मिलता है। यह कवि की प्रतिभा की मौलिक प्रसूति है। कुश के चरित्र की नैतिक उच्चता एवं करुण रस की मार्मिक अभिव्यक्ति के लिए ही कवि ने उस प्रसङ्ग की योजना की है।

कुश के वर्णन के पश्चात् कथानक का विशेष विकास नहीं हुआ है। कवि ने कुछ सर्गों में कुश के बाद होने वाले रघुवंश के इक्कीस राजाओं का नाम-परिगणन मात्र कर दिया है और अन्त में सुदर्शन के पुत्र अग्निवर्ण की घोर विलासिता एवं दुःखद मृत्यु वर्णन के साथ काव्य समाप्त हो जाता है।

रघुवंश महाकवि कालिदास के प्रौढ़तम प्रतिभा का प्रमाण है। कवि ने इसमें बहु प्रयत्न किया है। आदर्श समृद्ध राष्ट्र, समाज एवं आदर्श चरित्र का परिचायक है।

काव्य दर्शन में ऐसा माना गया है कि कालिदास अपने जीवनकाल में रघुवंशी राजाओं के आदर्श चरित्र से विशेष रूप से प्रभावित थे। इसीलिए उन्होंने प्रस्तुत रचना में दिलीपसुत रघु के आदर्श गुणों का वर्णन किया जिसमें कवि के विस्तृत आदर्श भावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति हो सकी।

उद्देश्य—

महाकवि कालिदास निवृत्तिमार्गी नहीं थे। उनकी दृष्टि में वह (निवृत्ति) राष्ट्र के भौतिक अभ्युदय के लिए अकल्याणकारी आदर्श है। प्रस्तुत काव्य के प्रारम्भ में पूर्व के कुमारसम्भव एवं मेघदूत में शृङ्गार के रूपों का ही बड़ा सुन्दर चमत्कारी चित्र अङ्कित कर चुके थे। किन्तु वे उतने युग की संस्कृति से सम्बन्धित रूप में आकृष्ट इतने अधिक प्रभावित थे कि उनकी समन्वित धर्म के मान्यताओं के प्रति आस्था का प्रतिफलन रघुवंश में हुआ है। वर्णाश्रमधर्म की मर्यादाओं की परिधि में ही मानव जीवन के गुणों का उत्थान होना चाहिये यही उनका महान सन्देश प्रतीत होता है। इन सभी आदर्शों का पूर्ण अभिव्यक्ति रघुवंशी राजाओं के चरित्र वर्णन में हुई है। कवि ग्रन्थ के प्रारम्भ में इक्ष्वाकु वंशी राजाओं के सम्बन्ध तथा मान्यता का निर्देश करता हुआ अपना विचारमिमांसा का व्याख्यान कर देता है—मैं उन प्रतापी एवं पवित्र रघुवंशियों का वर्णन प्रस्तुत करता हूँ जिनका चरित्र जन्म से शुद्ध एवं पवित्र है, जो किसी कार्य को पूर्ण करके ही छोड़ते हैं जिनका राज्य समुद्र तक फैला है जिनके रथ पृथ्वी से स्वर्ग तक आते जाते हैं जो शास्त्रों में विहित नियमानुसार यज्ञ करते हैं जो याचकों की इच्छित वस्तु प्रदान करने वाले हैं तथा अपराधियों को यथायोग्य दण्ड देने वाले हैं जो यथा समय उठते हैं जो दान के लिए धन एकत्रित करते हैं और सत्य की रक्षा के लिए विवाह करते हैं बाल्यावस्था में विद्याध्ययन करते हैं तथा युवावस्था में सांसारिक भोग भोगते हैं, वृद्धावस्था में मुनियों के समान आचरण करते हैं तथा अन्त में योग द्वारा शरीर त्याग करने वाले हैं।[1]

इन उद्धरणों से रघुवंश के राजाओं के राजकीय आदर्श पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वर्णाश्रमधर्म के पालन पर कवि विशेष बल

---

१ रघुवंश १।५-८

देता है। रघु कौत्स से पूछते हैं—क्या गुरुजी ने आपको भली प्रकार पढ़ा लिखाकर प्रसन्न हो घर जाने की आज्ञा दे दी है, क्योंकि आप सब आश्रमों का उपकार करने में समर्थ गृहस्थाश्रम में प्रवेश के योग्य हो गये हैं।

रघुवंश में आदर्श प्रजा का भव्य चित्रण अज एवं दिलीप के वर्णन में प्राप्त होता है। जैसे कुशल सारथी जब 'रथ चलाता है तो रथ का पहिया, रेखा से तनिक भी इधर उधर नहीं होता ठीक उसी प्रकार दिलीप के शासन काल में प्रजा, मनु द्वारा निर्दिष्ट नियमों से जरा भी विचलित नहीं होती है। जैसे सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी का जल पाकर उसको सहस्रगुना जल वृष्टि रूप में लौटा देता है वैसे ही राजा भी प्रजा से प्राप्त सम्पूर्ण कर को शिव-साधना में नियोजित कर देते हैं। अज, अपनी नीतियों में केवल अपना आधीनता स्वीकार करवा लेते थे, उन्हें सिंहासन च्युत नहीं करते थे, जिस प्रकार मध्यम गति वाला वायु वृक्षों को केवल झुका देता है—उसका उन्मूलन नहीं करता।' कवि ने यहां उपमा के द्वारा अज की मध्यम-मार्गी राजनैतिक नीतियों की सुन्दर व्यंजना की है। इस प्रकार कवि कथा के बीच-बीच में अनायास ही राजनीति के रहस्यों का उद्घाटन करता चलता है और हमें उन्हें समझने के लिए विशेष प्रयास भी नहीं करना पड़ता। राज्य का संचालन कठोर बुद्धि से बढ़कर संवेदनशील विवेक के आधार पर करना चाहिए यह कवि का परिनिष्ठित सिद्धान्त है। इस प्रकार कालिदास ने रघुवंश में राजाओं के स्वस्थ शील शौर्य की जिस मर्यादा का वर्णन किया है, वह उस युग की संस्कृति का प्रभाव और कवि की अपनी मौलिक प्रतिभा का परिणाम है। रघु की राज्य-सभा का चित्रण जिस तन्मयता के साथ हुआ है—वह प्रजावत्सल शासन का परिचायक है। रघु जब राज्यारोहण करते हैं तो उस समय भौतिक पंचतत्वों में उत्कर्ष आ जाता है, जल और अधिक मीठा हो जाता है और पुष्प सुगंधित हो उठते हैं।

रघुवंश में युद्ध का भी बड़ा ही सजीव चित्रण हुआ है। किन्तु रघुवंशी नरेश युद्ध, रक्तपात अपने कौशल प्रदर्शनार्थ नहीं बल्कि अपने राज्य विस्तार के लिए, धर्म की रक्षा तथा यशोविस्तार के लिए ही करते हैं। रघु पराजित राजाओं के साथ भी सम्मानपूर्वक आचरण करते हैं जो उनके वंश के आदर्श के अनुरूप था। यहाँ तक कि युद्ध स्थल में सैनिक भी अपने धर्म का पालन करते हैं एक अश्वारोही अपने विरोधी अश्वारोही पर प्रहार करता है जिससे वह अपने घोड़े के कंधे पर झुक जाता है क्योंकि उसमें इतनी शक्ति न थी कि वह सिर उठा सके। यह देख प्रथम अश्वारोही पुनः हाथ नहीं उठाता बल्कि उसके शीघ्र ही जीवित हो जाने की

प्राथना करने लगता है।[1] इस प्रकार सारी घटनाओं की कल्पना और सभी परिस्थितियों में नायक की महाशयता एवं महापरायणता आदि का वर्णन कर महाकवि ने अपनी इस अनुपम गौरवमयी कृति में वीर रस के विभिन्न पहलुओं का बड़े ही अनोखे ढंग से अभिव्यंजन किया है। कोई चरित्र यदि तुलादण्ड पर स्वल्प भी हलका होता तो, सम्भवतः इतना गुरुतर अभिव्यंग्य न कर पाता। इसलिए कवि ने उन-उन परिस्थितियों में प्रायः सभी चरित्रों को विशिष्ट चित्रित किया है।

सम्पूर्ण रघुवंश पर विचार करने पर हमें इसमें दो पक्ष दिखलाई पड़ते हैं—एक है लोक पक्ष, दूसरा व्यक्ति-पक्ष। लोक पक्ष में तो उन्होंने राजाओं के शील शौर्य ऐश्वर्य का वर्णन किया जिससे समाज एवं राष्ट्र उनसे प्रेरणा ग्रहण कर सके। व्यक्ति पक्ष के अन्तर्गत उन्होंने दो विशिष्ट रघुवंशियों के व्यक्तिगत जीवन का चित्रण किया। ये राजा अज एवं अग्निवर्ण हैं। 'जिस प्रकार काव्य में प्रथम पक्ष के चित्रण में कालिदास ने अपने सामाजिक एवं राजनीतिक आदर्शों को पल्लवित किया, उसी प्रकार द्वितीय पक्ष के अन्तर्गत, उन्होंने व्यक्ति के रूप में अपनी शृङ्गारप्रिय भावनाओं की योजना की है।[2]

वास्तव में शृङ्गार-रस के वर्णन के प्रति कवि का विशेष आकर्षण रहा है यही कारण है कि उनके काव्यों में शृङ्गार रस किसी न किसी प्रकार (प्रधान या अप्रधान) अवश्य आया है। 'रघुवंश' में वीर रस की प्रधानता होते हुए भी कवि शृङ्गार वर्णन का मोह नहीं संवरण कर पाया है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि प्रथम पक्ष में यदि कवि की वीर रस प्रिय रुचि की व्यंजना है तो द्वितीय पक्ष में शृङ्गार लिप्सा का दिग्दर्शन है। इस प्रकार रघुवंश श्रेय एवं प्रेय का आदर्श प्रतीक है। कालिदास के उपरोक्त सिद्धान्तों की व्यंजना में रघुवंश का कथानक संयोजन पूर्ण समर्थ है।

मेघदूत—

खण्डकाव्य की परम्परा में 'मेघदूत' का प्रथम स्थान है। खण्डकाव्य का कथानक महाकाव्य की अपेक्षा लघु होता है। उसमें मानव जीवन का सम्पूर्ण चित्राङ्कन न होकर केवल विशिष्ट घटना तथा विषय से सम्बन्धित भावों एवं अनुभूतियों का वर्णन किया जाता है। महाकाव्य में यदि विषय की प्रमुखता होती है तो खण्ड-

---

१ रघुवंश ७।४१
२ 'कालिदास', रमाशङ्कर तिवारी, पृ०

काय मे विपयो की, जिसके सहारे कवि अपने व्यक्तिगत विचारो, अनुभूतियो एव भावो का कथानक के स्थूल साँचे मे ढालने का प्रयत्न करता है। खण्डकाव्यो मे प्रकृतिदेवी के मजुलतम स्वरूप का र्णन देखने को मिलता है।

'मेघदूत' के प्रारम्भ काल में कथानक का एक सूक्ष्म रूप दिखाई पडता है—एक यक्ष है जिसे कर्तव्यच्युत होने पर यक्षपति द्वारा एक वर्ष का प्रवास दे दिया जाता है। फलस्वरूप अपनी प्रियतमा से बहुत दूर रामगिरि आश्रम पर अपना डेरा डालता है।' इन प्रारम्भिक सकेतो से ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास कोई आख्यायिका की रचना करने जा रहे हैं किन्तु 'आपाढस्य प्रथम दिवसे' यक्ष ज्यो ही पवत शिखर पर मेघ को उमडते हुए देखता है, त्यो ही, उसका सुप्त चेतना विरह-व्यथा का आवरण ओढ लेती है और मेघ को देखकर यक्ष अत्यन्त व्याकुल हो उठता है तथा उसके द्वारा अपनी प्रियतमा को सन्देश भेजने का उपक्रम करता है।

'मेघदूत' के प्रथम भाग मे अर्थात 'पूवमेघदूत' मे मेघ के अलकापुरी जाने के लिए माग मे आने वाले नदी, पवत, नगर इत्यादि का भावपूण वणन हुआ है और उत्तर—'मेघदूत' म यक्षिणी की विरह दशाओ का चित्रण हुआ है। इस प्रकार मेघदूत' मे यदि कथा तत्व है तो केवल इतना कि—हे मेघ! तुम अमुक अमुक नदियो पवतो को पार करते हुए अलकापुरी पहुँच जाना और वहाँ मेरी पत्नी को यह सन्देश सुना देना, कि मैं सकुशल हूँ तथा शाप की अवधि की समाप्ति पर शीघ्र ही तुमसे मिलने वाला हूँ। इस प्रकार मेघदूत की कथा विरही यक्षवत् ही अत्यन्त ह्रासकाय एव क्षीण है। काव्य में कही भी नायक-नायिका के नामो का उल्लेख नही किया गया है केवल यक्ष के जीवन मे घटित होने वाली एक घटना मात्र का ही वणन किया गया है।

पूवमेघ मे गिरि, कानन, सरित नगर इत्यादि के वणनो में दृश्य-वैविध्य द्वारा कथा का किंचित आनन्द अवश्य मिलता है, किन्तु इसमे मानव जीवन से सम्बन्धित घटनाओ एव प्रसङ्गो का प्रभुत्व विद्यमान नही हैं, हाँ भावनाओ की एक-सूत्रता अवश्य है।

'मेघदूत' को देखने से ऐसा लगता है कि प्रकृति की विविध दृश्यावलियो के मध्य एक भावस्रोत को प्रवहमान दिखाना ही कवि का लक्ष्य था। मेघ कही जाता नहीं—वह पवत शिखर पर झुका हुआ यक्ष की सारी बातें ध्यानपूवक सुनता रहता है और यक्ष भी अत्यन्त विश्वास पूवक अपने हृदय की सारी बाते कहता रहता है और कहते-कहते ही कथा समाप्त हो जाती है। केवल कथा समाप्ति के क्षण पूव वह मेघ से पूछता है कि—हे प्रिय मित्र! क्या तुमने निज बन्धु का काय करना स्वीकार

कर लिया ! क्योंकि मैं यह नहीं समझता कि तुम उत्तर में कुछ कहो तभी तुम्हारी स्वीकृति समझी जाय—अर्थात् मेघ के लिए श्रवण करना ही अभिप्रेत है—उसमे उत्तर की अपेक्षा नहीं करना चाहिये।

मेघ को दौत्य कार्य मे नियोजित कर के इस की उद्भावना का मौलिक श्रेय कालिदास को मिलना चाहिये अथवा नहीं—इस सम्बन्ध मे विद्वत् गण एक मत नहीं हैं किन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि कालिदास की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मे जिस रसपेशल काव्य की सर्जना की है—वह मानव के अभ्यन्तर को द्रवित कर देने वाला है। विप्रलम्भ प्रधान काव्य मे दूत के सहारे वियुक्त प्रेमी अपनी सारी भावदशा को सन्देश रूप मे प्रेयसी के सम्मुख भेज सकता है जो प्रियतम की पाती की भांति प्रिय सङ्गम का सा सुख देता है।

यह मेघदूत एक प्रकार से प्राचीनकाल के प्रेमी का प्रेमपत्र था। तब न डाक था, न तार था, न डाकिया था। सारी प्रक्रिया को कवि ने अपनी प्रतिभा से अलौकिक काव्यमाला मे गूँथ कर विश्व के सहृदयों का सहृदयहार बना दिया।

यक्ष तो स्वयं विरह कातर है ही, किन्तु उसे इस बात की और चिन्ता है कि उसकी पत्नी भी उसके वियोग मे बड़ी कठिनाई मे जी रही होगी। वस्तुतः प्रेम द्विपक्षीय व्यापार होता है। यदि प्रेमी को यह भान रहे कि उसका प्रिय भी उसके लिए चिंतित होगा, तो सम्भवतः उसके प्रेम का उत्स निरन्तर प्रवहमान न हुआ। इस तथ्य को कालिदास भली प्रकार जानते हैं। तभी तो उन्होंने यक्ष के लिए दयिता-जीवितावलम्बन की प्रेरणा ग्रहण कराने का उपक्रम किया। यक्ष पहले पुष्पार्घ्य देकर उसका स्वागत करता है और कुशल मङ्गल पूछता है। भौतिक दृष्टि से मेघ धूम ज्योति मरुत सलिल का सम्मिश्रण है अतएव अचेतन होने के कारण उसे सन्देश-वाहन का काम नहीं सौंपा जा सकता। किन्तु अधीर यक्ष मे इस स्थिति की सङ्गति असङ्गति का इतना विवेक कहाँ। यह तो मेघ से दयनीय स्वर मे प्रार्थना कर ही बैठता है क्योंकि कामार्त व्यक्ति चेतन अचेतन के विषय मे विवेक शून्य हो बन जाते हैं।[२] कालिदास भली प्रकार जानते हैं कि मेघ अचेतन है और दौत्य-कार्य करने मे असमर्थ है अतएव वह जो कुछ कह रहा है उसके प्रति पाठक मे कहीं अविश्वास उत्पन्न न हो जाय इसलिए चेतन-अचेतन की विभाजक रेखा मिटाने का श्रेय 'काम' को दे देता है—कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु। यक्ष मेघ को इन्द्र का 'काम रूप

१ उ० मे० ४२
२ पू० मे० ५

प्रधान पुरुष ही मानता है—"जानामि त्वा प्रकृति पुरुष कामरूप मघोन" इसीलिए तो यक्ष अपनी कामातुर दशा मे उनके पास प्रार्थी बनकर आया है। मल्लिनाथ ने 'प्रकृति पुरुष कामरूप' का अर्थ किया है—इच्छानुसार रूप धारण मे समर्थ प्रधान पुरुष। इस प्रकार मेघ काम का रूप है, स्वय काम नही। वह समस्त प्रकृति म नवीन प्रसव का विधान करता है, मेघ ही प्रकृति के व न्यात्व दोष को निराकरण करने की सामर्थ्य रखता है—इसी कारण वह 'प्रकृति पुरुष एव 'कामरूप' है। तभी तो यक्ष ने उसे अपना सन्देशवाहक बनाया है।

मेघ का सवेदनशीलता से यक्ष भली प्रकार परिचित है। वह जानता है कि मेघ ही उसकी वेदना को भलीभाति, गम्भीरतापूवक समझ सकता है इसीलिए वह उसे अलकापुरी भेजता है।

कालिदास ने मेघ-गमनार्थ जिस माग का उल्लेख किया—वह वस्तुत हृदय की मधुर भावनाओ से ओत-प्रोत है। मेघ शीघ्रातिशीघ्र यक्ष का सन्देश उसकी प्रिय पत्नी को सुनाना चाहता है क्योकि—

'आशाबन्ध कुसुमसदृश प्रायशो ह्यङ्गनाना
सद्य पातिप्रणयिसदृश विप्रयोगे रुणद्धि ॥पू० मे० १०

यक्ष को यह भय है कि उसके वियोग म उसकी प्रिया कही प्राण त्याग न कर द—किन्तु माग म पडने वाले वन, लता, पशु पक्षिया क वणन का मोह भी कैसे छोड सकता है इसलिए स्वय ही इस बात को कहता है कि—'यद्यपि मैं जानता हूँ कि मेरे काम के लिए तुम शीघ्र ही जाना चाहोगे, किन्तु तुम कुकुम सुगन्धित पुष्पो से आच्छादित उन पहाडो पर ठहरते हुए जाना, जहाँ पर मोर अपनी कूक से तुम्हारा स्वागत कर रहे होगे। वहा से चलकर तुम दशाण देश म पहुँच जाना, जहा के उपवनो के कुञ्ज फूले हुए केवडो से उज्वल हो उठ होंगे। गावो के मन्दिर म कौवे घोसले बना रहे होंगे और सारा जगल काली काली जामुनो म आपूर्ण होगा और हस भी कुछ दिनो के लिए वहा आ बसे होंगे।'

हे मेघ! वहाँ से चलकर नीच नामक पहाडो पर श्रम मिटाने के लिए रुक जाना। जहाँ पुष्पित कदम्ब के पुष्प ऐसे प्रतीत होगे मानो तुमसे मिलकर उनके रोम-रोमाचित हो उठे हो। उसी पहाडी की गुफाओ म ऐसे सुगन्धित पदार्थों की दिव्य सुगन्ध निकल रही होगी जिनका उपयोग वहाँ के विलासीगण सुरत-समय म करते हैं। आगे समझाता हुआ यक्ष कहता है—वहाँ ठहरकर जूही को सींचते हुए, तथा उन

१ पू० मे० १

मार्गियों से युक्त पथ पर छाया करता हुआ उसमें मद बढ़ाता हुए आगे बढ़ जाता किन्तु उस समय उस प्रासाद के सौन्दर्य से मुग्धित हो गए हैं। हे मेघ! यद्यपि तुम्हारा मार्ग कुछ टेढ़ा अवश्य होगा किन्तु तुम वहाँ के विशाल भवनों की सुन्दरता न भूलना। तुम्हारी बिजली की चमक से डरकर वहाँ की नारियों निश्चय ही चकित होंगी। यदि तुम उन पर न रीझे तो तुम्हारा जन्म व्यर्थ हो जायगा। उस पर से जाते हुए निर्विन्ध्या नदी का रस पीता हुआ और फिर उज्जयिनी पहुँच जाता। इसके पश्चात् महाकाल के मन्दिर में जाने का निर्देश किया गया है, तथा शिव के ऊपर किया उल्लिखित किया गया है।

यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि कवि ने अलकापुरी ही पूर्वमेघ की रचना क्यों की, जब कि यक्ष के सन्देश का वर्णन उत्तर मेघ में किया गया है, जो काव्य का मुख्य अंग है।

वस्तुतः यक्ष एक अधीर प्राणी है। उसे इस बात की चिन्ता है कि यदि मेघ अलका पुरी का मार्ग भूल जायगा तो वह उसकी प्रिया तक न पहुँच सकेगा। तब उसकी प्रिया शान्त हो उसका कोई कुशल समाचार न पाकर अवश्य ही प्राण त्याग देगा।[1] इसलिए वह हड़बड़ी में उसे विश्राम के लिए रामगिरि से लेकर अलका तक जाने के सम्पूर्ण मार्ग का बहुत सही निर्देश मेघ को देने लगता है। इसलिए पूर्वमेघ की रचना भी सोद्देश्य हुई है इसमें यक्ष की हार्दिक चिन्ता और आतुरता व्यक्त होती है।

तत्पश्चात् अलका का बड़ा ही विस्तृत एवं मनोरम वर्णन उपस्थित किया गया है। अलकापुर का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है—कैलाश की गोद में बसी हुई अलका वैसी ही लगती है जैसे किसी प्रियतम की गोद में कामिनी। वहाँ से निकली हुई गङ्गा ऐसी प्रतीत होती है मानो उस कामिनी के शरीर से गिरी साड़ी। यक्ष ने अपने गृह का भी सुन्दर ढंग से परिचय देकर अपनी प्रिया की समस्त विरहक्रियाओं का वर्णन किया है। अपनी प्रिय पत्नी का भावात्मक चित्र अङ्कित करता हुआ कहता है—'या तो वह पूजा करती मिलेगी या मैना से पूछ रही होगी कि तुम्हें अपने पति की याद आती है? वह एक करवट पड़ी होगी और नेत्र से निरंतर अश्रु धारा प्रवाहित हो रही होगी।'[2] फिर बड़े ही विवेक पूर्वक मेघ को समझाता हुआ कहता—तुम्हारे पहुँचने पर यदि उसे नींद आ जाए, तो तुम उसके पास चुपचाप ठहरे रहना, जिससे स्वप्न में मेरे कण्ठ में पड़ी हुई उसकी भुजाएँ अचानक नींद से छूट न जाएँ लेकिन एक

१ प्रार्थीसूले तनुमिन कलामात्रशेषां हिमांशो ॥ उ० मे० ३१
२ पू० मे० ६७

क्षण ठहरने पर भी यदि वह न जागे तो तुम जल कणो से शीतल अपने वायु के झोंकों से उसे जगा देना और कहना—वैरी ब्रह्मा ने तुम्हारे प्रिय का मार्ग अवरुद्ध कर दिया है किन्तु विरह-काल की समाप्ति पर वह तुमसे शीघ्र ही मिलेगा ।"[1]

उद्देश्य—

प्रेम के महत्त्व को स्थापित करना 'मेघदूत' का प्रमुख उद्देश्य है। कवि प्रणय ■ देश-वाहक मेघ के सम्पूर्ण मार्ग मे सहानुभूति, सेवा साहाय्य तथा प्रणय का चित्र उपस्थित करता चलता है। अनुकूल पवन, मन्द-मन्द गति से सौम्य मेघ को आगे बढा रहा है, गर्व से भरा पपीहा मधुर ध्वनि कर रहा है, प्रिय सखा तुङ्ग पर्वत कण्ठश्लेष के लिए आतुर है। मार्ग मे यात्रा करते-करते जब कभी यक्ष थक जायेगा—तो वह अमुक अमुक नदियों का जलपान करता जायेगा। इस प्रकार वह स्थान स्थान पर नव चेतना एवं स्फूर्ति अर्जित करता जायेगा तथा सम्पर्क में आयी वस्तुओं को सौन्दर्य प्रदान करता जायेगा।

इन प्रसङ्गों द्वारा कवि ने सर्वत्र प्रेम के उज्ज्वल स्वरूप की व्यञ्जना की है। संस्कृत साहित्य मे अधिकतर कवि की कल्पनाशक्ति वैभव एवं समृद्धि के ही वातावरण मे विचरण करती है अतएव रमणियों के सुगठित अङ्गों एवं उनके सौन्दर्य प्रसाधनों का उपमाओं एवं उत्प्रेक्षाओं द्वारा अप्रस्तुत रूप में सम्यक् चित्रण बहुतायत मे हुआ है। कालिदास के अप्रस्तुतों मे अंजन, वेणी उरोज, परिधान, मुक्ताजल इत्यादि का अधिक वर्णन मिलता है।

इस प्रकार प्रेम कवि की दृष्टि में शरीर, मन, आत्मा का समन्वित रूप है। इस उद्देश्य मे वे पूर्ण सफल हैं।

ऋतुसंहार—

ऋतुसंहार महाकवि की प्रारम्भिक रचना है। कवि ने इसमे किसी कथानक का वर्णन नहीं किया है, अपितु षड्ऋतुओं का ही अलग-अलग वर्णन किया है। अन्य काव्यों की भाँति इसमे हमे भावनाओं का सौन्दर्य एवं अभिव्यक्ति की चारुता के दर्शन नहीं होते—केवल उद्दाम यौवन का ही सर्वत्र चित्रण मिलता है।

(क) चरित्र चित्रण की व्यंजकता—

संस्कृत प्रबन्ध काव्यों मे पात्रों का चरित्र प्राय विशेष प्रकार के ढाँचे में ढला हुआ होता है। प्रत्येक पात्र कुछ विशेष प्रकार से निर्धारित आदर्शों का पालन करता हुआ सा प्रतीत होता है। भरत, धनञ्जय आदि पूर्व आचार्यों ने नायक-नायिका, प्रति-

---

१ उ० मे०, ४०

नायक, दूत सखी विदूषक आदि सब का स्वरूप तथा कार्य निर्धारित कर दिया है। परवर्ती कवि अपने नाटकों तथा काव्यों में उन निर्धारित आदर्शों का यथासम्भव पालन करने का प्रयत्न करते रहे।

संस्कृत काव्यों में पात्रों द्वारा किसी नियत आदर्श का पालन विशेष हो देखा जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि पात्रों की वैयक्तिक विशेषता नगण्य रहती है। पात्रों के इतिहास तथा लोकश्रुत में प्रसिद्ध रूप का परिवर्तित करना तो कवि के लिए बड़ा भारी अपराध माना जाता है। हम राम भरत, लक्ष्मण इत्यादि का जैसा चरित्र एवं स्वभाव का वर्णन पढ़ते आए हैं यदि कोई कवि उसमें परिवर्तन कर नये रूप में प्रस्तुत करता है तो वह हमारे लिए भावना से ग्राह्य नहीं बन पाता और हमारी चित्त-वृत्ति भावना में इस नये चरित्र के साथ तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाती। इसका अर्थ यह भी नहीं कि संस्कृत साहित्य में नवीनता की कमी है। किन्तु कवि प्राचीन स्रोतों से अपने पात्रों को ग्रहण करता हुआ भी अपने कथानक एवं रस के अनुरूप उसके स्वरूप का कल्पना करता चलता है।

इस प्रकार महाकवि अपने काव्य के कथानक में पात्रों का सन्निवेश साद्देश्य करता है। वह उन्हीं पात्रों को काव्य में स्थान देता है जो उसके ध्येय उद्देश्य एवं आदर्शों की व्यंजना करने में समर्थ होते हैं। इस दृष्टि से महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में पात्रों की योजना करने में बड़ी कुशलता का परिचय दिया है। उन्होंने पात्र-अवतारणा की एक नूतन शैली चलायी। उन्होंने काव्यों में केवल उन्हीं पात्रों को स्थान दिया जो कथानक के लिए अपेक्षित तथा रस-व्यंजना के लिए सहायक हैं। इस प्रकार कालिदास के काव्य में पात्रों के चरित्र स्पष्ट रूप [redacted] हो जाए हैं। कुमारसम्भव में शिव पार्वती रति कामदेव हिमालयादि कुछ प्रमुख पात्रों को ही स्थान दिया गया है जो इतिहास प्रसिद्ध हैं। यहाँ इस बात पर विचार करना [redacted] कि कालिदास के पात्र उनके उद्देश्य की सिद्धि में कहाँ तक सहायक हुए हैं।

शिव –

भगवान शिव कवि के आराध्यदेव एवं पूज्य हैं किन्तु उनका वर्णन मानवीय-स्तर पर हुआ है। कवि की भावना के अनुसार वे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान निष्काम एवं निरीह हैं और गीता के उस श्रेष्ठ पुरुष की तरह हैं—जो लोक संग्रह के लिये समस्त मर्यादाओं का पालन करते हैं।

पहली पत्नी सती के दुःखद अवसान से उनके हृदय को अति ठेस पहुँचती है जिससे वे विमुक्तसंगतापस का जीवन व्यतीत करने लगते हैं। उनका सारा समय

अध्यात्मचिन्तन एवं साधना में व्यतीत होता है। किन्तु सेवा करने की इच्छुक पार्वती को पूजा के लिये, वे आज्ञा दे देते हैं क्योंकि उनके इस बाह्य रूप के अतिरिक्त एक और रूप है जो प्रणयि प्रिय का है। शृङ्गार में स्नेह का पात्र भारतीय परम्परा के अनुसार संयमी होना चाहिये। धीरोदात्त नायक धीरललित नायक से कहीं अधिक सम्मान भाजन होता है। धीरललित नायक के चरित्र में लाघव होता है। कालिदास के शृङ्गार के नायक सभी धीरोदात्त रहे हैं और सबके चरित्र में कवि एक गरिमा प्रतिष्ठित करना चाहता है और इस कार्य में तथा अपने इन आदर्शों की प्रतिष्ठा में कवि ने अपना सर्वश्रेष्ठ नायक शङ्कर को बनाया। अथ से इति तक कहीं रेखा नहीं आने दी। वे जितने संयमी एवं योगी दिखाई पड़ते, उमा के प्रति उनका व्यक्तित्व उतना ही आकर्षक होता। शिव के चरित्र में मृदिमा के साथ दृढ़िमा भी है। उन्हें बड़ा से बड़ा आकर्षण भी विचलित नहीं कर सकता।[१] वे सच्चे अर्थ में धीर हैं। चित्त को चंचल होते देख, वे सतर्क हो जाते हैं और अति निर्ममता से कामदेव को अपनी क्रोधाग्नि से भस्म कर देते हैं। वे पार्वती के मनोमोहक रूप से आकर्षित न हुये किंतु उनकी कठोर साधना से उनके 'क्रीतदास' बन जाते हैं।

इस प्रकार शिव योग एवं भोग के सामंजस्य के अनुपम प्रतीक हैं। कामदेव जब उनके आश्रम में पहुँचता है तब वे पद्मासन लगाये आत्म साक्षात्कार में लीन हैं। उनके समाधि एवं योगासन का वर्णन कवि ने अनुपम ढङ्ग से चित्रित किया है। उनके नेत्र निर्वातदीपवत् अत्यन्त शान्त अविचल प्रतीत होते हैं।[२] उनके इस गम्भीर रूप को देखकर कामदेव घबरा जाता है और उसके हाथ से धनुष छूट जाता है। वे महान् कर्मयोगी भी हैं सप्तर्षियों से वे कहते हैं—'आप जानते ही हैं कि मैं कोई कार्य स्वार्थ भावना से नहीं करता।' पार्वती से विवाह कर वे संसारी बनते हैं और फिर अष्टम सर्ग में उनके गृहस्थाश्रम की जो विस्तृत झांकी प्रस्तुत की गई है उसमें दाम्पत्यस्वरूप की मधुर व्यञ्जना हुई है।

इस प्रकार कवि शिव के जीवन में योग भोग दोनों को स्थापित कर दोनों में समन्वय के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। वह इसी को जीवन की पूर्णता मानता है। कोरा भोग पतनोन्मुख होता है तथा कोरा योग अनिष्टकारी होता है। अतएव देश काल-परिस्थिति के अनुसार भोग भी होना चाहिये तथा देश-काल-परिस्थिति के अनुसार योग भी होना चाहिये। दोनों के उचित समन्वय से ही

---

१ कुमारसम्भव १।५९
२ वही, ३।४५, ४८

मानव स्वस्थ जीवनयापन कर सकता है—शिव-चरित्र के माध्यम से कवि की यही व्यंजना है।

पार्वती—

इस महान् काव्य की नायिका पार्वती हिमवान की पुत्री हैं। वे अलौकिक सौन्दर्य से मण्डित, प्रतिभावान हैं। जो सारी विद्याओं का आश्रय बनती हैं।[1] उनके असाधारण रूप का वर्णन ब्रह्मचारी शङ्कर भी करते हैं—यदि जो के उच्चकुल में तुम्हारा जन्म हुआ है—तुम्हारा रूप ऐसा लावण्यमय है कि मानो त्रिलोकी का सौन्दर्य मूर्तिमान हो उठा है। शिव जी के उग्र तप को देखकर जब काम निराश हो जाता है, तो उस पार्वती के सौन्दर्य का ही सहारा मिलता है। पार्वती का यह असाधारण सौन्दर्य ही उनकी कठोर तपस्या का कारण बना है। क्योंकि इस रूप से शिव जैसा प्रेमी तथा ऐसा पति बिना कठोर साधना के न मिलता।

पार्वती दृढ़संकल्पा हैं। जब अपने रूप-लावण्य द्वारा शिव को नहीं प्राप्त कर पाती तो वह कठोर तपस्या द्वारा उन्हें विजित करने का सङ्कल्प करती हैं।[2] वे साधारण स्त्रियों के समान निराश नहीं होतीं बल्कि तपस्या पर तप करती रहती हैं जब तक उन्हें सफलता नहीं मिलती क्योंकि उनका प्रेम अब शारीरिक नहीं आध्यात्मिक हो चला था।

कुमारसम्भव में प्रधानतः पार्वती एक स्निग्ध प्रेमिका-रूप में चित्रित की गई हैं। वह अपनी प्रेम भावनाओं को तप पूर्ण करने के लिए घोर तप करती हैं और वहीं उनका प्रेम हार्दिक आसक्ति से अलग होता हुआ आध्यात्मिक स्तर पर पहुँच जाता है और वे प्रेम के उज्ज्वलतम रूप को तपोबल से प्राप्त करती हैं। उनका प्रेम, स्वयं अपने में देवी हो जाता है और प्रेम के देवता होते हुए श्रेय और प्रेय के प्रतीक शिव की सहज प्राप्ति हो जाती है। पार्वती के माध्यम से यहाँ कवि ने प्रेम के विभिन्न सोपानों का चित्रण किया है तथा पार्वती को ऐसी प्रेमिका का प्रतीक बनाया जो विशुद्ध नारीत्व एवं विशुद्ध सत्ता के दृष्टिकोण से गहनतम तथा व्यापकतम स्वरूप को प्राप्त करके—पूर्ण प्रेम की उदात्त भावभूमि पर प्रतिष्ठित हो जाती है। विवाहोपरान्त पत्नी के रूप में पार्वती त्रिनेत्री शिव के साथ मुग्धा नायिका की तरह रति क्रीड़ा में पूर्ण सहयोग देती हैं और वह देवी पार्वती मानवीय स्तर पर उतरती हुई प्रतीत होती हैं। इस विलास—क्रीड़ा में यहाँ यह भ्रम न होना चाहिए कि यह

---

१ कुमारसम्भव १।८६

२ वही

सामान्य मानव की क्रीड़ा है वरन् यह विलास दो आत्माओं या जीवात्मा एवं परमात्मा के पूर्ण सहयोग अथवा पूर्ण एकीकरण का प्रतीक है अथवा मानव एवं मानवी के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक संयोग का प्रतीक है। इस प्रकार पार्वती के माध्यम से कवि ने एक आदर्श भारतीय नारी के आदर्श की व्यंजना की है।

काम-रति—

काम एवं रति हमारे वे अमूर्त मनोयोग हैं, जिन्हें वैदिक युग में कवि की कल्पना ने मूर्तरूप प्रदान कर उन्हें व्यक्ति बना दिया। कुमारसम्भव में काम एवं रति शरीरधारी प्राणी हैं। इनकी कुछ शक्तियाँ अति मानवीय हैं और उन्हें देवता कहा जाता है। ये सच्चे सौन्दर्य एवं माधव के आदर्श प्रतीक हैं।

काम इन्द्र का स्वामिभक्त सेवक और वीर पुरुष है। इन्द्र को भी उस पर विश्वास है। इन्द्र उससे कहता है—'मैं तुम्हें भी अपनी तरह ही उत्तरदायी समझता हूँ। अतः बड़े भारी काम में लगा रहा हूँ।' काम अपनी प्रशंसा सुनकर गर्व से फूल जाता है और गर्व में आकर शिवजी को हरा सकने का दम भरता है। इन्द्र उससे अपने प्रभाव से शिव को पार्वती के प्रति आकर्षित करने की प्रार्थना करता है। काम कुछ घबरा जाता है किन्तु अपनी बात पर अटल रहता है।' काम का यह चित्रण करते समय सम्भव है, कवि के मानस पटल पर किया नाटक का प्रभाव रहा हो—जिसमें विट विदूषक राजाओं की प्रेम लीलाओं में सहायता किया करते हैं। और जिसका आभास कवि के नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्' में मिलता है।'

कामदेव कहता है कि पतिव्रताओं के धर्म, तपस्वियों के तप, नीति विशारदों की नीति को विफल कर देना, तो मेरे बाएँ हाथ का खेल है।'

रति कामदेव की प्रिय पत्नी है। उसका चरित्र भी वैसा ही सुन्दर है, जैसा उसका रूप। वह पति से असीम प्रेम करती है किन्तु उसके कर्त्तव्य पालन में बाधक नहीं बनती। जब रतिपति को तपस्या में विघ्न डालने जाना है, तो रति भी उसके साथ बन जाती है, किन्तु उसे रोकती नहीं। यहाँ नारी-जीवन का आदर्श भी है कि वह पति के किसी काम में बाधक नहीं होती सहायता करती है। पति की मृत्यु से यद्यपि उसका सारा सुख समाप्त हो जाता है किन्तु उसे सन्तोष है कि उसका पति कर्त्तव्य पालन करता हुआ, वीर-गति को प्राप्त हुआ है। अन्त में वह एक आदर्श पत्नी की भाँति पति की चिता पर जलकर सती होना चाहती है किन्तु आकाशवाणी

---

१ 'कालिदास और उनकी काव्य कला' —वागीश्वर विद्यालंकार—पृ० २३०

उसे ऐसा करने से रोक देता है। माना शिव पार्वती के विवाह जैसे शुभ काम में यह अनर्थ (रति मृत्यु) अनर्थ नहीं हुआ और कालिदास ने अपने आराध्य के विवाह में कहीं भी अमङ्गल नहीं आने दिया। इस प्रकार रति के माध्यम से कवि ने नारी जीवन के उच्च आदर्शों की व्यंजना की है।

हिमालय—

पर्वतराज हिमवान् हिमालयादि उन प्रदेशों का अधिपति है, जिन्हें कवि देव-भूमि[1] अर्थात् स्वर्ग मानता है। काव्य के आदि में ही उसे देवात्मा[2] कह कर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि वह निर्जीव पत्थर नहीं अपितु चेतन मानव है। उनका शरीर लम्बा चौड़ा गौरवर्ण और बलिष्ठ है। उनके होंठ लाल, भुजायें देवदारु के समान लम्बी और वक्षस्थल चट्टान की तरह दृढ हैं। उन्होंने कुलस्थिति के लिए मैना से विवाह किया है। इस प्रकार वे सद्गृहस्थ हैं।

वे शिष्ट एवं नम्र हैं। उनका व्यवहार मधुर एवं बोलचाल सुसंस्कृत है। अङ्गिरा ऋषि उनसे कहते हैं— तुम्हारा मन भी, तुम्हारे दन शिखरों के समान उच्च है। अविच्छिन्न एवं निर्मल प्रवाह वाली कीर्तियों से तथा समुद्र तक वे रोक टोक पहुँचती हुई तुम्हारी नदियों से तीनों लोक पवित्र हो रहे हैं। यद्यपि पर्वत रूपी तुम्हारे शरीर में समस्त रत्न भरा हुआ है, तो भी सत्पुरुषों की सेवा करने वाला यह दृढ भक्ति भाव से सदा झुका रहता है। विवाहोपरान्त जब पार्वती जी विदा होती हैं तब उनके वियोग का विचार उनको विकल कर देता है। उच्च-चरित्र का पिता ने जिसकी सारी परम्परायें अतिशय उन्नत रही हैं अपनी समस्त उच्च परम्पराओं को बिना कहे पुत्री में सञ्चारित किया है। ऐसे पिता की पुत्री उमा ही हो सकती है। कवि उनके चरित्र के माध्यम से आदर्श एवं गौरवशाली पिता के रूप की व्यंजना करता है।

रघुवंश—

दिलीप—

महाराज दिलीप धर्म प्रिय राजा हैं। क्षत्रिय त्व की भावना उनमें कूट कूट कर भरी है। वह जो भी कार्य करते हैं वह पूर्ण निष्ठा एवं उत्साह से करते हैं जिससे वह कार्य स्वयं उनका ध्येय सा बन जाता है।

---

१ कुमारसम्भव ५।४५

२ वही १।१

गोचारण, गुरु के समाप गमन, सिंह सवाद, नन्दिनी-परीक्षा एव वरदान तथा एकोनशतअश्वमेधआहरण सब मे महाराज दिलीप का अनन्य उत्साह एव कर्मयोग झलकता है। न कहीं निराशा के लिये स्थान है, न कही विवेक शून्यता है। भावुक दशा मे भी वे कत्तव्य परायणता नहीं भूलते। इस प्रकार उनका काव्य मे चित्रित जीवन पूण रूप से धर्मवीर स्वरूप की अभिव्यक्ति करता है।

रघु—

रघु का चरित्र धर्मवीर एव दानवीर का प्रतीक है। वाल्मीकि रामायण से इस बात का पता चलता है कि सूय वश मे पहले काकुत्स्थ और फिर रघु—ये दो राजा ऐसे हुये जिसके कारण उनके वशज काकुत्स्थ तथा राघव कहलाये। दिलीप ने गौ स यही वर मॉगा कि उनका पुत्र वश का कर्ता हो 'परवर्ती काल में राम न यद्यपि ईश्वर का रूप ग्रहण किया किन्तु वे वश को अपना नाम न द सके। वश के कर्ता के रूप म कवि न रघु का वणन किया। रघु का जन्म दिलाप सुदक्षिणा की दृढ साधना धारणा एव तपस्या के परिणाम स्वरूप हुआ है। वे ओजस्विता, बल, पौरुष एव सहृदयता मे अपने पिता से भी बढकर हैं।[१] उनकी भक्ति एव विनयशीलता की प्रशसा करते हुये कौत्स कहता है— पूज्यो के प्रति तुम्हारा भक्ति-भाव अपने कुल के अनुरूप ही नही, किन्तु उससे बढकर है।'

रघु दान वृत्ति मे भी किसी से कम नही। उन्होने भिक्षार्थियो को अपना सवस्व दान कर दिया है और केवल मिट्टी का पात्र ही शेष रह गया है। कौत्स को उनकी इच्छानुरूप दान न कर सकने के कारण वे अत्य त दु खी होने हैं जिससे उनकी विवशता व्यक्त होती। किन्तु कौत्स जब अन्यत्र जाने की इच्छा प्रकट करत हैं, तो व उत्साहित हो उठत हैं। यह उनके शौय का ही प्रभाव है कि भय के कारण कुबेर उनक कोष मे अप्रत्याशित धन वर्षा कर दता है। इस प्रकार कुबेर पर युद्ध का विचार उनके रणोत्साह एव यशोधनता को ही अभिव्यक्त करता है तथा उसस रघु क वीर स्वरूप की व्यजना होती है।

अन्त म रघु वानप्रस्थी वन-योग की साधना मे लान हो जाते हैं तथा योग द्वारा शरार त्याग कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस प्रकार महाराज रघु का जीवन दानवीर धर्मवीर तथा युद्धवार की परिधि से होता हुआ मोक्ष पद मे लीन हो जाता है रघुवश के महान स्थापक एव लाक में राजत्व पद के आदश नेता रूप मे प्रतिष्ठित हुये हैं।

---

१ रघुवंश ५।९

अज—

अज धीर ललित नायक हैं। वे कालिदास के प्रणय प्रतीक कहे जाते हैं। किन्तु अज सामान्य स्तर के प्रणयी नहीं हैं, इन्दुमती की रक्षा के लिए जब वह विरोधी राजाओं से भयङ्कर युद्ध करते हैं तो उनके अपूर्व शौर्य एवं साहस का परिचय मिलता है। नर्मदा के तट पर जङ्गली हाथी को एक ही बाण से क्षत कर देना उनके वीर चरित्र का व्यञ्जक है।

किन्तु इतना सब होने पर भी रघुवंश में उनके प्रेम प्रधान चरित्र की ही प्रमुखता रही है। रूप एवं गुणों में उनकी कोई समता नहीं कर सकता। उनके इस आकर्षक रूप पर इन्दुमती मोहित हो जाती है और वरमाल उनके गले में डाल देती है। साथ ही अज बड़े ही स्नानुराग से नियमन्त हैं। उनकी सहृदयता की व्यञ्जना के लिये कवि ने एक मार्मिक घटना का सन्निवेश किया है वह है—इन्दुमती की आकस्मिक निधन। प्रिया की मृत्यु से उन्हें बहुत बड़ा आघात पहुँचता है और वे साधारण मानववत् फूट-फूट कर विलाप करने लगते हैं। अष्टम सर्ग, अज विलाप का करुण चित्र उपस्थित करता है। प्रिया की 'प्रतिकृति' पुत्र में देखकर आठ वर्ष व्यतीत कर देते हैं और पुत्र के युवा होने तक किसी प्रकार शरीर धारण किये रहते हैं। इस प्रकार कवि ने अज के माध्यम से प्रेम की अनन्यता का चित्र उपस्थित किया है।

दशरथ—

राजा दशरथ के चरित्र का विकास प्रायः वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही हुआ है। वे भावुक अधिक विवेकशील कम हैं। निःसन्तान होने के कारण कहीं—वंश का विनाश न हो जाय अतएव पुत्र प्राप्ति के लिये पुत्रेष्टि-यज्ञ करते हैं और क्षत्रिय धर्म की रक्षा के लिये प्राणाधिक प्रिय अपने पुत्र राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ भेज देते हैं।

दशरथ के वीर चरित्र में शृङ्गार का पल्लवन भी अनोखे ढङ्ग से हुआ है। वन में जाते हरिण को अपना लक्ष्य बनाते हैं तो बीच में हरिणी को खड़ी देखकर नहीं मारते हरिणी के व्याकुल नेत्रों में प्रिया के चञ्चल नेत्रों का स्मरण हो जाने पर फिर उन पर बाण नहीं चलाते—इसका कारण बताता हुआ कवि कहता है कि वे प्रेमी हृदय थे।"[1]

अन्त में महाराज दशरथ अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुये पुत्र वियोग में शरीर त्याग कर देते हैं। दशरथ का चरित्र धर्म से अनुप्राणित है इसलिये उनके माध्यम से कवि ने धर्मवीर की ही व्यंजना की है।

---

१ रघुवंश ९।५७

राम—

रघुवंश में राम आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श पति एवं आदर्श राजा के रूप में वर्णित हैं। भारतीय चरित्र की पूर्ण प्रतिष्ठा उनके चरित्र के माध्यम से हुई है। राम का आख्यान, कवि ने वाल्मीकि रामायण के आधार पर वर्णित किया है। कवि ने रामायण में वर्णित ईश्वरवादी भावना का पूर्ण समर्थन किया है।

राम आदर्श प्रजा पालक राजा हैं। सारी प्रजा राम राज्य में बड़ा सुखी है। राम का प्रत्येक कार्य धर्म की आधार शिला पर ही निर्मित होता है यहाँ तक कि राजनीति जैसे क्षेत्र में भी धर्म उनका साथ नहीं छोड़ता।

राम एक आदर्श प्रेमी भी हैं। सीता उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं किन्तु लोकापवाद के कारण निर्दोष सती साध्वी पत्नी का परित्याग भी कर देते हैं। इस प्रसङ्ग में उनका चरित्र आदर्श पति का आवरण ओढ़कर सम्मुख आता है। वे सीता का त्याग करके भी उसे हृदय से नहीं निकाल पाते। लक्ष्मण के मुख से सीता का सन्देश सुन, विह्वल हो जाते हैं। उनका आदर्श तो देखिए कि वे दूसरा विवाह नहीं करते—यहाँ तक कि यज्ञ के अवसर पर भी सीता की सोने की मूर्ति बनवाकर ही—समस्त क्रियाएँ सम्पन्न करते हैं। उनके प्रेम का यह एकनिष्ठता ही है कि सीता के चित्रों को देख-देखकर अपना समय व्यतीत करने लगते हैं किन्तु पर नारी का विचार तक नहीं करते।

उनका स्वभाव सम है—'राज्य प्राप्त करते समय तथा वन जाते समय उन्हें न हर्ष होता है और न विषाद। वन के लिये प्रयाण करते समय शान्तमना पिता की आज्ञा लेकर चल आते हैं। वे गुरुओं के परम आदरकर्ता तथा दुष्टों का नाश करने वाले हैं। संसार में उनका जन्म ही धर्म की रक्षा तथा अधर्म के नाश के लिये हुआ है।

इस प्रकार राम मानवता के एक पूर्ण प्रतीक सिद्ध होते हैं। और उनके चरित्र के माध्यम से श्रेष्ठ धर्मवीर स्वरूप की अभिव्यञ्जना होती है।

कुश—

कुश जितेन्द्रिय एवं वीर नृप हैं। अर्धरात्रि के समय अपने शयन कक्ष में सहसा नारी को आते देख, वे अचम्भित हो उठते हैं और कहते हैं—हे शुभे! कौन हो और मुझसे क्या चाहिये? यह विचार कर बोलना कि रघुवंशियों का मन पराई स्त्रियों की ओर से विमुख रहता है। इस कथन में उनके चरित्र की उच्चता की व्यञ्जना हो रही है।

अपने पिता के समान कुश अत्यन्त वीर हैं। उनके निस्सीम शौर्य से भयभीत होकर कुमुदराज उनकी अपहृत मुद्रिका शीघ्र ही लौटा देता है और उनकी अधीनता स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार कुश के माध्यम से धर्मवीर एवं युद्धवीर की व्यंजना हुई है।

अग्निवर्ण —

अग्निवर्ण एक विलास प्रिय तथा कर्तव्यच्युत नायक है। वह रुग्ण एवं स्वैणता का प्रतीक है। वह अहर्निश कामिनियों के साथ नित्य नवीन उत्सवों में व्यस्त रहता है, बावलियों में जल-विहार करता है, मदिरा पान करता है, नृत्य तथा मृदङ्ग-वादन में लीन तथा रतिक्रीडाओं में व्यस्त रहता है - यदि मन्त्रियों के अनुरोध पर प्रजा को कभी दर्शन भी देता है तो बस केवल इतना कि 'झरोखे से अपना एक पैर लटका देता है।'[1]

'परिजनाङ्गनाओं के साथ भी सम्भोग कर लेना—यह नैतिक एवं मानसिक पतन है। इससे निम्नस्तर अधोगति की कल्पना एक प्रजापति के लिये नहीं की जा सकती। ऐसे विकट कामुक का जीवनावसान जैसा दुःखद एवं अपमानपूर्ण होना चाहिये—वैसा ही अग्निवर्ण का हुआ।'[2]

कालिदास 'अतिवाद' के समर्थक नहीं हैं। अग्निवर्ण के माध्यम से उन्होंने अतिवाद का तिरस्कार किया है। अग्निवर्ण के जीवन में काम का आधिक्य हो गया है इसलिये उसका बड़ा ही कारुणिक अन्त हुआ। इस प्रकार कवि ने अग्निवर्ण के विकृत जीवन का ही सत्य उल्लेख किया है मानो वह उसके ऐतिहासिक जीवन से चिढ़ा हुआ सा लगता है और अस्तोन्मुख रघुवंश के प्रति कोई विशिष्ट आशा नहीं रख पाता। अतः वह इस विशुद्ध काम पुरुषार्थ भोगी के प्रति अपनी कुत्सा प्रकट करता है। धर्मवीरों के लिए कामी की कोई जगह नहीं। न कालिदास के शृङ्गार में विषयी का गौरव। उनका वीर धर्ममय और प्रेमी अध्यात्म मय होता है।

स्त्री पात्र—

'कालिदास ने 'रघुवंश' में नायिकाओं के सम्पूर्ण चरित्र के स्वतन्त्र विकास पर विशेष ध्यान नहीं दिया। इस महाकाव्य में केवल तीन चार स्त्री पात्रों को ही स्थान मिला है। इसका कारण सम्भवतः यह हो सकता है कि कालिदास रघुवंशी

---

१ रघुवंश १९।१६

२ वही, पृ० ८७

राजाओ के चरित्र से ही विशेष रूप से प्रभावित थे। उनके आदर्श जीवन, राजकीय कर्तव्यो तथा वीर चरित्र का वर्णन करना ही उनको अधिक प्रिय था जिससे उनका अभीष्ट सिद्ध हो सके। यही कारण है कि उन्होंने नायिकाओ के सम्पूर्ण जीवन चरित्र को न उद्धृत कर—केवल उन्ही विशिष्ट पक्षो का ही काव्य में स्थान दिया जो रस की घटनाओ का तथा सबसे बढकर कवि के जीवन्त उद्देश्य का समर्थन दे सकें। इस दृष्टि से कवि की योजना ठोस एवं युक्तिपूर्ण प्रतीत होती है।

सुदक्षिणा—

सुदक्षिणा महाराज दिलीप की आदर्श भारतीय पत्नी हैं। वह पति के प्रत्येक सत्कार्य मे साधक है बाधक नही। जो गौ-सेवा निमित्त कठोर व्रत पालन करती हैं और हृदय से उसकी पूजा करती हैं। वह गुरुओ का उचित सत्कार करने वाली राज महिषी है। इस प्रकार रघुवश में उनका चरित्र एक सद् गृहणी, सद्नारी का व्यंजक है और वह भी अपने पति के स्वरूप को अभिव्यक्त करने में सहायक होती है।

इन्दुमती—

इन्दुमती सौन्दर्य एवं प्रेम का साकार प्रतिमा है। कवि ने उसे शृङ्गार रस का ऐसा आलम्बन बनाया है कि स्वयंवर में उसे देखकर राजाओ की क्या स्थिति हुई, उसे कवि के शब्दो में सुनिये—वह कन्या क्या है ब्रह्मा की रचना का कौशल है जिसे सहस्त्रनेत्र एकटक होकर देख रहे हैं। उसे देखते ही राजाओ के मन तो उसके पास चले गये—केवल शरीर मात्र ही मञ्च पर रह गया।[1]

विद्वानो ने— जिस आनन्द वादी भावना का कालिदास की सरस्वती की मुख्य प्रेरणा कहा है— उनका मनोरम रूप इन्दुमती के प्रसंग में ही दृष्टिगोचर होता है।' कवि ने उनके नख शिख वर्णन में विशेष रुचि दिखाई है।

इन्दुमती के जीवन का एक पक्ष और है— वह है आदर्श गृहणी का। गम्भीर विषयो में भी वह पति को एक सचिव की भांति सलाह देती है। उसकी मृत्यु पर अज कहता है—तुमने कभी मन से भी मेरा अप्रिय चिन्तन नही किया। मुझसे कोई भूल हो जाती तो कभी बुरा नहीं मानती थी, फिर तुमने मुझे इस तरह अकेले छोड़ जाने का कठोर निश्चय कैसे कर लिया ?

इन्दुमती का प्रेम उदात्त एवं निश्छल है उसमें वासना की तनिक भी गन्ध नही है। इस प्रकार उसके माध्यम से शृङ्गार की सुन्दर व्यंजना हुई है।

---

१ रघुवंश ६।११

बनाने के लिय सवाद का कलात्मक सयोजन करता है। इसीलिए उत्कृष्ट काव्य मे सवाद सयाजना महत्त्वपूर्ण हैं। उनके सौन्दय को हम नकार नही सकत। इसीलिए महाकाव्य के लक्षण म नाट्य सधियो का समावेश वैध बताया गया है। सर्वे नाटक प्रधय (सा० द०)। जिस काय म, जितना ही पात्रो के सवाद द्वारा भाव एव कथानक का परिपाक किया जाता है, वह उतना ही श्रेष्ठ होता है। ध्वनि काव्य यदि पात्रा क मुख से कहलवाया जाता है तो अधिक निखरता है (जैसा कि श्रीहृष ने कहा है—विदग्ध नारी का मुख ध्वनि का आकर होता है—विजृम्भित यस्य 'ध्वनेरिय विदग्ध नारी वदन तदाकरा)। महाकवि कालिदास ने अपने काव्य मे सवादो की योजना मे विशेष कुशलता का परिचय दिया है। इन्द्र कामदेव, ब्रह्मचारी-पार्वती, दिलीप-सिंह, रघु इन्द्र इत्यादि सवाद इसी कोटि के हैं। यद्यपि ये कथोपकथन किसी नाटक के भाग तो नही तथापि अभिनयात्मकता से परिपूर्ण हैं। काव्य म सवाद सदैव दो रूप मे निबद्ध होते हैं अनुभाव तथा उद्दीपन।

कुमार सम्भव मे कथोपकथन—

कुमार सम्भव मे कामदेव-इन्द्र, ब्रह्मचारी-पार्वती, हिमालय सप्तर्षिगण इत्यादि कुछ सवाद बडे ही रोचक एव प्रभावोत्पादक हैं। इन सवादो मे कुछ भी अनर्गल नही कहा गया है, बल्कि उनका एक-एक शब्द वाञ्छित प्रभाव उत्पन्न करने वाला है।

इन्द्र-कामदेव सवाद - इन्द्र-कामदव प्रसङ्ग कुमारसम्भव के तृतीय सग में आया है। इन्द्र की आज्ञा से कामदेव उनके दरबार म पधारता है और आते ही कहने लगता है— हे स्वामि! तीना लोका म ऐसा कौन सा काय है, जिसे आप मेरे द्वारा कराना चाहते हैं। फिर कहता है—ऐसा कौन सा पुरुष उत्पन्न हो गया है जिसने घोर तपस्या करके आपके मन मे ईर्ष्या जगा दी है अथवा आपका शत्रु बनकर ससार के कष्टो से घबराकर मोक्ष की ओर चल पडा है। आपका शत्रु यदि शुक्राचाय से भी नीति पढकर आया होगा, तो भी अर्थ व भोग की इच्छा से ऐसा हुआ दूत बनाकर मैं आपके पास भेजता हूँ, जो उसके धर्म, अर्थ दोना को नष्ट कर देगा। अथवा ऐसी कौन सी हठीली पतिव्रता आपके चचल मन में बैठ गयी है—मैं उस पर ऐसा बाण चलाता हूँ जिससे कि वह अभी आपके गले आ लगेगी। हे स्वामि! आपकी कृपा हो तो मैं एकमात्र वसन्त को साथ लेकर महादेव जी के भी छक्के छुडा दूँ। कामदेव के अनुभाव रूप इन वचना से उसके दर्प-एव उसकी असीम शक्तिमत्ता की व्यजना हो रही है। कवि के लिए काम को वीर पुरुष रूप ही अभिप्रेत है क्योकि शिव जैसे योगी की समाधि भङ्ग करना किसी साधारण पुरुष के सामर्थ्य से परे

है। इसलिए उन्होंने इस कार्य के लिए काम जैसे प्रभूत शक्तिसम्पन्न देव का ही चयन किया है।

किन्तु फिर भी आना पालन की भांति वह किसी प्रकार अच्छा कहकर बसन्त का साथ लेकर शिव-तपोवन की ओर चल पड़ा। यहां उनके कर्तव्यनिष्ठता एवं स्वामिभक्ति का सुन्दर व्यंजना हो रही है।

शिव पार्वती संवाद—

कुमारसम्भव का यह कथोपकथन इतना उत्कृष्ट है कि यह खण्डकाव्य माना जाता है। हिमालय पर तपस्या करती हुई पार्वती के पास शिव जी ब्रह्मचारी वेश बना कर आते हैं और आते ही पार्वती के रूप शील की प्रशंसा करते हुए उनकी कुशल क्षेम पूछते हैं जैसे कोई पण्डा यजमान से अपनी बात कहलाने के लिए उसकी आवभगत करता है तथा बातों ही बातों में उसकी सहानुभूति प्राप्त कर लेते हैं। वे पार्वती के मुख से ही प्रभूत सम्पदा के रहते हुए भी कठोर तपस्या का कारण पूछते हैं। किन्तु पार्वती एक भारतीय कन्या हैं शालीनता के आवरण में ढकी रहती हैं। भारतीय स्त्रियां स्वभाव से ही लज्जाशील होती हैं। अतः वह अपने मुख से अपने प्रेम का निवेदन नहीं कर पातीं इसलिए वह अपनी सखी को बोलने के लिए संकेत करती हैं। सखी बताती है तो वे उनकी उग्र तपस्या का हँसी उड़ाते हुए कहते हैं आप भी किस वैतुक से प्रेम करने लगी हैं। पाणिग्रहण के समय विवाह के मङ्गल सूत्र से सजा हुआ आपका यह हाथ शङ्कर जी के सर्प लिपटे हुए हाथ का कैसे छू सकेगा? कहाँ तो हंस छपी हुई चुनरी और आप और कहाँ रक्त की बूंद टपकती हुई महादेव जी के कंधे पर पड़ी हुई हाथी की खाल। ब्रह्मचारी के यह वाक्य शिव के पार्वती के प्रेम की उत्पत्ति करने में ईंधन का कार्य करते हैं जिसे सुनकर पार्वती जी क्रोधित हो उठती हैं उनके होठ कांपने लगते हैं और नेत्र लाल हो जाते हैं और कहती हैं— जिनमें योग्यता नहीं होती वे सचमुच महादेव जी को किसी भी प्रकार नहीं जान सकते। उनके अनुभाव रूप इस वाक्य से शिवनिन्दक ब्रह्मचारी की अवहेलना एवं शिव के प्रति एकनिष्ठ प्रेम का व्यंजना होती है। अतः पार्वती के ये वाक्य उनके प्रेमभाव के व्यंजक माने जायेंगे।

यह सारा स्वप्न-गाथना के अनन्य प्रेम शङ्कर के प्रति अटूट निष्ठा-गम्भीरतम् अनुराग का परिचायक है। शिव के प्रति पार्वती के मन की आस्था का माप किसी प्रकार नहीं लगाया जा सकता यदि कुछ अन्दाज मिल सकता है तो पार्वती की तपस्या के रूप से ही। औषधिप्रस्थ की नारियां ने बरयात्रा के समय में पार्वती के प्रेम को आदर से माना था—

शिव पार्वती के संवाद का अन्त तो शृङ्गार की प्रेम कहानी को, सर्वोत्तम भूमि मे प्रदर्शित करता है जिसमें नाटकीयता की पराकाष्ठा है "त वीक्ष्य वेपथुमती" जिसे शाकुन्तल निर्माता की ही प्रतिभा कल्पित कर सकती थी।

हिमवान् सप्तर्षिगण—

कुमारसम्भव के षष्ठ सर्ग मे वर्णित हिमवान् तथा सप्तर्षियो का वार्तालाप भी बड़ा ही व्यजनापूर्ण है। शङ्कर की आज्ञा से सप्तर्षिगण हिमवान् के पास जाते हैं। हिमवान् उनकी यथोचित अभ्यर्थना करते हैं ऋषिगण उनकी बडी प्रशसा करते हैं और उनको महिमा का व्याख्यान करते हुए कहते हैं कि—'भगवान् विष्णु की महिमा ससार में तब फैली थी जब उन्होंने वामन-अवतार ग्रहण कर—तीनों लोकों को नाप लिया था, पर आपकी महिमा तो पहले से ही तीनो लोको मे फैली हुई है। यज्ञ का भाग पाने वाले देवताओं में स्थान पाकर आपने सुमेरु पर्वत की सुनहरी एव ऊँची चोटियो को नीचा दिखा दिया।' इस प्रकार से उनकी प्रशसा कर पुन शिव का शुभ सन्देश सुनाते हैं।' —या लोक के नाथ भगवान् शङ्कर ने हम लोगो के मुँह से सन्देश भेजकर अपने लिए आपकी पुत्री पार्वती माँगा है।' सप्तर्षियों के ये वाक्य उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आते हैं।

यहाँ एक ओर जहाँ हिमालय के शिष्ट व्यवहार द्वारा उनके चरित्र के विनय की व्यजना होती है वही दूसरी ओर कवि प्राचीन विवाह-पद्धति की ओर सकेत करता है। स्त्री-पुरुष मे कितना ही प्रेम क्यो न हो, विवाह के क्षेत्र मे उन्हें किसी माध्यम की आवश्यकता पडती है जो कि उनके गुरुजनो से उनके विवाह के सम्बन्ध मे बात कर सके। यही कारण है कि शङ्कर पार्वती का मिलन हो चुका था फिर भी वे सादर सप्तर्षियो को पार्वती के पिता के पास भेजते हैं और उनकी अनुमति की प्रतीक्षा करते हैं। यह हमारी भारतीय संस्कृति मे प्रसिद्ध वैवाहिक पद्धति का स्वरूप है और इसी की सुन्दर व्यजना कवि ने हिमराज तथा सप्तर्षियो के कथोपकथन के माध्यम से की है। साथ ही, विवाह के लिए आतुरता होते हुए भी, शिव के धैर्यशील स्वरूप का अनुपम दिग्दर्शन हुआ है।

रघुवश

दिलीप सिंह संवाद

रघुवश का सर्वप्रथम संवाद दो सिंहो का होता है एक हैं अवधराज द्वितीय हैं वनराज। दुष्ट सिंह का, राजा दिलीप ज्यो ही वध करना चाहते हैं त्योंही उनका हाथ वाण मे सलग्न हो जाता है और वे बाण-सचालन मे असमर्थ हो जाते हैं। इसी समय राजा दिलीप को आश्चर्यचकित सा करता हुआ सिंह मनुष्य की वाणी में

कहता है— मुझ पर हाथ न उठाओ क्योंकि तुम मुझे मार नहीं सकते। मैं भगवान् शिव का कुम्भोदर नामक सेवक हूँ। मुझे इस देवदारु की रक्षा के लिए नियुक्त किया है। अतएव इधर आने वाले पशुओं को खाकर मैं अपना जीवन निर्वाह करता हूँ। हे राजन्! आप लज्जित न हों कि आप गौ की रक्षा नहीं कर सके क्योंकि शस्त्र से जिसकी रक्षा सम्भव नहीं उस रक्षा करने में असफलता के नाम को कलङ्क नहीं मानता। इस (उपहास रूप) वचन से राजा को किञ्चित सन्तोष मिलता है किन्तु वे गौ को कैसे छोड़ सकते हैं, अतएव नम्र प्रार्थना करते हुए कहते हैं— मैं भी भगवान शङ्कर का सम्मान तुम्हारी ही तरह करता हूँ इसलिए तुम उनकी आज्ञा का पालन अवश्य करो किन्तु गुरु की गौ की रक्षा करना मेरा परम कर्तव्य है, अतएव मैं उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। हे सिंह! तुम उसके बदले मुझे खाकर अपना पेट भर लो, क्योंकि उसका नन्हा सा बछड़ा साँझ को विकलता से उत्कण्ठित हो इसके आने की राह देख रहा होगा। (दिलीप का यह उत्तर अनुपम है)।

यह सुनकर सिंह किञ्चित् मुस्कान सहित राजा को समझाता हुआ कहता है— जगत में तुम्हारा एक छत्र राज्य है। तुम युवा और सुन्दर हो। आश्चर्य है एक सामान्य सी गौ के लिए अपना सर्वस्व छोड़ रहे हो। अपना प्राण देकर तो तुम केवल एक जीव की ही रक्षा करोगे किन्तु यदि जीवित रहोगे, तो सारी प्रजा का पुत्रवत् पालन करोगे।

यह कालिदास का अनुपम रचना-कौशल है। रूप कि वह तो अभिमान ही सुना था किन्तु दिलीप का विनय तो सिंह के समक्ष है।

इस संवाद में कहीं भी अशिष्टतापूर्ण वचनों का प्रयोग नहीं किया गया है। सम्पूर्ण कथोपकथन में राजा के नम्र विनयी सहिष्णु चरित्र की सुन्दर व्यञ्जना हुई है। उनका कथन उनकी संस्कृति एवं कुल की मर्यादा का रक्षक है।

रघु इन्द्र—

रघुवंश के तृतीय सर्ग में वर्णित रघु इन्द्र संवाद रघु के वीर चरित्र की सुन्दर व्यञ्जना कराता है। हे इन्द्र! आप तो यज्ञ कार्य में विघ्न डालने वाले राक्षसों का वध करने वाले हैं फिर आप क्यों मेरे पिता के यज्ञ में विघ्न डाल रहे हैं। यज्ञ का मार्ग दिखाने वाले महात्माओं को ऐसा दुष्कार्य शोभा नहीं देता। रघु के अनुनय रूप इन वचनों से इन्द्र बड़े ही आश्चर्यचकित होते हैं और कहते हैं—तुम जो कहते हो वह सत्य है पर हम कीर्तिप्रियों का यह भी काम है कि विरोधियों से यश की रक्षा करें। मैंने सौ यज्ञ करने का जो यश पाया है, उसे तुम्हारे पिता मुझसे छीनना चाहते हैं। इस संसार में शतक्रतु केवल मेरा नाम है यदि तुम कपिल अथवा सगर का

प्रयत्न करोगे तो हमारे क्रोध से भस्म हो जाओगे।' इन्द्र के उद्दीपन रूप इस वाक्य को सुनकर रघु क्रोधाभिभूत हो उठते हैं, और निडरता पूवक हसकर कहते हैं—'यदि आपने यही निश्चय किया है तो शस्त्र उठाइये और युद्ध कीजिये। रघु को बिना जीते आप घोडा लेकर नही जा सकते।' तत्पश्चात् दोनों मे घमासान युद्ध होता है और रघु विजयी होते हैं।

यहाँ रघु की वीरोक्तियाँ उनके वीर चरित्र की व्यजना करने मे पूर्ण समर्थ हैं।

रघु-कौत्स—

रघुवश के पचम सर्ग में—रघु की दानवृत्ति के प्रसङ्ग में रघु एव कौत्स के कथोपकथन का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। कौत्स रघु से भिक्षा माँगने आते हैं—'रघु उनका सत्कार करते हैं। किन्तु रघु के हाथ में मिट्टी का पात्र देखकर चिंतित हो, कौत्स से कहते हैं—'हे राजन्! आपके राज्य मे सब प्रकार का सुख है। बड़ों की पूजा करना आपके वश का धर्म है। मैं आपके पास कुछ माँगने आया था किन्तु मुझे आने में कुछ विलम्ब हो गया, इसी का मुझे खेद है। आपने अपना सब कुछ दान दे डाला, केवल यह शरीर ही आपके पास शेष है।' इतना कहकर कौत्स विषादमना अन्यत्र जाने के लिए तत्पर होते हैं किन्तु कौत्स के (उद्दीपन रूप) इन वचनो को सुनकर परम धार्मिक रघु कहते हैं—आप जैसा वेदपाठी ब्राह्मण गुरुदक्षिणा के लिये हमारे पास धन माँगने आये और यहाँ से निराश होकर लौट जाये यह नही हो सकता। इसलिए हे द्विजवर! आप मेरी यज्ञ शाला में चलकर दो-चार दिन विश्राम कीजिये तब तक मैं आपकी गुरुदक्षिणा के लिए कुछ न कुछ प्रबन्ध अवश्य करूँगा। बाद मे अप्रत्याशित रूप से धन वर्षा होने पर उन्हे विनम्रता पूर्वक इच्छित धन दान स्वरूप देते हैं। यहाँ याचक की दीनता और दाता के सहृदयत्व की सुन्दर व्यजना हुई है। इस प्रकार यह सवाद रघु के दानवीर स्वरूप का व्यजक है।

राम-परशुराम—

राम द्वारा शिव-धनुष तोड दिये जाने के फलस्वरूप परशुराम अत्यन्त क्रोधित होते हैं। इसलिए विवाह के पश्चात् लौटते हुए राम के मार्ग मे प्रकट होकर बडे ही रोष पूर्ण स्वर मे कहते हैं—'मेरे पिता का वध करके जिन क्षत्रियों ने मुझ से शत्रुता ले ली है, उन्हे बहुत बार मार कर मुझे कुछ शान्ति मिली है, पर जैसे डण्डे से छेद देने पर सर्प फुफकार उठता है वैसे ही तुम्हारा पराक्रम सुनकर मेरे शरीर मे आग लग गयी है। जनक जी के जिस धनुष को कोई राजा आज तक झुका भी न सका, उसी को तुमने तोड दिया। अब तक मैं जो सबसे बढ़कर बलवान् समझा जाता

था - वह सारा यश आज नष्ट हो गया है। पहले संसार में राम कहने से मुझे ही लोग समझते थे, किन्तु वह अर्थ अब तुम्हारे नाम के साथ लगता जा रहा है—यह सब देखकर मुझे लज्जा होता है। इसलिये क्षत्रियों का नाश करने वाला मुझे तुम्हारा पराक्रम तब तक अच्छा नहीं लगता, जब तक तुम्हें मैं जीत न लूँ। इसलिये युद्ध तो पीछे होगा पहले तुम मेरे इस धनुष पर डोरी चढ़ाओ। यदि तुम ऐसा कर सके तो मैं अपना पराजय स्वीकार कर लूँगा। परशुराम के उद्दीपन रूप इन वचनों को सुनकर राम हँसते हँसते इस प्रकार धनुष को हाथ में ले लेते हैं मानो परशुराम के वचन का वही ठीक उत्तर हो। राम धनुष को तत्काल ही प्रत्यञ्चा युक्त कर देते हैं और परशुराम हतप्रभ से रह जाते हैं। तब राम कहते हैं—यद्यपि आपने हमारा अपमान किया है, पर आप ब्राह्मण हैं इसलिए निर्दया होकर मैं आपका वध नहीं करूँगा पर यह बताइये कि इस बाण से मैं आपकी गति रोकूँ या आपका उन दिव्य लोकों में पहुँचना रोक दूँ जो आपने अपने यज्ञ द्वारा अर्जित किया है।'

यह सुनकर परशुराम कहते हैं मैं आपको पहले ही पहचान गया था कि आप ही पुरातन पुरुष हैं, किन्तु मैंने यह जानने के लिए आपको कष्ट दिया था कि आप विष्णु का कितना तेज लेकर पृथ्वी पर अवतरित हुये हैं। इसलिये आप मेरी गति न रोकिये।'

यहाँ एक ओर जहाँ राम के शील विनम्रता एवं तेजस्विता का वर्णन हुआ है, वहीं दूसरी ओर परशुराम के क्रोधी, घमण्डी, उदण्ड स्वभाव की व्यंजना हुई है। राम साधारण पुरुष नहीं, साक्षात् विष्णु के अवतार हैं। वे दिव्य शक्ति से युक्त होते हुये भी विरोधियों के साथ सदाचरण करते हैं—यही कहना कवि को अभिप्रेत है।

कुश तथा अयोध्या की नगरवधू—

रघुवंश के षोडश सर्ग में वर्णित यह संवाद बड़ा ही उत्कृष्ट एवं नाटकीयता से परिपूर्ण है। अर्धरात्रि में अपरिचित नारी को सम्मुख स्थित देख, कुश विस्मित हो जाते हैं और विस्फारित नेत्र सहित पूछते हैं— हे देवि! तुम कौन हो तुम्हारे पति का क्या नाम है और मेरे पास किस प्रयोजन से आयी हो? तुम मेरे इस बन्द भवन में अन्दर तो आ गई हो किन्तु तुम्हारे मुख से यह प्रकट होता कि तुम योगिनी हो, क्योंकि तुम हिम से मारी हुई कमलिनीवत उदास दिखाई पड़ रही हो।' कुश के (अनुभव रूप) प्रश्नों को सुनकर, वह स्त्री उत्तर देती हुई कहती है - हे राजन्! जब भगवान् राम वैकुण्ठ जाने लगे थे, तब जिस निर्दोष अयोध्यापुरी के निवासियों को अपने साथ लेते गये थे, मैं उसी अनाथ अयोध्यापुरी की नगरदेवी हूँ।

अन्त मे अयोध्या की करुणगाथा को सुनकर, नगरदेवी राजा से प्रार्थना करती हैं कि 'आप अपनी कुलपरम्परा की राजधानी अयोध्या मे चलकर रहिये' और कुश भी 'तथास्तु' कहकर अयोध्यापुरी जाने का निश्चय करते हैं।

कवि ने सवाद के माध्यम से कुश के जितेन्द्रिय चरित्र एव अयोध्या की मार्मिक स्थिति की व्यजना की है।

सीता-लक्ष्मण सवाद—

राम की कठोर आज्ञा के फलस्वरूप लक्ष्मण, सीता को वन म छोडने जाते हैं। वहाँ राम की आज्ञा कह सुनाते हैं और विनीत स्वर से कहते ह—'देवि ! मैं पराधीन हूँ। इसलिए स्वामी की आज्ञा से मैंने आपके साथ जो कठोर व्यवहार किया है उसके लिए क्षमा कीजिये।' सीता जी बोली ! 'हे सौम्य मैं तुम पर अति प्रसन्न हूँ। तुम चिरजीवी हो और सदैव मातृभक्ति का पालन करो। श्वश्रूजनो से मेरा प्रणाम कहकर निवेदन करना कि मेरे गर्भ मे आपके पुत्र का तेज है अतएव मेरा कुशल मनाते रहियेगा। राजा से जाकर कहना कि 'आपने मुझे अग्नि मे शुद्ध पाया था, किन्तु इस समय कलङ्क के भय से जो मेरा त्याग किया है, वह आपके प्रख्यात रघुकुल के योग्य नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ समय पूर्व आपने जिस राजलक्ष्मी का तिरस्कार कर मेरे साथ वन-गमन किया था वही आज ईर्ष्यावश मेरा प्रतिष्ठा-पूर्वक आपके घर मे रहना न सह सकी। किन्तु हाय रे विधाता ! वन मे जिन तपस्वियो को मैंने आश्रय दिया था, अब मैं उन्हीं की आश्रिता बनकर किस प्रकार रहूँगी। मेरे गर्भ मे यदि आपका तेज न होता, तो मैं अवश्य आज ही प्राण त्याग देती किन्तु पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् मे सूर्य मैं दृष्टि निविष्ट कर कठोर तपस्या करूँगी जिससे अगले जन्म में आप ही मेरे पति हो और मेरा कभी भी आपसे वियोग न हो। अपना स देश कहते कहते सीता अत्यन्त विह्वल हो जाती है और पुन कुछ सोचकर लक्ष्मण से कहती है—हे सौम्य ! राजा स कहना कि त्याग देने पर भी यह समझकर मेरी देखभाल करते रहियेगा कि सीता आपकी प्रजा और तपस्विनी है।

यह सुनकर लक्ष्मण कहते हैं—'हे देवि ! मैं सब कुछ कह दूँगा।'[1]

यहाँ एक ओर लक्ष्मण की दीनता, नम्रता एव असहायता की व्यजना हो रही है, तो दूसरी ओर सीता की दीनता, करुणा, तथा विषाद का सुन्दर कथन हुआ है। इस प्रकार इस सवाद के माध्यम से करुण रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

---

१ रघुवश १४।३८ ६७

(घ) छन्दों की व्यंजकता—

छन्द योजना काव्य शिल्प का महत्वपूर्ण अङ्ग है। काव्य का आत्मा रस का महत्वपूर्ण सम्बन्ध मानव अन्तस् की भाव तरङ्ग से है। मनोवेग काव्य में प्रयुक्त शब्दों की, स्वर लहरी से उद्वेलित होते हैं। यह स्वर लहरी मधुर, ललित एवं परुष लय की व्यंजक होती है और यही लय ही छन्द की आत्मा है। इस प्रकार काव्य के गम्य रस और छन्द का औचित्यपूर्ण सम्बन्ध कुशल कवि की कार्यकला का परिचायक है। मधुर ललित अथवा परुष लय की व्यंजना कवि भिन्न वर्णों के संयोजन से करता है यह विविध विधि का वर्ण संयोजन वृत्तविधि का उद्देश्य है। अस्तु छन्द-योजना का रस व्यंजना से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

संस्कृत काव्य शास्त्रों में छन्दों की प्रकृति पर गहराई में विचार किया गया है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने छन्दों के विषय में विशेष रूप से विचार किया और इस शाश्वत् सत्य का उद्घाटन किया कि अमुक छन्द अमुक भाव अथवा रस या वस्तु वर्णन के लिए विशेष उपयुक्त है। छन्दयोजना के विषय में उनका कथन है –

'काव्य में रस तथा वर्णनीय वस्तु के अनुसार छन्दों का साथ समझकर विनियोग करना चाहिये।'[1]

अनुष्टुभ—

आरम्भे सर्गबन्धस्य कथाविस्तारसङ्ग्रहे।
शमोपदेशवृत्तान्ते सन्तः शंसन्त्यनुष्टुभम्॥[2]

(किसी सर्ग के प्रारम्भ में कथा के विस्तार का संग्रह करने तथा उपदेश या वृत्तान्त कथन में अनुष्टुभ छन्द के प्रयोग की प्रशंसा विद्वानगण करते हैं।) अनुष्टुभ का स्वभाव इतिवृत्त वर्णन करने में बड़ा सुविधापूर्ण होता है। अतएव इतिहास एवं पुराण ग्रन्थों में इसका बाहुल्येन प्रयोग किया गया है। कालिदास को भी जहाँ कहीं इस प्रकार के अधिक इतिवृत्त को कहना हुआ है इस वृत्त का प्रयोग किया है लेकिन उसमें रुखापन नहीं रहने पाया। उनकी प्रतिभा ने अलङ्कार योजना में भावों का माधुर्य इस प्रकार भरा है कि वे भी सरस हो गये हैं।

कुमारसम्भव के द्वितीय सर्ग में वृत्रासुर द्वारा सताए गये देवगणों का ब्रह्मा की शरण में जाना और उनकी अपनी करुण गाथा सुनाकर पापी राक्षस के वध का उपाय पूछे जाने आदि पौराणिक इतिवृत्त का वर्णन हुआ है। पुराणों में यह कथा बड़े

१ सु० ति० ३।७
२ सु० ति० ३।१७

विस्तार के साथ वर्णित है किन्तु कवि ने केवल एक ही सर्ग में—उस प्राचीन आख्यान को समेट लिया है।[1] इसी प्रकार छठें सर्ग में सप्तर्षियों द्वारा शिव के विवाह का शुभ सन्देश लेकर हिमराज के पास जाने का वर्णन हुआ है।[2] कवि ने इन दोनों कथाओं का वर्णन अनुष्टुभ छन्द में किया है। यह दोनों कथायें सर्ग के प्रारम्भ में एवं पौराणिक हैं।

रघुवंश में भी अनुष्टुभ का बहुश प्रयोग हुआ है। प्रथम सर्ग में महाराज दिलीप की कथा के अन्तर्गत उनकी उज्ज्वल कीर्ति एवं कुशल राज्य-परिचालन का[3] दशम सर्ग में—महाराज दशरथ की कथा, द्वादश सर्ग में राम की कथा[4]—वन-गमन तथा राम-रावण युद्ध पंचदश सर्ग में प्रसिद्ध प्राचीन आख्यान - लवणासुर-वध तथा शम्बूक वध, कुश लव द्वारा राम की सभा में मधुर गान, राम सीता का पुनर्मिलन एवं सीता का धरती में प्रवेश, तथा सप्तदश सर्ग में कुश के पुत्र राजा अतिथि की कथा इत्यादि प्रसङ्गों का वर्णन हुआ है।

रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में रघु के युद्ध यात्रा के प्रसङ्ग में भी अनुष्टुभ का प्रयोग किया गया है।[5] दिग्विजय के लिये सैन्य तैयारी चारों प्रकार की सेनाओं का गमन तथा राजाओं के पराजय का वर्णन इसी छन्द में हुआ है। रघु के प्रस्थान का वर्णन देखिये—'सौभाग्यशाली रघु ने पहले राजधानी तथा सीमा के गढ़ों की रक्षा का प्रबन्ध किया, फिर शुभ मुहूर्त में छह प्रकार की सेनाओं को लेकर विजय के लिये चल पड़े।[6]

मन्दाक्रान्ता—

'प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते।'[7]

(वर्षा एवं प्रवास और विपत्ति के वर्णन में मन्दाक्रान्ता छन्द (काव्य में) उपयुक्त होता है)

कालिदास का खण्ड काव्य 'मेघदूत' आद्योपान्त इसी छन्द में सर्जित है। मन्दाक्रान्ता के प्रयोग का इस काव्य में विशेष कारण है—इस काव्य का प्रारम्भ वर्षा ऋतु के वर्णन से होता है तथा प्रवासी यक्ष की करुण स्थिति के वर्णन के उपरान्त

१ कु०स० २।१-६३
२ कु०स० ६।१-६४
३ रघुवंश १।१-९४ तक
४ रघुवंश १०।१ ८५ तक
५ वही, १२।१ १०१ तक
६ वही, ४।१-८६ तक
७ सु०तिल० ३।२१

समाप्त हो जाता है। वर्षा काल में मेघ के आगमन से साधारण प्रवासी की गति भी आर्द्र बन जाती है और उसकी गति मन्थर हो जाती है। इसलिए क्षेमेन्द्र ने वर्षा प्रवास एवं विपत्ति के वर्णन में मन्दाक्रान्ता के प्रयोग का निर्देश किया। वृत्तरत्नाकर में मन्दाक्रान्ता को मृदु चरणों से क्रीड़ा करता हुआ, मुग्ध एवं स्निग्ध मन्थर गति वाला कहा गया है।

दौत्य कर्म करने वाला मेघ मन्द मन्द चरणन्यास से ही अपनी लम्बी यात्रा में अग्रसर होता है। भौगोलिक दृष्टि से भी दक्षिण से चलकर मानसून उसी पथ का अनुसरण करता है जिसे कालिदास ने अपनी रस स्निग्ध रचना में निर्दिष्ट किया है और इस पथ में वर्षा के नायक मेघदूत ने मन्दाक्रान्ता के रथ पर चढ़कर मनोहारी प्रवास किया।

मेघदूत का प्रवासी नायक दुर्भाग्य ग्रस्त नायक है। इसलिए कवि ने उसके कारुण्य का वर्णन मन्दाक्रान्ता में किया है। वियोगी यक्ष अपनी पत्नी की शोका-कुल दशा का परिचय देता हुआ कहता है विरह के कठोर दिन बड़ी ही कठिनाई से व्यतीत करते करते उसका रूप विवर्ण हो गया होगा। उसे देखकर तुम्हें भ्रम हो सकता है कि यह कोई बाला है या पाले से मारी हुई कमलिनी।

मेघदूत में महाकवि का सारा काव्य नैपुण्य पुञ्जीभूत होकर प्रस्फुटित हुआ है। ऐसा कहा जाता है कि 'कालिदास की समग्र काव्यकला का दर्शन किसी एक स्थान पर देखना है तो मेघदूत का अध्ययन करना चाहिये।

इस प्रकार मन्दाक्रान्ता की अपनी मन्द मन्द गति विप्रलम्भ शृङ्गार के करुण कोमलभाव की व्यञ्जना करने में विशेष सहायक सिद्ध हुई है और कालिदास ने उसके प्रयोग में विशेष निपुणता का परिचय दिया है। तभी तो आचार्य क्षेमेन्द्र भी कालिदास के मन्दाक्रान्ता की प्रशंसा करते हैं—

इस काव्य का अध्ययन कर यह कहना ही पड़ता है कि 'मेघदूत की मन्दाक्रान्ता अपनी समस्त विशेषता लेकर अमर हो गयी है। कवि का सम्पूर्ण वाग्वैभव इसमें प्रकट हुआ है। 'मेघदूत में उत्कृष्ट कल्पना वैभव, कलापूर्ण सृजन सौष्ठव, भावों की एकाग्रता अद्भुत एवं अद्वितीय ढङ्ग से व्यक्त हुई है। उनकी मन्दाक्रान्ता ने दक्षिण से उत्तर दिशा तक—प्रवासी यक्ष का सन्देश उसकी प्रिया तक पहुँचाने का सफल

---

१ वृ० रत्ना०

२ उ० मे० २३

दीरय काय किया। ६ । मृदु और मन्थर गति म का प रसिका का जिस आनन्द की अनुभूति हुई है—वह सचमुच आश्चयजनक है।

रघुवश मे भी यत्र-तत्र मन्दाक्रान्ता का प्रयोग हुआ है। अष्टम सग के अन्त में विधुर राजा अज के शरीर त्याग[1] चतुदश सग के अन्त मे सीता वियोग के कारण दुखि ■ राम द्वारा यज्ञ करना, पचदश सग के अन्त म राम का शरीर[2] त्याग, षोडश सग के अन्त मे कुश कुमुदवती का विवाह तथा सर्पों का शान्त हो जाना[4], सप्तदश सग मे अन्त म राजा अतिथि के समृद्धिशाली राज्य का स्वरूप[5], तथा एकोनविश सग के अन्त म अग्नि वण की मृत्यु के फलस्वरूप दुखित रानी[6] इत्यादि प्रसङ्ग का वणन मन्दाक्रान्ता छन्द म हा हुआ है। अग्निवण की मृत्यु के उपरा त महारानी की शोका-वस्था का चित्रण देखिए—'राजा की दु खद मृत्यु से महारानी की आँखो के उष्ण अश्रुओ मे तपे हुये गभ पर, जब कुल परम्परा के अनुसार होने वाले अभिषेक के समय, सोने के घडे से शीतल जल पडा, तो वह शीतल हो गया।'

उपजाति

शृङ्गारालम्बनोदारा नायिका रूप वणनम्।
वसन्तादि तदङ्ग ■ सच्छ्रायमुपजातिभि ॥[7]

शृङ्गारादि के आलम्बन स्वरूप उदार नायिका के उदार रूप का वणन तथा शृङ्गार के अङ्गभूत वसन्त आदि का वणन उपजाति छन्द म करना चाहिए।

कालिदास के काव्यो मे उपजाति छन्द का प्रचुर रूप म प्रयोग हुआ है। कुमारसम्भव म कवि ने पावती के रूप वणन के अवसर पर उपजाति का सरल प्रयोग किया। शृङ्गार रस का आलम्बन-स्वरूप पावती के नेत्र का प्रशसा करता हुआ कवि कहता है—

बडी-बडी आँखों वाली पावती की चितवन आँधी से हिलते हुये नील कमलो के समान चचल थी। उसे देखकर यह पता नही चलता था कि यह कला उन्होंने पावती से सीखी है या पावती ने उनसे।[8]

१ रघुवंश ८।९५
२ रघुवश १४।८६-८७
३ वही, १५।१०३
४ वही १६।८६ ८८ तक
५ वही, १६।५७
६ वही, १६।५७
७ सु० ति० ३।१७
८ कु०स १।४७ ५१ तक

कुमारसम्भव¹ तृतीय सर्ग में वसन्त-वर्णन में उपजाति का प्रयोग किया गया है। वसन्तागमन में प्रकृति का चित्र देखिये—'वसन्त के आते ही सूर्य भी दक्षिणायन से उत्तरायण चले जाते हैं। उस समय दक्षिण से बहता हुआ मलय पवन ऐसा प्रतीत होता है मानो अपने पति सूर्य के चले जाने पर दक्षिण दिशा दुःखी होकर अपने मुँह से लम्बी-लम्बी निश्वास छोड़ रही हो। अशोक का वृक्ष भी तत्काल नीचे से ऊपर तक फूल पत्तों से लद गया और रुनझुनाते बिछुओं वाली सुन्दरियों के चरणों के प्रहार की बाट भी जोहने नहीं दिया। सुन्दर वसन्त ने नई कोपलों के पंख लगाकर आम की मंजरियों के बाण तैयार कर लिये। उन पर उसने जो भौंरे बैठाए वे ऐसे लगते थे मानो उन बाणों पर कामदेव के नाम के अक्षर लिखे हुए हैं।

पुनः उपजाति छन्द का प्रयोग सप्तम अध्याय में नायक-नायिका के स्वाभाविक रूप-लावण्य के वर्णन में एवं विवाह प्रसङ्ग² में किया गया है। सुडौल अङ्गों वाली पार्वती का निचला होंठ जो ऊपर के होंठ से एक रेखा से अलग हो गया था, जिस पर लगी हुई चिकनाई ने उस पर लाली चढ़ाकर उसे और भी सुन्दर बना दिया था वह होंठ जब फड़कता था तब उस समय, उसकी शोभा अतिशय प्रतीत होती थी।

रघुवंश में भी कवि ने उपजाति का सफल प्रयोग किया है। छठें तथा सातवें सर्ग में राजाओं की विविध शृङ्गारिक चेष्टाओं अज इन्दुमती के प्रति स्त्रियों के सहज आकर्षण का भाव उन दोनों (अज और इन्दुमती) के अनुभावों तथा संचारियों का वर्णन उपजाति छन्द में ही हुआ है।

कहीं-कहीं कवि ने उपजाति का प्रयोग अपनी सुविधानुसार भी किया है, जैसे नायकों की अतिशय दानशीलता दिग्विजय एवं उनकी वीरता इत्यादि प्रसङ्गों को उपजाति छन्द में निबद्ध किया।

कुछ कारुणिक दृश्यों का वर्णन भी कवि ने उपजाति छन्द में किया है। चतुर्दश सर्ग में वन से लौटे राम तथा माताओं का मिलन राम द्वारा सीता का त्याग हृदय विदारक क्रन्दन तथा करुण सन्देश प्रेषण इत्यादि का वर्णन उपजाति में हुआ है।

कहीं-कहीं विस्मय एवं आश्चर्यजनक मनोभावों के कथन में तथा जल-विहार के प्रसङ्ग में भी उपजाति छन्द का निरूपण हुआ है। कुश के शयनागार में अयोध्या

---

१ कुमारसम्भव ३।१-७४ तक

२ स० ७।१-८३ तक

दैवी के आगमन का वर्णन देखिये—'एक दिन आधी रात को, जब शयन-गृह का दीपक टिमटिमा रहा था और सब लोग शयन कर रहे थे कुश को एक स्त्री दिखाई दी, जिसे उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था, पर उसका वेश देखने से ऐसा जान पड़ता था कि उसका पति परदेश चला गया है।

अयोध्या की मार्मिक दशा का वर्णन भी इसी छन्द में हुआ है।

रघुवंशी नृपों के वंश वर्णन में भी कवि ने उपजाति का ही प्रयोग किया है।

'ऋतु संहार' में ग्रीष्म, वर्षा, शिशिर, वसन्त इत्यादि ऋतुओं का वर्णन उपजाति छन्द में हुआ है। इन ऋतुओं के आगमन से मानव मन में आह्लाद एवं आनन्द का संचार होता है और इनके प्रभाव से मानव के मानस पटल पर सुप्त भावनायें जाग्रत होने लगती हैं। इन विविध भावनाओं की अभिव्यक्ति जितने सुन्दर ढङ्ग से उपजाति में हो सकती है, अन्य छन्द में नहीं। वसन्त वर्णन देखिये—'कोयल एवं मदमाते भौंरा के स्वरों में गूँजने वाले, बौरे हुये आम के पेड़ों से भरा हुआ और मनोहर कनेर के फूलों वाले, अपने तीक्ष्ण वाणों से यह वसन्त मानिनी स्त्रियों के मन का भेदन कर रहा है जिससे उनके हृदय में प्रेम जाग्रत हो।

इस प्रकार कालिदास ने अपने काव्य में उपजाति का सफल प्रयोग कर, अपनी सहज अभिरुचि का परिचय दिया है। उनके काव्य में उपजाति के बहुल प्रयोग ने ही, सम्भवतः परवर्ती काल में उपजाति को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बना दिया। काव्य में वैदर्भी रीति को व्यक्त करने में यह छन्द अधिक उपयुक्त है—न बहुत बड़ा न बहुत छोटा। विशेषकर वीर एवं शृङ्गार रस को व्यक्त करने के लिए, इससे बढ़कर उपयोगी दूसरा छन्द नहीं है।

वसन्ततिलका—

(वीर और रौद्र रस के मेल में वसन्ततिलका छन्द उपयुक्त होता है)

वसन्ततिलका का यह स्वरूप कालिदास का अभीष्ट न था। उन्होंने वसन्ततिलका का प्रयोग कहीं तो सर्ग में किया और कहीं सर्ग के बीच में। वस्तुतः अपनी प्रतिभा के प्रताप से कवि ने जिस छन्द को जहाँ लगाया, वह वहीं सज गया तथा

---

१ रघुवंश १६।१-८४ तक
२ रघुवंश १८।१-५१ तक
३ ऋतुसंहार १।१-२१ तक
ऋतुसंहार २।१-२० तक
वही, ४।१ १३ तक
वही, ५।१ १० तक

उसी भाव की अभिव्यक्ति करने में सक्षम हो गया। कन्यागत प्राप्ति के स्वप्न में न ध्वनि की आवश्यकता नहीं होती अतएव इसके लिए वसन्ततिलका छन्द उपयुक्त होता है। क्योंकि इसमें भावों की गति में मन्दता आ जाती है अतएव उस दैहिक का वर्णन करने में वसन्ततिलका बड़ा उपयुक्त माना गया है। कुमारसम्भव में कवि ने हार्दिक दुःख भिक्षुओं धैर्य धारण करने के प्रसङ्ग में तथा काम की भस्मता के अवसर पर वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग किया। पार्वती की घोर तपस्या के फल-स्वरूप शङ्कर जी प्रकट होते हैं और कहते हैं हे अवनताङ्गि![1] आज से तुम मुझे तप द्वारा क्रीत अपना दास समझो। इतना सुनकर पार्वती जी को उस समय जितना कष्ट हुआ था वह सब ऐसा लगा कि जब कार्य पूर्ण हो जाता है तो उसके लिए किया कष्ट भूल जाता है।

रघुवंश में कई स्थलों पर वसन्ततिलका का प्रयोग हुआ है। पंचम सर्ग में इन्दुमती को प्राप्त करने के लिए अज को विदा कर वैतालिकों द्वारा अज के वीर चरित्र का प्रशस्ति गान नवम् सर्ग में महाराज दशरथ की आखेट क्रीड़ा तथा [illegible] सर्ग में राम लक्ष्मण भरत इत्यादि के वीर आदर्श चरित्र के व्यञ्जना आदि के प्रसङ्ग में भी वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग किया। इस प्रकार रघुवंश में राजाओं के वीर चरित्र के कथन में वसन्ततिलका का प्रयोग हुआ है किन्तु उसमें रौद्र का लेश भी नहीं है केवल उनके उच्च आदर्शों तथा पौरुष का कथन हुआ है।

वन से लौटे राम को भरत के द्वारा नमस्कार करने का तथा महाराज दशरथ के आखेट का वर्णन इसी छन्द में हुआ है।

नवम तथा अन्यान्य सर्गों के अन्त में वसन्ततिलका छन्द का सफलता पूर्वक प्रयोग हुआ। इस प्रकार वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग विविध विषयों तथा विविध प्रसङ्गों के अवसर पर हुआ है।

ऋतुसंहार में भी वसन्ततिलका का प्रयोग मिलता है। कवि ने ऋतुओं के प्रभाव से होने वाले मानव में परिवर्तनों का ही अधिकतर वर्णन किया। इन सभी स्थलों में शृङ्गारिक अनुभावों का कथन हुआ है। कवि ने वसन्ततिलका का प्रयोग

---

१ कुमारसम्भव ३।७५
२ कुमारसम्भव ४।५५
३ वही, ५।८५, ८६
४ रघुवंश १३।६८, ७८ तक
५ रघुवंश ६।७६ ८२
६ वही १८।५२, ५३

वर्षाऋतु[1] शरदऋतु[2] हेमन्त ऋतु[3] तथा वसन्त ऋतुओं ने अवसर[4] र किया है जिसमें प्रकृति के सौन्दय एव मानव हृदय के मनोभावों की व्यजना ही प्रधानरूप से हुई है।

रथोद्धता—

रथोद्धता विभावेषु भव्या चन्द्रोदयादिषु।[5]

(भव्य चन्द्रोदयादि उद्दीपन विभावों का वर्णन रथोद्धता छन्द में करना चाहिए)

महाकवि कालिदास का रथोद्धता, छन्द के प्रति अपना स्वारस्य है। जिस कर्म का परिणाम खेद रूप में परिणत हो जाए,—चाहे वह खेद रतिजनक हो, दुष्कर्म जनित हो या पश्चाताप जनित हो—या आखेटजनित हो, सबका वर्णन रथोद्धता छन्द में हुआ है।

कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग में[6] शिव पार्वती की काम-क्रीडा का वर्णन रथोद्धता छन्द में हुआ है। शङ्कर जब पार्वती का चुम्बन करना चाहते हैं, तो वे अपना होठ ही नहीं बढाती और जब उन्हें हृदय से लगाना चाहते तो वे अपने हाथ तक नहीं उठातीं। इस प्रकार बाधाओं के साथ, अधूरे रस के साथ भी, शिव जी ने वधू के साथ जो रति-क्रीडा की, उसमें उन्हें आनन्द ही मिला।

रघुवंश में दुखान्त घटनाओं के वर्णन में रथोद्धता छन्द का प्रयोग हुआ है। दशरथ के आखेटजन्य परिश्रम के प्रसङ्ग में[7], मुनि विश्वामित्र के यज्ञ रक्षार्थ राक्षसों के वध के प्रसङ्ग में, राम द्वारा शिव के धनुष भङ्ग के प्रसङ्ग में, मार्ग में परशुराम को देखकर दशरथ की चिन्ता के प्रसङ्ग में, तथा अग्निवर्ण की काम क्रीडा एव दुखान्त मृत्यु के प्रसङ्ग में[8] रथोद्धता छन्द का ही प्रयोग हुआ है। क्षयरोग ग्रसित राजा अग्निवर्ण की दयनीय स्थिति का वर्णन— धीरे धीरे उसका शरीर पीला पड गया। दुबलता के कारण उसने आभूषण पहनना छोड दिया, वह सेवकों के कन्धे का सहारा लेकर चलने लगा उसकी बोली धीमी पड गयी और यक्ष्मा रोग से सूखकर वह ठीक विरहियों के समान दिखाई देने लगा।[9] इन श्लोकों में वर्णित स्थलों को

१ ऋतु० स० २।२१, २२
२ ऋतु०स० ३।१-२२ तक
३, वही, ४।१४ ३८ तक
४ वही ७।११, ११-२८ तक
५ सु० ति० ३।१८
६ कु०स० ८।१-९० तक
७ रघुवंश ९।६८
८ रघुवंश ११।१ ९१ तक
९ वही १९।१-५५ तक

देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि दुःख विषाद एवं खेद के वर्णन के प्रसङ्ग के लिये कवि ने रथोद्धता का अनेक से चयन किया है।

प्रहर्षिणी—

आचार्य क्षेमेन्द्र ने प्रहर्षिणी छन्द के विषय में विचार नहीं किया। कालिदास ने प्रहर्षिणी छन्द का प्रयोग केवल रघुवंश में किया है। प्रहर्षिणी छन्द कहीं तो सर्ग के अन्त में और कहीं सर्ग के मध्य में प्रयुक्त हुआ है।

जहाँ सर्ग के मध्य में इसका प्रयोग हुआ है वहाँ इसमें दुःख की धारा में हर्षातिरेक का चित्रण हुआ है। वस्तुतः यह छन्द अन्वर्थनामा ही है। रघुवंश के प्रथम सर्ग में महाराज दिलीप गुरु वसिष्ठ के पुत्र प्राप्ति का उपाय पूछते हैं तो—वसिष्ठ नन्दिनी की सेवा रूप उपाय बताते हैं। राजा यह सुनकर बड़े ही प्रसन्न होते हैं और उन्हें यह विश्वास होने लगता है कि उनको पुत्र अवश्य ही प्राप्त होगा।[1]

महारानी इन्दुमती की मृत्यु के पश्चात् दुःखी राजा अज अपने पुत्र का ध्यान कर तथा स्वप्न में प्रिया के समागम का आनन्द लेकर किसी प्रकार अपने समय को व्यतीत करने लगे — इस दुःख में आनन्द के पर्यवसान का चित्रण कवि ने प्रहर्षिणी छन्द में किया है।

त्रयोदश सर्ग में—प्रसन्न चित्त राम के सीता सहित अयोध्या लौटने का वर्णन प्रहर्षिणी छन्द में किया गया है।[3] आगे आगे अयोध्या की प्रजा चल रही थी और पीछे पीछे पुष्पक विमान चला जा रहा था जिस पर राम बैठे थे। इस प्रकार अर्द्ध योजन तक चलने के बाद राम ने अयोध्या के उस सुन्दर उपवन में डेरा जमाया, जिसे पहले से ही शत्रुघ्न ने भली भाँति सज्जित कर दिया था।

इस प्रकार हर्षमय प्रसङ्गों का ही वर्णन कवि ने प्रहर्षिणी छन्द में किया है।

मालिनी

कुर्यात्सर्गस्य पर्यन्ते मालिनीं द्रुततालवत् ॥[4]

(सर्ग के अन्त में द्रुतताल के समान मालिनी छन्द का प्रयोग करना चाहिये) महाकाव्य में सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन करने का नियम है। सर्ग की समाप्ति में जब कवि को किसी कथा को अथवा किसी प्रसङ्ग को शीघ्रता से समाप्त करना होता है—तो उस समय मालिनी छन्द ही अधिक उपयुक्त होता है।

---

१ रघुवंश १।९५ २ रघुवंश ८।९२
३ वही, १३।७९ ४ सु० ति० ३।१८

कालिदास के काव्यों में किसी किसी सर्ग के अन्त में मालिनी छन्द का प्रयोग किया गया और किसी किसी सर्गान्त में अन्य छन्दों (पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी, मन्दाक्रान्ता वसन्ततिलका इत्यादि) का भी प्रयोग किया गया है।

कुमारसम्भव के प्रथम, द्वितीय, सप्तम और अष्टमसर्गों के अन्त में मालिनी का प्रयोग किया गया है। रघुवंश में द्वितीय, सप्तम, दशम, एकादश सर्ग के अन्त में मालिनी छन्द ही प्रयुक्त हैं। ऋतु संहार में अन्तिम सर्ग के अतिरिक्त शेष सभी सर्गों के अन्त में मालिनी का ही प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ कुमारसम्भव के सप्तम सर्ग की समाप्ति का चित्र देखिये—

'नया विवाह होने से लजीली, महादेव जी के हाथों द्वारा अँचल खींचे जाने पर, अपना मुँह छिपाने वाली तथा सखियों की चुटकियों का ज्यों त्यों उत्तर देने वाली, पार्वती जी के आगे आकर जब प्रमथादिगण अनेक प्रकार के मुँह बनाने लगे, तो पार्वती भी मन ही मन हँस दी।'

वैतालीय—

महाकवि ने करुणरस के वर्णन में वैतालीय छन्द का प्रयोग किया। रघुवंश में अज-विलाप[1] का वर्णन तथा कुमारसम्भव में रति विलाप[2] का वर्णन वैतालीय छन्द में ही हुआ है। अज एवं रति दोनों ही करुणरस के आश्रय हैं। अतएव कवि ने उनकी मार्मिक तथा दुःखपूर्ण दशा का चित्रण वैतालीय छन्द में किया है।

इसी प्रकार रघुवंश के नवम सर्ग में दशरथ द्वारा—हाथी के भ्रम में तापस कुमार के मारे जाने जैसा दुःखपूर्ण कथा का वर्णन कवि ने वैतालीय छन्द में किया है।[3]

वंशस्थ—

(षाड्गुण्यादि राजनीति सम्बन्धी विषयों का कथन वंशस्थ छन्द में शोभित होता है) किन्तु महाकवि ने वंशस्थ का प्रयोग अपनी सुविधानुसार किया है। कुमारसम्भव में पंचम सर्ग में पार्वती की कठोर तपश्चर्या का वर्णन इसी छन्द में हुआ है।[4] क्षीण कटि वाली प्रसन्नवन्दना पार्वती, गर्मी के दिनों में अपने चारों ओर आग जलाकर उसी के बीच में खड़ी रहने लगी और चकाचौंध करने वाले सूर्य के प्रकाश को भी जीतकर, सूर्य की ओर एकटक होकर देखने लगीं।'

---

१ रघुवंश ८।१, ६६ तक २ कुमारसम्भव ४।१, ४४
३ रघुवंश ६।७४ ४ कु० ति० ३।८

रघुवंश में महाराज रघु के वीर चरित्र की व्यंजना में वंशस्थ छन्द का प्रयोग मिलता है। रघु एवं इन्द्र के युद्ध का वर्णन इसी छन्द में किया गया है—'रघु ने मार के पंखों वाले बाण से इन्द्र की वज्र जैसी ध्वजा काट डाली। उससे इन्द्र का ऐसा क्रोध हुआ मानो किसी ने बलपूर्वक देवताओं की राजलक्ष्मी के सिर के बाल काट लिये हों।

पुष्पिताग्रा—

कालिदास ने अधिकतर पुष्पिताग्रा छन्द का भी प्रयोग सर्ग के अन्त में ही किया है। किसी शुभ कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रस्थान तथा सफलता प्राप्ति का वर्णन पुष्पिताग्रा छन्द में किया गया है। रघुवंश के पंचम सर्ग के अन्त में इन्दुमती स्वयम्वर के लिए प्रस्थान करते हुए महाराज अज का वर्णन पुष्पिताग्रा छन्द में किया गया है।[1] सुन्दर नेत्रों वाले राजकुमार ने उठकर शास्त्र द्वारा बताई गयी प्रातःकालीन सभी उचित क्रियायें की और फिर उनके चतुर सेवकों ने बहुत सुन्दर वस्त्र पहनाए। इस प्रकार सज-धज कर, वे स्वयंवर के राज समाज की ओर चल दिये। स्वयंवर में सफलता प्राप्त कर लेने का वर्णन अर्थात् इन्दुमती द्वारा अज के गले में वर माला डाल देने का वर्णन भी पुष्पिताग्रा में हुआ है।[2]

नवमसर्ग में महाराज दशरथ के आखेट गमन का वर्णन इस छन्द में किया गया है।[3]

कुमारसम्भव में आकाशवाणी के अनन्तर आश्वस्त हुई रति का वर्णन पुष्पिताग्रा में हुआ है।[4] षष्ठ सर्ग में पार्वती से मिलने के लिये महादेव जी की आतुरता का वर्णन इसी छन्द में हुआ है।

पार्वती से मिलने के लिए महादेव जी इतने उतावले हो गए कि तीन दिन भी उन्होंने बड़ी कठिनाई से काटे। जब महादेव जैसों की प्रेम में यह दशा हो जाती है, तब भला दूसरे लोग अपने मन को कैसे वश में कर सकते हैं। इस प्रकार भावों की तीव्रता दिखाने के लिए कवि ने इस छन्द को साधन बनाया।

द्रुतविलम्बित—

समृद्धि के वर्णन में कालिदास ने द्रुतविलम्बित छन्द की योजना की है। रघुवंश के नवम सर्ग में महाराज दशरथ के समृद्धशाली तथा धन धान्य से पूर्ण राज्य

१ रघुवंश ३।१, ६९ तक
२ रघुवंश ५।७६
३ वही, ६।८६
४ वही, ६।६६, ७०
५ कुमारसम्भव ४।४६

का वणन इसी छन्द म हुआ है। महाराज दशरथ बडे ही प्रजावत्सल शासक थे। उनकी कीर्ति दिग् दिगन्त में फैली थी।' कवि उनके राज्य की समुन्नत दशा का वर्णन करता हुआ कहता है—दशरथ जी देवताओ के समान तेजस्वी थे और उनका मन भी सब प्रकार से शान्त था। राज्य के सचालन का भार अपने हाथ में लेते ही उनका देश समृद्धिशाली हो गया। रोग भी उनके राज्य की सीमा में पैर न रख सके, फिर शत्रुओ के आक्रमण की तो सम्भावना ही कहाँ।

हरिणी—

'औदार्यरूचौचित्यविचारे हरिणी वरा॥''[2]

(उदारता, रुचि, औचित्य इत्यादि गुणो के वणन मे हरिणी छन्द श्रेष्ठ होता है।)

हरिणी छन्द का प्रयोग केवल रघुवश म तृतीय सग के अन्त म हुआ है। महाराज दिलीप वृद्ध हो गए हैं, इसलिए उन्होंने सभी प्रकार से समर्थ रघु को राज्य का भार सौंप दिया। उनका यह काय सभी दृष्टि से उदारतापूण तथा औचित्यपूर्ण था क्योकि उन्होने यह काम रघुकुल की परम्परा के अनुकूल किया था।[3]

महाकवि की कल्पना ने जिस छन्द का स्पश किया उस छन्द द्वारा रस एव भाव की व्यजना म प्राण प्रतिष्ठा सी हो गई है। उनके द्वारा प्रयुक्त छन्दो का पयवेक्षण करने पर यह ज्ञात होता है कि मन्दाक्रान्ता कवि का प्रिय छन्द रहा है और उसमे उस प्रभूत यश एव सफलता भी प्राप्त हुई है। कवि ने मन्दाक्रान्ता के प्रति रुचि का परिचय मेघदूत के माध्यम स दिया है। मन्दाक्रान्ता के पश्चात् उन्होंने अनुष्टुभ छन्द का सर्वाधिक प्रयोग किया और लगभग एक हजार श्लोको की रचना इस छन्द में किया है। इसके पश्चात् उपजाति एव क्रमश अन्य छन्दो का प्रयोग हुआ है।

महाकवि का यह छन्द प्रयोग इतना सटीक एव तथ्यपूण है कि बाद मे चलकर वे ही छन्द शास्त्र के नियम बन गए। यद्यपि छन्दो के प्रयोग मे कालिदास ने अपनी वैयक्तिक रुचि को ही प्रधानता दी है किन्तु फिर भी वे विषय एव रस के सवथा अनुकूल एव सराहनीय हैं।

कालिदास के छन्द प्रयोग मे कही भी 'इतिवृत्तता' दोष नही है। उनके सफल छन्द प्रयाग देख कर हम यह कह सकते हैं कि—"महाकवि ने अपने काव्य के द्वारा

---

१ रघुवश ६।१, ५४ तक २ सु० ति० ३।२०

३ रघुवश ३।७०

रसो के अनुकूल छन्दों की योजना की विशेषता दी है।" उनका छन्द परिधान काव्यात्मा रस को और भी अनुकूलित कर देता है।

अलङ्कारों की व्यंजकता—

काव्यात्मा रस का, शब्दालङ्कार परम्परया आभूषणों की भाँति, अङ्गों का अनुवृत्त कर सुशोभित करते हैं। अलङ्कारों से काव्य के शरीरभूत शब्द एवं अर्थ सजते हैं एवं उनके द्वारा काव्यात्मा (रसादि) परिष्कृत रूप में परिलक्षित होता है। अल-ङ्कारों की यही अलङ्कारता है अन्यथा यदि कवि का सरम्भ व्यंग्य अर्थ की अपेक्षा केवल अलङ्कार-योजना में ही रहा तो वह काव्य चित्र काव्य कहलाता है। कालिदास जैसे ध्वनि के सिद्धहस्त महाकवि के लिए अलङ्कार-योजना सहज रूप में केवल व्यंग्य अर्थ को अलंकृत करने में चरितार्थ एवं उपयोगी समझी गयी थी। उन्होंने कहीं भी अलङ्कार का प्रयोग अलङ्कार के लिए नहीं किया है।

वस्तुतः परिष्कृत रुचि वाला होने के कारण उन्होंने कुछ ही अलङ्कारों का प्रश्रय दिया जो परवर्ती युग में उनकी शैली मान लिए गए। उपमा का सम्बन्ध उस महाकवि से होने के कारण ही वह धन्य हो गया और सादृश्यमूलक सभी अलङ्कारों का उसने अपने नाते महाकवि में सम्यक् रूप से सुरभित कर दिया। अर्थान्तरन्यास उनका मौलिक उक्तियों का साधन बना। अतिशयोक्ति एवं उत्प्रेक्षायें वन्दनवार की तरह भावों का स्वागत करने के लिए यत्र तत्र सुसज्जित दिखाई पड़ती हैं। व्यतिरेक, सन्देह दृष्टान्त एवं परिणामादि तो महाकवि की लेखिनी के स्पर्श से ही यथार्थ हो गए। सबने मानो अपने चित्रकाव्य का लक्षण छोड़कर ध्वनिकाव्य के प्रधान तत्त्व का स्वरूप धारण कर लिया हो। कालिदास के काव्य में अलङ्कार केवल व्यंजक हैं। वहाँ यदि शब्द अर्थ, सन्धि समास प्रकृति प्रत्यय आदि सभी व्यंजकता का बाना पहने हुए हैं, तो अलङ्कारों ने भी महाराज काव्य रस के व्यंजक होने का सेहरा धारण कर रखा है। अस्तु अब हम कालिदास के काव्य में प्रयुक्त अलङ्कारों की विशेषता का विवेचन करेंगे जो सभी व्यंजक अलङ्कार कहे गए हैं—

उपमा[1]—

महाकवि कालिदास को उपमा के प्रति विशेष पक्षपात रहा है। अलङ्कारों की *मातृभूमि उपमा के प्रयोग में उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है। उनकी उपमाओं* का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। प्रकृति के प्राङ्गण में उन्हें अनेक उपमान दिखाई दिये,

---

१ का० प्र० पृ० ४४३

अतएव उन्होंने जगत के सभी कोनो से अपने उपमानों को ग्रहण किया—जड़, चेतन, वृक्ष, पुष्प, स्थावर-जङ्गम पृथ्वी-आकाश इत्यादि। यही नहीं उनके काव्य मे शास्त्रीय उपमाओ की भी कमी नही, इतिहास एवम् पुराण सम्मत उपमाएँ भी मिलती हैं। कुछ व्यावहारिक एवम् दर्शन, व्याकरण से सम्बन्धित उपमाओ का भी प्रयोग हुआ है। वस्तुत कवि ने अपनी शक्ति व्युत्पत्ति के बल से, विविध उपमाओ के स्वरूप मे, वैविध्य उत्पन्न कर, उसे एक गौरवपूर्ण अलङ्कार बना दिया।

यो तो, महाकवि की सारी कृतियाँ सहज रूप म अलङ्कारो से अलङ्कृत हैं, और उपमा की शोभा से प्राय प्रत्येक श्लोक भास्वर है, सभी स्थलो म उपमा की योजना सार्थक है, अनुपम है, नूतन है एवम् भावाभिव्यक्ति म अत्यन्त सशक्त है, उदाहरण रूप म प्रस्तुत करने पर निबन्ध का भार अति पृथुल हो जायेगा, किन्तु उनके काव्य में प्रयुक्त कुछ उपमाओ का ही बानगी के रूप म उल्लेख किया जायेगा।

कुमारसम्भव के प्रथम सग मे मालोपमा का सुन्दर उदाहरण हिमालय राज के प्रसङ्ग मे मिलता है—'जिस प्रकार अत्यन्त प्रकाशमान लौ को प्राप्तकर दीपक, मन्दाकिनी को प्राप्तकर स्वग का माग एवम् व्याकरण से शुद्ध वाणी को प्राप्त कर विद्वानगण सुन्दर लगने लगने हैं, उसी प्रकार पार्वती को पाकर हिमवान भी पवित्र एवम् अलङ्कृत हो गये।

यहाँ कवि पार्वती की प्रकाशमान लौ से उपमा देकर, यह बताना चाहता है कि वह हिमराज के वंश को (अपने उत्कृष्ट कृत्यों द्वारा) प्रकाशित करने वाली हैं। पुन स्वग के माग एवम् शुद्ध वाणी से उपमा देकर, वह उनकी पवित्रता एवम् सस्कारो से सस्कृत होने की व्यजना कर रहा है। कवि पार्वती का वणन करता हुआ कहता है—'पार्वती ने जब अध्ययन प्रारम्भ किया, तो उन्हे प्राक्तन जन्म की सारी विद्याएँ स्वय स्मरण हो गइ, जैसे शरद् ऋतु म गङ्गा जी म हसा की पक्तिया, एवम् रात्रि म महौषधियो म आभा, स्वय आ जाती है।[२]

यहाँ पार्वती का उपमा गङ्गा एवं औषधि से दी गई है, जिससे पार्वती की पवित्रता एव स्वस्थता की व्यजना होती है। साथ ही विद्याओ को हसा के समान बताया गया है जिसस उनकी निर्मलता की व्यजना होती है। जिस प्रकार गङ्गा मे हसा का पक्तिया क्रम से आती जाती हैं, उसी प्रकार कवि यह कहना चाहता है

१ कु०स० १।२८
२ कु०स० १।३०

कि पार्वती ने सारी विद्याएँ क्रम से प्राप्त कीं। हर समय गङ्गा में हंसों की पंक्तियाँ एवं औषधियों में आभा नहीं आती, अपितु शरद् ऋतु एवं रात्रि में ही आती है, ठीक उसी प्रकार पार्वती ने भी समय पर ही विद्याएँ अर्जित की — इस प्रकार सर्वाङ्ग दृष्टि से यह उपमा बड़ी सप्रयोजन एवं उपयुक्त है।

नवयौवन के समय पार्वती के चतुरस्त्र (चौरस) वपु की विकसित मनोहर रूप को कवि ने उपमालङ्कार से सजाया है और एक से न बनी तो, दो उपमाएँ लगा दीं क्योंकि दो यानी की अभिव्यक्ति करनी थी। कवि कहता है—जिस प्रकार तूलिका से भरा हुआ चित्र एवम् सूर्य की किरणों का सम्पर्श पाकर, पुष्प-पुष्पित हो जाता है उसी प्रकार पार्वती का शरीर भी नवयौवन पाकर खिल उठा।

यहाँ कवि ने पार्वती के शरीर को तूलिका से उन्मीलित चित्र से उपमा देकर अङ्गों में चकाचौंध एवम् आकर्षण को एवम् विकसित अरविन्द से देकर शरीर के मार्दव के साथ सहजता का कथन किया है। और इससे पार्वती के पद्मिनीत्व की व्यञ्जना हो रही है।

चतुर्थ सर्ग में प्राण देने को तत्पर रति का इस प्रकार वर्णन हुआ है—

जैसे प्रथम वर्षा सूखते हुए तालाब की व्याकुल शफरियों को जीवन प्रदान करती है वैसे ही (अचानक उद्भूत) आकाशवाणी ने शरीर त्याग को तत्पर रति पर यह कृपा वाणी की वर्षा की।[२]

यहाँ कवि वर्षा के संयोग से नव जीवन प्राप्त मछलियों को रति से उपमा देकर यह व्यञ्जना कर रहा है कि वस्तुतः रति कामदेव की मृत्यु से अत्यन्त व्यग्र थी किन्तु प्रथम वृष्टि के समान आकाशवाणी को सुनकर उसमें नव आशा (कामदेव से पुनर्मिलन) का संचार हुआ।

रघुवंश में उपमाओं के अनेक सुन्दर स्थल प्राप्त होते हैं। सर्वप्रथम मङ्गलाचरण में ही जहाँ पार्वती परमेश्वर को वागर्थ से उपमा दी गयी है उसका सौन्दर्य इस प्रकार है — एक वंश के वर्णन के पूर्व माता पिता की वन्दना करना आवश्यक होता है। अतः कवि ने वागर्थ की प्राप्ति के लिए पार्वती-परमेश्वर के उपमान के रूप में वागर्थ को रखा। जैसे माता पिता से वंश चलता है वैसे ही कालिदास के वागर्थ से काव्यात्मा रस प्रसूत होता रहेगा और वही रघुवंश का परम्परागत वंशकर्ता नायक हुआ करेगा।[३]

१, कु०सं० १।३२ २ कु०सं० ४।२६
३ रघुवंश १।१

राजा दिलीप का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—'अपनी दृढ़ता में (संसार के) सब दृढ़ पदार्थों को दबा देने वाले, अपने तेज से सबको न्यग्भूत कर देने वाले, अपनी ऊँचाई से सबको अवर कर देने एवम् अपने प्रसार से पृथ्वी को आच्छादित कर लेने वाले सुमेरु के समान, राजा दिलीप शक्ति, तेज, गौरव एवम् बल सबसे बढ़े-चढ़े थे।'[1]

इस उपमा पर विचार करने पर स्थिति साम्य एवम् वर्णसाम्य का पता चलता है। पहले पार्थिव, फिर पार्थिव धर्मपत्नी एवम् अन्त में तदनन्तरं धेनु' कहा गया है। कवि ने इसी क्रम से उनकी सङ्गति भी की है क्योंकि पहले दिन अर्थात् पार्थिव (पु० लि०) तत्पश्चात् क्षपा तथा सन्ध्या (पार्थिव धर्मपत्नी एवम् नन्दिनी) रखे हैं। इसके अतिरिक्त इस उपमा के द्वारा वर्णसाम्य की भी सुन्दर व्यंजना हुई है। सूर्यास्त के समय, सूर्य की किरणों के कारण, सन्ध्या रक्तमिश्रित पीतवर्ण हो जाती है। अतः कवि ने नन्दिनी को सन्ध्या के समान बताकर उसके रक्त मिश्रित पीतवर्ण की ओर संकेत किया है।

नन्दिनी एवम् सिंह का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—'धनुर्धारी राजा दिलीप ने गेरू के रंग के पर्वत की ढाल पर खिलने वाले लोध्र पुष्पों की भाँति गौ के ऊपर आसीन सिंह को देखा।'[2]

यहाँ गौ की पर्वत से उपमा द्वारा रक्त वर्ण एवम् लोध्र पुष्प से सिंह की उपमा द्वारा पीतवर्ण की व्यंजना हो रही है।

जैसे सन्ध्याकालीन सूर्य से तेज ग्रहण कर अग्नि और भी दीप्त हो उठती है, वैसे ही अपने पिता से राज्य ग्रहण कर रघु और भी तेजस्वी हो गये।[3]

यहाँ रघु की अग्नि से उपमा द्वारा उनकी अतिशय तेजस्विता की व्यंजना हो रही है।

षष्ठ सर्ग में व्यंजक उपमाओं के अनेक स्थल प्राप्त होते हैं। स्वयंवर के समय इन्दुमती का एक के पश्चात् दूसरे राजा के समीप जाने का वर्णन करता हुआ कवि कहता है— जैसे वायु से उठी हुई तरङ्गलेखा के द्वारा मानसरोवर की राजहंसिनी एक पद्म से दूसरे पद्म के पास पहुँच जाती है उसी प्रकार सुनन्दा भी राजकुमारी को दूसरे राजा के पास पहुँचा कर खड़ी हो गयी।[4]

---

१ रघुवंश १।१४ २ वही, २।४०
३ वही, ४।१ ४ वही, ६।२६

यहाँ इन्दुमती की राजहंसिनी से उपमा द्वारा उसके गौराङ्ग एवं आकर्षक शरीर की व्यञ्जना की गई है।

सप्तम सर्ग में अज इन्दुमती विवाहोपरान्त अन्य राजाओं की प्रतिक्रियाओं का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—जैसे वायु के मिल जाने से अन्दर गूढ़नक्र रहते हैं वैसे ही ऊपर से प्रसन्न दिखाई पड़ने वाले दूसरे राजागण मन ही मन ईर्ष्या से भरे थे।

यहाँ राजाओं की गूढ़नक्र से उपमा देकर उनके कपटी स्वभाव की व्यञ्जना की गई है।

दशम सर्ग में राम को लिए हुए कौशल्या का चित्राङ्कित करता हुआ कवि कहता है—प्रसव के कारण पीली राम को अङ्क में लिए हुए कौशल्या ऐसी प्रतीत होती थी जैसे शरद्ऋतु की तनुक्षीणा गङ्गा के ऊपर खिला नीलकमल रखा हो।[2]

यहाँ कौशल्या की तनुक्षीणा गङ्गा तथा राम की नीलकमल से उपमा द्वारा उनके वर्णसाम्य की व्यञ्जना की गई है साथ ही उनके आकर्षक वपु की भी व्यञ्जना हुई है।

एकादश सर्ग में राम द्वारा धनुष भङ्ग कर दिए जाने पर परशुराम का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—राम द्वारा धनुष प्रत्यञ्चा युक्त कर दिए जाने पर परशुराम उस अग्नि के समान तेजहीन हो गए जिसमें धूम्र मात्र शेष रह गया है।[3]

यहाँ परशुराम की धूम्र से उपमा देकर—उनके निस्तेज होने की व्यञ्जना की गई है।

त्रयोदश सर्ग में गङ्गा के वर्णन में कवि ने अद्भुत काव्य कौशल का परिचय दिया है। गङ्गा एवं यमुना के सङ्गम की उपमा के द्वारा कवि के प्रकृति के प्रति प्रेम की सुन्दर व्यञ्जना हुई है। कवि ने क्रमशः माला इन्द्रनील श्वेतकमल नीलकमल एवं कलहंस इत्यादि को उपमान बनाया है।[4]

कालिदास ने कुछ शास्त्रीय उपमाओं की भी योजना की है और उनके माध्यम से दर्शन के तथ्यों को समझाने का प्रयत्न किया—ब्रह्म सरोवर से निकलने वाली सरयू सांख्यशास्त्र के अव्यक्त-प्रकृति से उत्पन्न होने वाले बुद्धितत्व की तरह है।[5]

---

१ रघुवंश ७।३०
२ रघुवंश १०।६६
३ वही, ११।८१
४ वही, १३।५४ ५७
५ वही, १३।६०

यत्र-तत्र आध्यात्मिक उपमायें भी प्राप्त होती हैं। 'वन में महाराज दिलीप ने नन्दिनी के प्रति पद का उसी प्रकार अनुसरण किया जिस प्रकार स्मृति श्रुति के प्रत्येक अर्थ का अनुसरण करती है।'[१]

व्यवहारिक उपमाओं की व्यंजना भी दर्शनीय है—हाथ बँध जाने के कारण राजा दिलीप पास ही स्थित अपराधी पर प्रहार न कर सकने के कारण क्रोध से दग्ध हो उठे और अपने तेज में भीतर ही भीतर उसी प्रकार जलने लगे जैसे मन्त्र और औषधि से बंधा हुआ सर्प।[२]

व्याकरण के रूखे सिद्धान्त भी उपमा में उपमान बनकर सरस बन गये और कवि ने उसके माध्यम से व्याकरण के जटिल नियमों को सुगमता से समझाने का प्रयत्न किया है। राम का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि—'पराक्रमी राम ने बालि को मार कर सुग्रीव को सिंहासन पर वैसे ही बिठा दिया जैसे कोई लिट् लुट् आदि लकारों में अस् धातु के बदले भू-धातु को बैठा देता है।[३]

राम-भरत-लक्ष्मण शत्रुघ्न का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—चारों राजकुमारों को पाकर राजकन्यायें और राजकन्याओं को पाकर राजकुमार अति प्रसन्न हो गये। वह वर वधुओं का मिलन ऐसा हुआ जैसे शब्द के मूल रूप में प्रत्यय जुड़ गये हों।[४]

रघुवंश के वीर बालकों का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—जैसे व्याकरण में कोई अपवाद नियम सामान्य नियम वाले सूत्र को दबा देता है वैसे ही रघु के वंश का कोई भी बच्चा शत्रु को पराजित कर सकता था।[५]

मेघदूत में व्यंजक उपमाओं के सुन्दर स्थल प्राप्त होते हैं। पूर्वमेघ में कवि उपमा के माध्यम से किंचित् शृङ्गारिक अनुभावों का कथन करता हुआ कहता है—उस नगरी (अवन्तिदेश) में मस्त सारसों की मीठी बोली को दूर-दूर तक फैलाता हुआ, प्रातःकाल खिले हुये कमलों की सुगन्ध से सुवासित और शरीर को सुखप्रद लगने वाला शिप्रा का वायु सम्भोग जनित श्रम को उसी प्रकार दूर कर रहा होगा, जिस प्रकार चतुर प्रेमी मीठी मीठी बातों द्वारा फुलेल सुंघाकर और पंखा झलकर सम्भोग में थकी हुई अपनी प्यारी के श्रम को दूर कर देता है।[६]

---

१ रघुवंश २।३ — २ रघुवंश २।३२
३ वही, १२।५८ — ४ वही, १०।५६
५ वही १५।७ — ६ पू० मे० ६३

एक स्थान पर पुनः कुछ मधुर भावों की व्यंजना करता हुआ कवि कहता है— कैलास पर्वत की गोद में अलकापुरी वैसे ही बसी हुई है जैसे प्रिय के अङ्क में कोई कामिनी हो और वहाँ से निकली हुई गङ्गा की धारा ऐसी लगती है, जैसे कामिनी के शरीर से सरकी हुई शाटिका। उत्तुङ्ग भवनों वाली अलका पर वर्षा के दिनों में बरसते हुए बादल ऐसे आच्छादित रहते हैं जैसे कामिनियों के सिर पर मणिमोती गूँथे हुए केश समूह।[१]

यहाँ पूर्वार्ध में कैलास का साम्य एक प्रणयी से किया गया है, अतः यद्यपि अलका का प्रणयिनी से साम्य नहीं दिखलाया गया है तथापि वह प्रणयिनी की गम्यता को प्राप्त हो जाती है। अतएव एकदेशविवर्तिउपमा द्वारा अलकापुरी की वस्तुस्थिति की व्यंजना हो रही है।

ऋतुसंहार में भी एक-दो स्थल पर उपमाओं की सुन्दर योजना दीख पड़ती है। हेमन्त ऋतु का वर्णन करता हुआ कवि कहता है— हिम से युक्त शीतल वायु से कम्पित तथा पकी हुई यह प्रियंगु लता वैसी ही पीली पड़ गयी है जैसे पति से वियुक्त होने पर युवती पाण्डुरिमा हो जाती है।[२]

वर्षा ऋतु में वेगगामी नदियों का साम्य कुलटा स्त्री से स्थापित करता हुआ कवि कहता है—जैसे कुलटा स्त्रियाँ बिना विचार किये अपने को अपवित्र कर बैठती हैं, वैसे ही ये नदियाँ भी अपने मटमैले पानी की बाढ़ में जहाँ-तहाँ किनारे के वृक्षों को ढहाती हुई वेग से समुद्र की ओर चली जा रही हैं।[३]

शरदृतु में धीरे-धीरे बहती हुई नदियाँ—करधनी और माला पहने हुए मन्द गति से चलती हुई कामिनियों के समान लगती हैं। यहाँ गति साम्य की व्यंजना हुई है।[४]

उत्प्रेक्षा[५]—

कवि को आसक्ति के पाप से बचाने में केवल उत्प्रेक्षा ही प्रायश्चित्त के रूप में प्रस्तुत होती है। यदि उत्प्रेक्षा न होती तो, कविगण असत्य भाषण के घोर नर्कगामी होते। यदि कवियों का सहज काव्यसाधना है, तो उत्प्रेक्षा उनकी सहज पुण्य साधना है, जिससे वे कल्पना के किसी मनोरम स्वप्निल पङ्खों पर आरूढ़ हो दिव्य

---

१ पू० मे० ६३ २ रघुवंश ४।११

३ रघुवंश २।७ ४ ऋ० सं० ३।३

५ का० प्र० १०।९२ श्लोक का पूर्वार्ध

भी वस्तु का ऐसा भी वर्णन करके भी मिथ्याप्रलाप के भागी नहीं बनते। उत्प्रेक्षा की मोहर लगने पर, उनका प्रलापोक्तियाँ भी अलङ्कृत हो जाती हैं। यह कवि देश की बहुमूल्य निधि है। वस्तुतः इसका प्रयोग करके ही कवि, अपने काव्यलोक का प्रजापति बनता है और वह अभिनव सृष्टि, इसी के सहारे करने में समर्थ होता है। कालिदास ने उत्प्रेक्षा का यथासमय प्रयोग किया और उसकी व्यंजना का सम्मान दिया।

कुमारसम्भव में हिमालय के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन उत्प्रेक्षा के सहारे करता हुआ कवि कहता है—हिमालय के ऊँचे शिखरों पर स्थित गेरू आदि धातुओं के रङ्ग बिरंगे शिलाखण्ड के पास पहुँचे हुए मेघ खण्ड उनके रङ्ग की छाया पड़ने से, सन्ध्या के बादल जैसे दिखाई पड़ने लगते हैं। उन्हें देखकर सन्ध्या होने से पहले वहाँ की अप्सराओं को यह भ्रम हो जाता है कि सन्ध्या हो गयी और वे शीघ्रता से सायङ्काल के नृत्य-गान के लिये अपना शृङ्गार करना प्रारम्भ कर देती हैं।[1]

यहाँ उत्प्रेक्षा के माध्यम से अप्सराओं के सम्भ्रम की व्यंजना हो रही है।

पार्वती की मनोहर गति का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—जब पार्वती हाव भाव से चलती थी तो ऐसा जान पड़ता था मानो उनके बिछुओं से निस्सरित मधुर ध्वनि को सीखने के अभिलाषी राजहंसों ने अपनी हाव-भरी चाल पहले ही उन्हें बदले में सिखा दी हो।[2]

उत्प्रेक्षा की सार्थकता का एक अन्य उदाहरण देखिये—विवाह के लिए प्रस्थान करते हुए शिव जी पर सूर्य ने विश्वकर्मा के हाथ का बनाया हुआ छत्र लगा दिया। उस समय शिव जी के सिर के पास लटकता वस्त्र ऐसा लग रहा था मानो गंगा जी की धारा गिर रही हो। गंगा जमुना भी चँवर डुलाने लगीं, वे चँवर ऐसे थे मानो दोनों ओर हंस उड़ रहे हों।[3]

यहाँ शिव जी के पार्श्व में लटकते हुए वस्त्र की गंगा की धारा से तथा चँवर की हंस से उपमा देने से वर्णसाम्य (श्वेत) का पता चलता है। दूसरी ओर उत्प्रेक्षा के माध्यम से कवि शिव के माहात्म्य एवं गौरव का कथन कर रहा है। गंगा यमुना जैसी देवियाँ भी जिसकी सेवा कर रही हैं—वह स्वयं कितना महान एवं गौरवशाली होगा—यहाँ यह व्यंग्य हो रहा है।

---

१ कुमारसम्भव १।४ २ कुमारसम्भव ७।४१
३ वही, ७।४२

रघुवंश में भी व्यंजक उत्प्रेक्षाओं की सुन्दर छटा दीख पड़ती है। द्वितीय सर्ग के अन्त में कवि कहता है कि राजा दिलीप मुनि वसिष्ठ की आज्ञा लेकर, बछड़े के पान के पश्चात् तथा हवन करने से अवशिष्ट (नन्दिनी के) दुग्ध को सतृष्ण हो इस प्रकार पान लगे मानो वे अपना मूर्तिमान यश पी रहे हों।[1]

यद्यपि नन्दिनी ने राजा को वन में ही दुग्ध पान की आज्ञा दे दी थी। किन्तु महाराज ने औचित्य का विचार कर, बछड़े के पीने के पश्चात् तथा हवन होने के पश्चात् गुरु की आज्ञा से ही उसे ग्रहण किया इसलिए आज उन्हें, स्तन्य' प्राप्त हो रहा था। वह स्तन्य क्या था मूर्तिमान यश ही था जिसे राजा ने सिंह के सम्मुख आत्मसमर्पण द्वारा प्राप्त किया था। पहले कामधेनु का अपमान करके राजा ने अपयश प्राप्त किया था किन्तु आज उसने कठिन परिश्रम द्वारा श्वेत दुग्ध के रूप में शुभ्र यश प्राप्त किया था। नन्दिनी का वरदान (पुत्र प्राप्ति ही उनके यशकीर्ति को आलोकित करने वाला था। अतएव राजा ने उसके दुग्ध को अपना यश ही समझ लिया। इस प्रकार राजा के हर्ष भाव की व्यंजना हो रहा है। सायंकाल प्रतीक्षा करती हुई, सुदक्षिणा के स्नेह भाव का कथन उत्प्रेक्षा के माध्यम से कितनी कुशलता से व्यक्त हुआ है— जब सन्ध्या के समय राजा दिलीप नन्दिनी के पीछे-पीछे आश्रम में लौट तब सुदक्षिणा उन्हें अपलक नेत्रों से देखती ही रह गई मानो उपवासी आँखें राजा दिलीप का रूप पान करने को प्यासी हों।

यहाँ रानी की तृष्णातिशय व्यक्त हो रहा है, इसमें उनकी निर्भर की व्यग्रता का ज्ञान होता है, कि वे दिन भर राजा एवं नन्दिनी के लिये चिन्तित थी। इन माध्यम उनके सतीत्व की व्यंजना हो रहा है।

रघु की सेनाओं की विशालता का वर्णन देखिए—अपनी विशाल सेना लेकर रघु हिमालय पर इस प्रकार चढ़ गये मानो अश्व घोड़ों के टापों से उठी हुई अपार धूलराशि से हिमालय की चोटियों को और भी ऊँचा करना चाहते हों।

महाराज अज की स्तुति के माध्यम से प्रातःकालीन सौन्दर्य का वर्णन उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से बड़े ही उत्कृष्ट ढङ्ग से वर्णित हुआ है—प्रातःकाल का पवन वृक्षों की शाखाओं पर झूलने वाले फूलों को गिराता हुआ सूर्य की किरणों से खिले कमलों का स्पर्श करता हुआ बह रहा है, मानो तुम्हें जगा हुआ न

---

१ रघुवंश २।६६   २ रघुवंश २।१६

३ वही ४।७१

देखकर, वह तुम्हारे मुख की स्वाभाविक सुगन्धि दूसरों से लेने का प्रयास कर रहा हो।[1]

यहाँ उत्प्रेक्षा के द्वारा अज के गौरव एवं माहात्म्य की व्यंजना हो रही है।

राजा रघु का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—जब राजा रघु राजगद्दी पर आसीन हुए तो उस समय उनके चारों ओर प्रकाश का एक मण्डल बन गया, उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो लक्ष्मी स्वयं शुभ्र कमल का छत्र लेकर उनके पीछे खड़ी हो गई हो।[2]

यहाँ रघु की तेजस्विता एवं महनीयता की व्यंजना हो रही है।

मेघदूत में भी उत्प्रेक्षाओं की यत्र तत्र योजना हुई है। आम्रकूट पर्वत का वर्णन करता हुआ कवि वर्णसाम्य की रमणीयता का वर्णन इस प्रकार करता है—पके हुये आमों से पीला दिखने वाला आम्रकूट पर्वत और उसके ऊपर स्थित श्यामवर्ण के बादल ऐसे लगते हैं मानो वह पृथ्वी का उठा हुआ स्तन हो जिसके बीच में काला और चारों ओर पीला हो।[3]

यहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य की ही व्यंजना हुई है।

कैलास पर्वत की शुभ्र, धवल हिमाच्छादित चोटियाँ ऐसी लगती हैं मानो भगवान् शङ्कर के प्रतिदिन के अट्टहास की इकट्ठी हुई राशियाँ हैं।[4]

कैलास पर्वत की चोटियाँ हिमाच्छादित होने के कारण श्वेतवर्ण की हैं तथा हास का रङ्ग भी श्वेत माना गया है इस प्रकार उनके वर्णन में उत्प्रेक्षा की योजना कर कवि वर्णसाम्य की स्थापना करता है।

ऋतुसंहार में वर्षा ऋतु का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—पानी के बोझ से नमित मेघ गर्मी की आग की लपटों से झुलसे हुए विन्ध्याचल की उष्णता को अपनी शीतल जल की फुहारों से मानो यह समझकर बुझा रहा है कि जब हम पानी के भार से लद कर आते हैं, तो यही हमारा सहारा बनता है।[5]

कवि द्वारा प्रयुक्त उपमा, उत्प्रेक्षादि अलङ्कार, विविध वर्णन के प्रसङ्ग में आए हैं। यह अलङ्कार रस भावादि के तो व्यंजक हैं ही, साथ ही प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य की भी व्यंजना करते हैं। महाकवि का, प्रारम्भ से ही प्रकृति के प्रति विशेष

---

१ रघुवंश ५।६६ २ रघुवंश ४।५

३ पू० मे० १८ ४ पू० मे० ५८

५ पू० ऋ०सं० २।२७

अनुराग रहा है अतएव जहाँ कहीं भी उन्हें प्रकृति के रम्य स्थल दिखाई दिये वहाँ वे उसका वर्णन अलङ्कारों के माध्यम से करने में न चूके।

वर्षा ऋतु का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—वर्षाऋतु में शनैः शनैः पवन के सहारे चलने वाले एवं इन्द्र धनुष से युक्त मेघ न मानो परदेश में गये हुए उन लोगों की स्त्रियों का मुख-चुम्बन हर लेते हैं जो अपने प्रियतम के वियोग में व्याकुल हुई बैठी हैं।

यहाँ उत्प्रेक्षा के द्वारा व्यग्रता एवं अधैर्य की व्यंजना हो रही है।

(१) रूपक[१]

जहाँ उपमान और उपमेय में (जिनका भेद प्रसिद्ध है उनका सादृश्यता-तिशयवश) अभेद वर्णन किया जाता है वहाँ रूपक अलङ्कार होता है।

कालिदास के रूपक अलङ्कार भी उपमा के समान सशक्त भाव के व्यंजक हैं। कुमारसम्भव में वसन्त ऋतु के प्रसङ्ग में कवि कहता है—वृक्ष भी अपनी झुकी हुई डालियों को फैला फैलाकर उन लताओं का आलिङ्गन करने लगे जिनके बड़े बड़े पुष्प के गुच्छे ही स्तन हैं एवं कम्पित पत्र ही ओष्ठ हैं।[३]

यहाँ रूपक अलङ्कार द्वारा शृङ्गारिक भावों की व्यंजना हो रही है।

रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में चित्रकूट का वर्णन करते हुये राम सीता से कहते हैं—हे सुन्दरि! मस्त वृषभ के समान यह चित्रकूट मुझे बड़ा सुहावना लग रहा है। इसकी गुफा ही इसका मुख है इसमें निःसृत जल की लहरियों का शब्द ही इसकी डकार है इसके शिखर ही इसके शृङ्ग है और उस पर आच्छादित मेघ ही शृङ्ग पर लगा हुआ पङ्क है।[४]

यहाँ चित्रकूट की गरिमा एवं दुर्धर्षता की व्यंजना हुई है। कुश की सेना का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—यात्रा के समय प्रयाण करती हुई कुश की सेना एक राजधानी के समान प्रतीत होती है। उसमें ध्वजाओं के अग्रभाग ही लताओं से युक्त उपवन हैं विशालकाय हस्तिगण ही कृत्रिम पर्वत हैं तथा रथ ही उच्च अट्टालिकाएँ हैं।[५]

यहाँ रूपक अलङ्कार द्वारा कुश की सेना की विशालता की व्यंजना की गई है।

---

१ ऋ० सं० २।२२
२ का० प्र० १०।११८
३ कुमारसम्भव ३।३९
४ रघु० १३।४७
५ रघु० १६।२६

(२) अर्थान्तरयास—

जहाँ सामान्य अथवा विशेष का उससे भिन्न (अर्थात् सामान्य का विशेष के द्वारा अथवा विशेष का सामान्य) के द्वारा समर्थन किया जाता है, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार, साधर्म्य तथा वैधर्म्य से दो प्रकार का होता है।[1]

महाकवि के काव्य का एक पक्ष उपमा है तो दूसरा पक्ष अर्थान्तरन्यास है। इन्हीं दोनों पक्षों पर उनका काव्य-विहङ्ग उड़ा करता है। मौलिक विचारों को व्यक्त करने के लिए कवि अर्थान्तरन्यास का आश्रय लेता है। उसकी प्रतिभा इस अलङ्कार योजना करने में और भी निखर उठी है। इसके प्रयोग में कुशल होने के कारण ही भारवि को अर्थ गौरव का धनी कहा जाता है। महाकवि कालिदास ने भी पात्रों के गुण एवं स्वभाव की व्यंजना करने के लिये इसका व्यंजक रूप में नियोजन किया।

कुमारसम्भव में अर्थान्तरन्यास की व्यंजकता दर्शनीय है। कवि वसन्त के वर्णन के अवसर पर कहता है— वहाँ खिले हुए कर्णिकार देखने में तो सुन्दर लगते थे किन्तु सुगन्धहीन होने के कारण मन को प्रिय न लगते थे। ब्रह्मा का कुछ ऐसा अभ्यास पड़ गया है कि वे किसी भी पदार्थ में समस्त गुणरहित नहीं करते।"[2]

यहाँ अर्थान्तरन्यास द्वारा संसार की प्रत्येक वस्तु में कोई न कोई कमी अवश्य रहती है - इस तथ्य की व्यंजना की गई है।

शिव के योगीस्वरूप का कथन करता हुआ कवि कहता है—अप्सराओं के नृत्य गानादि भी शङ्कर की समाधि को विचलित न कर सके क्योंकि जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को निगृहीत कर लिया है उनकी समाधि क्या कोई भङ्ग कर सकता है।[3]

यहाँ अर्थान्तरन्यास से— शङ्कर महान् योगिराज थे, साधारण मानव नहीं, इस बात की व्यंजना हो रही है।

अतिशयोक्ति[4]—

महाराजा रघु द्वारा प्रजानुरंजन का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—'इन्द्र ने जब अपना सपाशङ्कु वाला इन्द्रधनुष हटाया तब रघु ने अपना विजयी धनुष हाथ में उठा लिया क्योंकि ये दोनों ही बारी बारी से प्रजा की भलाई किया करते हैं।'[5]

इन्द्र तथा रघु में अभेद कथन द्वारा रघु की प्रशंसा कवि कर रहा है। मेघदूत में भी यक्ष अपनी प्रिया के एकाकीपन की कल्पना करता हुआ कहता है, मुझसे बिछुड़ी

---

१ का० प्र० १०।१०६ श्लो०
२ कुमारसम्भव ३।२८
३ कुमारसम्भव ३।४०
४ का० प्र० १०।१८४
५ रघुवंश ४।१७

हुई उस मेरी दूसरी प्राण समझना। वह मितभाषिणी है और इस समय अकेली रहती हुई उसी प्रकार दुःखी होगी, जिस प्रकार चक्रवाक से बिछुड़ी हुई अकेली बची चक्रवाकी।[1]

यहाँ "जाया तथा जीवन" में अभेद व्यापार के आरोप द्वारा यक्षिणी के शोकभाव की व्यंजना हुई है।

विभावना—

रघुवंश में एक दो स्थलों पर कवि ने पात्रों के प्रभाव एवं तेजस्विता की व्यंजना करने के लिए विभावना की योजना की है। राजा दिलीप जब वन में नन्दिनी के पीछे-पीछे चल रहे थे तो उनके शारीरिक प्रभाव के वशीभूत हो वर्षा के बिना ही आग शान्त हो गयी, वृक्ष भी फल तथा पुष्प से आपूर्ण हो गये तथा बड़े जीवों ने छोटों को त्रसित करना छोड़ दिया।[2]

यहाँ कवि इस बात की व्यंजना कर रहा है कि वस्तुतः राजा इतने प्रभावशाली थे कि उनके दर्शनमात्र से वन के सारे विकार दूर हो गये।

काव्यलिङ्ग —

कालिदास के काव्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार भी यत्र तत्र दृष्टिगोचर हो जाता है। राजा दिलीप अपने शासन का प्रबन्ध इतने सुचारु रूप से करते थे कि उनके राज्य में प्रजा को किसी बात का कष्ट नहीं था। वह सब प्रकार से सुखी और सन्तुष्ट था। उनके कुशल राज्य संचालन का वर्णन करता हुआ कवि कहता है— दिलीप को छोड़कर अन्य कोई भी राजा अपनी प्रजा की रक्षा करने में यश अर्जित न कर सका क्योंकि चोरी का शब्द केवल कहने सुनने को रह गया है।[4]

'राजा दिलीप के राज्य में कभी भी चोरी नहीं होती थी' —इस बात की व्यंजना हो रही है।

पार्वती के अलौकिक रूप सौन्दर्य का कथन करता हुआ कवि कहता है— भौंरों से घिरा हुआ कमल, एवं बादलों के टुकड़ों से लिपटा हुआ चन्द्रमा कोई भी ऐसा न दिखाई दिया जो उनकी मुखी हुई चोटी वाले मुख की सुन्दरता के आगे ठहर सके।

---

१ उ० मे०   २ का० प्र० १०।१५६

३ का० प्र० १०।१७४   ४ रघुवंश

५ ७।१६

यहाँ पार्वती का रूपाकर्षण सर्वातिशायी था"—इस बात की व्यंजना हो रही है।

उनके केश की स्वाभाविक शोभा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—उनके केश इतने सुन्दर थे कि यदि पशु-पक्षियों में भी मनुष्य के समान लज्जा होती तो, अपनी बालों पर इतराने वाली मौरी एवं हिरणियाँ भी उनके केश देखकर अपने चँवरों पर इठलाना भूल जाती।[१]

निदर्शना[२]—

पार्वती के नख-शिख वर्णन में निदर्शना अलङ्कार का संयोजन हुआ है। कवि पार्वती के ललितविन्यास की शोभा का वर्णन करता हुआ कहता है—जब वे चलती थीं तब उनके स्वाभाविक लाल और कोमल पैरों के उठे हुये अँगूठे के नखों से निकलने वाली चमक को देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो वे ललाई उगल रहे हों। वे अपने चरणों को जब उठाकर पृथ्वी पर रखती थीं तब ऐसा जान पड़ता था कि वे पग पग पर कमल उगाती हुई चल रही हैं।[३]

यहाँ पार्वती के चरण प्रत्येक अत्यन्त सुन्दर था—इस बात की व्यंजना हो रही है।

द्वितीय सर्ग में वरुण देव के दैन्य भाव का कथन करता हुआ ब्रह्मा के माध्यम से कहता है—शत्रुओं का संहार करने वाला वरुणदेव के हाथ का पाश बँधे हुए सर्प के समान इतना दीन क्यों दिखाई दे रहा है।[४]

मेघदूत में चर्मण्वती के ऊपर स्थित मेघ की शोभा का वर्णन करता हुआ यक्ष मेघ से कहता है—जब तुम विष्णु भगवान का श्यामल वर्ण चुराकर चर्मण्वती का जल-पान करने के लिये झुकोगे, तो उस समय आकाश में विचरण वाले सिद्धगन्धर्वादि को दूर से क्षीण दिखाई देने वाली, किन्तु नदी की चौड़ी धारा के मध्य में तुम ऐसे दिखाई दोगे जैसे पृथ्वी के गले में पड़ी हुई एक लड़ी हार के बीच में एक छोटी सी इन्द्र नीलमणि पोह दी गई हो।[५]

यहाँ वर्णसाम्य की व्यंजकता के साथ प्रकृति का सौन्दर्य लक्षित हो रहा है।

एक स्थल पर ऐतिहासिक तथ्य का उद्घाटन करता हुआ कवि कहता है—कौरव और पाण्डवों दोनों पर एक सा प्रेम करने वाले, बलराम जी महाभारत युद्ध में

---

१ कु०सं० १।४८
२ का० प्र० १०।१६४
३ वही, १।३३
४ कु०सं० २।२१
५ उ० मे० १५०

दिशा की ओर से नहीं लडे। वे अपना प्रिय रेवती के नेत्र में पड़ी हुई मदिरा का त्याग कर जिस सरस्वती नदी का जल पान करते थे वहीं जल यदि तुम भी पी जाओगे तो बाहर से काले होने पर भी तुम्हारा मन उजला हो जायगा।[१]

प्रतिवस्तूपमा[२]—

कुमारसम्भव में प्रतिवस्तूपमा की व्यंजकता देखिए—वसन्त कामदेव का अभिन्न मित्र है। वह प्रत्येक स्थिति में कामदेव की सहायता करता रहता है इन्द्र को इस विषय में तनिक भी सन्देह नहीं है। अतएव वह कहता है हे कामदेव! हमने तुम्हारी सहायता के लिए वसन्त का नाम इसलिए नहीं लिया कि वह तो तुम्हारा साथी है ही। क्योंकि पवन को यह थोड़े ही कहा जाता है कि तुम जाकर अग्नि को सहायता करो। वह तो अग्नि को प्रज्वलित करेगा ही।[३]

यहाँ प्रतिवस्तूपमा के माध्यम से—हे काम! तुम वसन्त को साथ लेकर शिव की समाधि भङ्ग करो। इस बात की व्यंजना हो रही है।

(च) देशकाल की व्यंजकता—

मानव देश-काल तथा वातावरण के क्रोड में जन्म लेता है। प्रायः यह कहा जाता है कि देश-काल तथा परिस्थिति के अनुसार ही व्यक्ति का चरित्र निर्मित होता है। अतः वे चरित्र निर्माण का मनुष्य की भावनाओं का देश-काल से घनिष्ठ सम्बन्ध है। काव्य में मानव जीवन से सम्बन्धित घटनाओं एवं अनुभूतियों का ही चित्रण होता है। ये घटनायें किसी न किसी देश तथा काल से सम्बद्ध रहती हैं। इसी प्रकार काव्य में आये पात्र भी, किसी न किसी देश तथा काल से सम्बद्ध रहते हैं। अतः काव्य में आयी हुई घटनायें पात्र तथा पात्रों की अनुभूतियाँ देश-काल परिस्थिति से अवश्य प्रभावित होती हैं। इसलिए प्रबन्ध काव्य में कवि कथानक विकास के लिए चरित्र निर्माण के लिए तथा अनुभूतियों की अभिव्यंजना के लिए, देश काल का संयोजन करता है। ध्वनि व्यवस्था में इस संयोजन का महत्व-पूर्ण स्थान है।

देश-काल का चित्रण, काव्य में कई प्रकार से किया जाता है। कभी-कभी महाकवि किसी देश विशेष या किसी काल विशेष का चित्र केवल इसलिए चित्रित करते हैं, जिससे पाठकों को पर्वत नदी, सरोवर, नगर सूर्य-चन्द्र प्रातः सन्ध्या,

---

१ पू० मे० ५३ २ का० प्र० १०।१०२
३ कु०सं० ३।२१

रात्रि इत्यादि का एक स्वतन्त्र चित्रण का आनन्द प्राप्त हो सके। इसमे कभी-कभी कवि की औपचारिकता ही दिखाई पडती है। ऐसा चित्र मानव-सापेक्ष नही होता — यहाँ कवि का उद्देश्य केवल देश-का चित्रण करना ही होता है। उत्तम श्रेणी के प्रबन्ध काव्यो मे ऐसा चित्रण प्राय नही होता।

कभी-कभी कवियो को अपने काव्य मे किसी व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित घटनाओ का विकास दिखाते हुए तथा उसका चरित्राङ्कन करते हुए, विशेपरस की निष्पत्ति करनी पडती है। इस प्रकार के वर्णन को हम मानव सापेक्ष वर्णन भी कह सकते हैं। वह वर्णन कही पृष्ठभूमि रूप मे, कही संवेदन रूप मे, तो कही उद्दीपन रूप में होता है। उत्तम श्रेणी के कवि-गण अपने काव्य मे देश-काल का चित्रण इन्ही उपयुक्त दृष्टियो से करते हैं। महाकवि कालिदास के काव्य मे भी देश काल का वर्णन रस-निष्पत्ति, इतिवृत्ति की समीचीनता को प्रमाणित करने के लिए ही किया गया है।

प्रकृति के अनन्य पुजारी कालिदास देश-काल के मर्मज्ञ कवि हैं। उनकी सूक्ष्म ग्राहिणी प्रतिभा ने, देश-काल के विस्तृत क्षेत्र से केवल आवश्यक तत्वो को लेकर, गिने-चुने शब्दो मे रखकर विविध चित्रो की योजना की है। उन्होंने नगर, पर्वत इत्यादि का मानव-सापेक्ष तथा स्वतन्त्र, दोनो प्रकार से वर्णन किया है, किन्तु अधिकांशत ये उद्दीपन रूप मे ही आये हैं। उन्होंने जिस देश एव काल मे अपनी काव्य-घटना की योजना की है, वह उस देश काल मे सर्वथा स्वाभाविक एव उपयुक्त लगती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि अपने सहृदय पाठक को एक विशिष्ट देश और काल मे रखकर उससे स्वय कहलवा लेता है कि ऐसी स्थिति, एव ऐसे समय मे तो यही घटना ठीक थी।

तृतीय सर्ग मे वसन्त ऋतु तथा उसके उन्मादक प्रभाव का वर्णन भी कवि ने बडे सुन्दर ढङ्ग से किया है। ऋतुओ का सम्बन्ध मानव की भावनाओ से होता है। अलग-अलग ऋतुएँ मानव के नये-नये भावो के उद्दीपन का कारण बनती है। ऋतुओ मे वसन्तऋतु शृङ्गार उद्दीपन मे विशेष रूपेण सहायक होती है। कुमारसम्भव मे भी कामदेव शङ्कर के हृदय मे रतिभावोद्दीपनार्थ वसन्त ऋतु की सर्जना करता है जो उचित भी था। वसन्तऋतु मे अर्धविकसित टेसू के पुष्प उडते हुए भ्रमर प्रात कालीन सूर्य की रक्तिमा से प्रकाशमान कोपलें मधुर आम्रमंजरियो कोयल की प्रिय कूक, पुष्पो के उडते पराग कण इधर उधर दौडते मृग, वायु के प्रवाह से मर्मर करते शुष्क पर्ण समूह इत्यादि सभी रति के उद्दीपन कारण होते हैं। अतएव काम ऐसे प्रभावशाली वातावरण की सर्जना कर स्थाण्वाश्रम मे प्रवेश करता है और जब

वहाँ– वह अपूर्व सुन्दरी पार्वती को देखता है तो उसका उत्साह द्विगुणित हो जाता है।'

कवि ने वसन्त के इस वर्णन में उन्हीं पहलुओं का वर्णन किया है जिनका प्रभाव विशेष रूप से युवक-युवतियों पर पड़ता है और जिसमें योगिराज भी प्रभावित हुए बिना न रह सके। यह सम्पूर्ण वर्णन समय के अनुकूल हुआ है और उसमें शृङ्गाररस की सुन्दर व्यंजना हुई है।

कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग में सूर्यास्त सन्ध्या रात्रि का बड़ा ही सुन्दर वर्णन हुआ है। सन्ध्या का समय है, सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा है। शिव पार्वती से कहते हैं—इस समय सूर्य ऐसा दिखाई पड़ रहा है मानो वह तुम्हारी रक्त आँखों के समान सुन्दर कमलों की शोभा को लज्जित कर दिन को समेट रहा है। अब सूर्य की किरणें झरनों की फुहारों में पड़ रही हैं, चकवे तथा चकवी एक दूसरे के कण्ठ से वियुक्त होकर करुण क्रन्दन करने लगे हैं। भ्रमर कमल के अन्दर बन्द हो गये हैं और सूर्य ने अपनी परछाई से ताल में सुनहरे कमल बना दिये हैं वन-शूकर ताल से निकलकर जा रहे हैं। लौटकर आती हुई गायें प्राङ्गण में विचरण करते हुए मयूर, हवन में जलती हुई अग्नि हरे-भरे पौधे इत्यादि से आश्रम सुहावना लगने लगा ऋषि सामवेद गाकर सूर्य स्तुति कर रहे हैं। सूर्य के तिरोहित होने हो सा। आकाश छाया हुआ सा मालूम पड़ रहा है। सूर्य के पीछे-पीछे सन्ध्या भी चल दी, क्योंकि उदय समय जो सूर्य के साथ रही वह अब विपत्ति समय उसका साथ कैसे छोड़ सकती है।[2]

चन्द्रोदय का वर्णन करते हुए कहते हैं—जो चन्द्रमा दिन भर दिखाई नहीं देता था, वह इस समय निकला हुआ ऐसा लगता है मानो रात के कहने से चाँदनी रूप में मुस्कराता हुआ पूर्व दिशा के सब अंग खोल रहा हो। चन्द्रमा की निकली हुई किरण, जो धान जौ के अंकुरों के समान सुकोमल हैं। इस समय कमल बन्द हो गये हैं और उजाला फैल जाने से ऐसा लगता है मानो हाथियों से गन्दा मान-सरोवर निर्मल हो गया है। चन्द्र किरणों के पड़ने से चन्द्रकान्त मणि की चट्टानों से जल की बूँदें टपक रही हैं और सोये हुए मयूर वर्षा के भ्रम में जाग गये हैं। भौंरों की गूँज से भरा कुमुद खिल रहा है पत्तों के बीच बीच से छनकर आती हुई चाँदनी धरती पर पड़ने से आकर्षक लग रही है।[3]

---

१ कुमारसम्भव ३।२८, ३६ तक २ कुमारसम्भव ८।१२ २२-३० तक

३ वही ८

यह वर्णन (शिव पार्वती के) शृङ्गार रस की पृष्ठभूमि के रूप मे हुआ है—सूर्य, सन्ध्या, रात्रि, चन्द्रोदय आदि सभी शृङ्गार रस के उद्दीपन विभाव हैं। अतएव कवि ने उसका बड़ा ही अभिराम वर्णन किया है। यहाँ कोई भी बात कवि के विरुद्ध नहीं कही गई है, सभी परिस्थितियों के अनुकूल और समय के अनुसार हैं।

रघुवंश में महाकवि सर्वप्रथम महाराज दिलीप की यात्रा तथा तपोवन का दृश्य उपस्थित करता है। सन्ध्या-पूजा के लिए पाणि में समिधा, कुश इत्यादि लेकर आते हुये तपस्वीगण, इतस्ततः भ्रमणशील मृग समूह, वृक्षों की जड़ों में जल देती हुई ऋषि कन्यायें, जुगाली करते हुए हरिणगण हवन का उड़ता हुआ धूम्र, ऋषियों की पर्णकुटियों इत्यादि का बड़ा ही चित्रात्मक वर्णन किया गया है।[1] शान्तरस के लिए तपोवन से बढ़कर दूसरा देश नहीं हो सकता और सन्ध्या के अतिरिक्त कोई काल नहीं हो सकता। अस्ताचलगामी सूर्य जीवन के शान्त क्षेत्र का प्रतीक होता है। अतः कवि ने आश्रम के शान्त वातावरण का वर्णन सन्ध्या की बेला में किया है, जो अत्यन्त स्वाभाविक ढङ्ग से साधारणीकृत होता है।

इसके अनन्तर कवि ने रमणीय गिरिराज के दृश्यों से राजा के नेत्रों को आकृष्ट कर भीषण गुहा में एक भयानक दृश्य उपस्थित किया है—सिंह द्वारा नन्दिनी पर आक्रमण। यह (गुहा) ऐसा स्थान है जहाँ भयोदय होना एवं वीरता का उत्साह जागना स्वाभाविक है तथा राजा के धर्मवीर स्वरूप की परीक्षा एवं अभिरुचि का एक ठीक देश काल उपस्थित हो। इस परीक्षा में सफल होने पर ही नन्दिनी का वात्सल्य कवि दिखला सकता है, नहीं तो इक्कीस दिन की एक सी दिनचर्या से नन्दिनी के प्रसन्न होने का कोई तुक नहीं बैठता था।

इस प्रकार इन्द्र से युद्ध करना और उन्हें युद्ध में सन्तुष्ट करना, रघु के पराक्रम का सबसे बड़ा प्रमाण बना, जिसकी नकल भारवि ने अपने किरातार्जुनीय में की है—अर्जुन का किरात वेशधारी शङ्कर से युद्ध कराकर।

इन्हीं युवराज के महाराज होने पर कवि ने उनसे दिग्विजय के लिए सारे भारत में परिभ्रमण करवाकर उन्हें भारत-वसुन्धरा का एकछत्र राज्य दिया। जो भारत भूमि में भ्रमण न कर सके, वह राजा कैसा? और इन्द्र को भी मात देने वाला, किसी राजा से कहीं हारेगा, यह सोचा ही नहीं जा सकता। उनकी विजय की घोषणा तो कवि ने उनके यौवराज्य में ही इन्द्र से संघर्ष के समय से कर रखी है।

---

१ रघुवंश १।४६

रघु दिग्विजय के माध्यम से कवि ने अपने भौगोलिक ज्ञान का विस्तृत परिचय दिया है। भारत के चतुर्दिक् में स्थित प्रदेशो एव वहाँ के उत्तम का यथार्थ वर्णन किया गया है। बङ्गाल में धान की खेती,[१] पूर्वी समुद्र तट पर सुपाडियो के वृक्ष, आसाम में कालागरु, कलिंग में नारियल[४], मलय में चन्दन ताम्रपर्णी में मुक्ता[५], काम्बोज में अखरोट[७], हिमालय में गङ्गा तथा देवदारु[८], इत्यादि का निर्देश कर प्रत्येक शब्द से मानो कवि ने वहाँ का पूर्ण चित्र सा अङ्कित कर दिया हो।

पर्वतो एव नदियो का भी यथास्थान निर्देश हुआ है पूर्व में महेन्द्र[९] दक्षिण में मलय, दर्दुर सह्य तथा कावेरी[१०], पश्चिम में त्रिकूट एव सिन्धु उत्तर में हिमालय कैलास एव गङ्गा नदी[१२]।

रघु के जीवन का विस्तारपूर्वक वर्णन करने के पश्चात् कवि अज का बड़ी सूक्ष्म के साथ वर्णन प्रारम्भ करता है। प्रात काल का समय है अज शयन कर रहे हैं, चारणगण उनकी अनुपम रूप-श्री का गान कर रहे हैं।

स्वयम्वर के अवसर पर कवि ने विभिन्न राजाओ एव अज इन्दुमती के अनुभावो, सचारियो का जो वर्णन किया, वह देश काल के उपयुक्त तथा शृङ्गार रस की व्यजना करने में पूर्ण रूपेण समर्थ हैं। अज केवल शृङ्गार के साधारण आश्रय ही नहीं अपूर्व शौर्य से मण्डित भी हैं। रघुवश के जिन वीर नायको से कवि इतना अधिक प्रभावित है उसका कोई भी नृप वीर का अपवाद हो ऐसा सम्भव न था। अब प्रश्न उठता है – अज के शौर्य को किस प्रकार अवसर निकाला जाए ? अत कवि इन्दुमती को लेकर लौटते हुए अज का विरोधी राजाओ के साथ युद्ध का प्रसङ्ग ढूढ लेता है। जो समय एव देश के अनुकूल है। अन्यथा उनके शौर्य प्रदर्शन का कोई अन्य अवसर न था।

करुण रस कवि का अभिलषित रस है किन्तु उसके लिए अवसर भी तो होना चाहिए। अत उसके लिए इन्दुमती की सहसा मृत्यु का प्रसङ्ग उपस्थित किया गया है। मृत्यु के समय करुण रस की जैसा मार्मिक व्यजना हो सकता है वैसा अन्य अवसर

१ रघुवश ४।३७ २ रघुवश ४।४४
३ वही ४।८१ ४ वही ४।४२
५ वही, ४।४८ ६ वही ४।५०
७ वही ८।६६ ८ वही ४।७३।७५
९ वही ४।४२ १० वही ४।५१, ५२ ५३ ५४
११ वही, ४।४६ १२ वही ४।७, ८०, ७३

र मही। उद्यान का शान्त स्थल, पाद-प्रहार की बाट देखता अशोक, विकसित कर्णिगार सम्मुख स्थित सखियाँ एव पुत्र, अज के शोक को और भी उद्दीप्त करते हैं। इस प्रकार कवि ने करुण रस की व्यजना ठीक देश एव ठीक समय मे की है।

राजा दशरथ प्रारम्भ से ही मृगया व्यसनी रहे हैं। महाराज अपने अनुचरो के साथ वन म प्रवेश करते हैं। समय है वसन्त का—न अधिक शीत न अधिक उष्ण। सम वातावरण मृगया के लिए अच्छा समझा जाता है। इस प्रकार आखेट के अवसर पर ऋतुराज राजा के मनोभावो की व्यजना करने में पूर्ण सहायक हुए हैं।

युद्ध के पश्चात् राम सीता को लेकर अयोध्या पुरी की ओर आ रहे हैं। वाल्मीकि इत्यादि कवियो ने राम सीता का चरित्र चित्रण बड़े ही उत्कृष्ट ढङ्ग से किया है। सभी ने राम के आदर्श पुत्र, आदर्श भ्रातृ एव आदर्श पति के स्वरूप का उल्लेख किया है, साथ ही सीता का पति परायणता का भी सवत्र उल्लेख हुआ है किन्तु राम सीता का कितना स्नेह करते थे इस ओर किसी का भी ध्यान नही गया। महाकवि ने त्रयोदश सर्ग म राम द्वारा सीता के साथ व्यतीत किए गये उन उन सुरम्य स्थनो के वणन द्वारा सीता के प्रति उनके अथाह प्रेम की व्यजना की है। राम, सीता को समुद्र दिखाकर अपने शृङ्गारिक अनुभावो का कितनी निपुणता के साथ कथन कर रहे हैं 'हे सुलोचन! समुद्र तट का वायु तुम्हारे मुख पर केतकी का पराग बिखेर कर रहा है। मानो वह यह जान गया है कि मैं अब तुम्हारे अधर का चुम्बन करने वाला हूँ और अब अधिक शृङ्गार की प्रतीक्षा नहीं करूँगा।[१] पचवटी को देखकर कुछ स्मरण सा करते हुए कहते हैं– मुझे वे दिन स्मरण हो रहे हैं, जब मैं यहाँ एकान्त म वानीरगृह म तुम्हारे अङ्क में सिर रख कर शयन करता था और गोदावरी का शीतल अनिल मेरे आखेट-जनित श्रम का अपनोदन करता था।' माल्यवान पवत को देखकर राम कुछ आत्मविभोर से हो उठते हैं और कहते हैं—मुझे स्मरण हो रहा है जब मेघ गजन करता था और गुफाओ मे प्रतिध्वनि होती थी तब तुम भयभीत हो मुझसे आलिगनबद्ध हो जाती थी। हे सीते! माल्यवान पर वे पावस के दिन मैंने बड़े कष्ट से व्यतीत किए हैं।[२]

इस प्रकार विभिन्न प्राकृतिक दृश्यो के माध्यम से कवि ने मधुर अनुभावो की सुन्दर व्यजना की। साथ ही पवत तपोवन, पचवटी, अगस्त्य, शातकर्णी इत्यादि ऋषियो के आश्रम, पशु पक्षियो का जो प्रसङ्गवश वणन किया, वे स्वाभाविक एव देश-

---

१ रघुवश १३।२३ ३५, २८
२ वही १३।२३ ३५ २८

काल के अनुरूप हैं। गङ्गा-यमुना के पवित्र सङ्गम का जो भव्य चित्रण किया—वह भी अत्यन्त मनोहर एवं हृदयाकर्षक है।

पूर्व मेघदूत महाकवि के भौगोलिक ज्ञान का सम्यक् निदर्शन है अथवा दूसरे शब्दों में मध्य भारत एवं उत्तरभारत के कुछ भागों का व्यवस्थात्मक भूगोल है। ऐसा देखा जाता है कि कवि ने भारत के भूगोल सम्बन्धी अपने ज्ञान को, अपने नाना काव्यों में निहित कर रखा है—रघुवंश के दिग्विजय के माध्यम से कुमारसम्भव में हिमालय वर्णन के माध्यम से एवं मेघदूत में पूर्व मेघ के माध्यम से।

पूर्वमेघ कवि का भारत प्रेम है। जिस भारत की पवित्र भूमि में कालिदास ने जन्म लिया उसे वे अपने काव्य में स्थान न दें ऐसा नहीं हो सकता था। यद्यपि मेघ को अलकापुरी जाने के लिए मार्ग का निर्देश करने की कोई आवश्यकता नहीं थी किन्तु विरही के कारण अपार मन जनन विश्वास के लिए मार्ग का विस्तृत विवरण देने लगता है। साथ ही उन उन नगर पर्वत नदी पशु पक्षी पुष्प वृक्ष इत्यादि के साथ वहाँ के निवासियों के उद्यम एवं संस्कृति का भी परिचय देने लगता है।

उत्तर मेघ में अलकापुरी का जैसा अनूठा वर्णन कवि की प्रतिभाशाली रचना के माध्यम से हुआ है, वह सर्वविदित है। वहाँ के उच्च भवन रंग बिरंगे चित्र सर्व शृङ्गार मण्डित युवतियाँ शृङ्गार की समस्त सामग्रियों को देने वाला वृक्ष अहर्निश शब्द करते हुए मयूरगण मन्द पवन बहने वाला वैभ्राज मन्दाकिनी के तट पर क्रीड़ा करती हुई कन्यायें रमण करती हुई रमणियाँ चन्द्रमा की मनोहरता चाँदनी इत्यादि का बड़ा ही मनोहर वर्णन हुआ है। अलकापुरी का समृद्धिशाली रूप में वर्णन करने का एक उद्देश्य है। कवि को शृङ्गार का वर्णन करना है जब तक समृद्धिशाली न होगा तो वहाँ के निवासी समृद्धिवान कैसे होंगे और ऐश्वर्य के वातावरण में शृङ्गार की ओर मानव की प्रवृत्ति अधिक होती है। अलकापुरी के निवासी होने के कारण यक्ष भी अपनी पत्नी के प्रेम में विलीन हो गया तदन्तर उसे स्वामी का भाजन होना पड़ा। समृद्धि में पालित वनिता का वियोग भी द्विगुणित हो गया है और वह विरह के क्षण व्यतीत नहीं कर पा रहा है। अतएव अलकापुरी को ऐश्वर्यशालिनी रूप में वर्णित करना परिस्थिति एवं समय के अनुरूप है।

पूर्वमेघ में देश-काल का जो भी वर्णन आये हैं वे उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत नहीं माने जा सकते अपितु वह कवि के भावों के आलम्बन हैं, जिन्हें उसने सम्यक् ढंग से व्यक्त किया है। इस प्रकार मेघदूत में चित्रित देश काल के माध्यम से शृङ्गार के अनुभावों की सुन्दर व्यञ्जना हुई है।

ऋतु सहार मे षड्-ऋतुओं का उद्दीपन रूप मे वर्णन हुआ है जो काल के अनु-रूप मानव हृदय में विभिन्न भावों का जाग्रत करती हैं।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णनों को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि कालिदास देश काल के वर्णन में पूर्णतया सफल हैं। उनके देश-काल सदैव किसी न किसी भाव की व्यंजना के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं कवि ने उनका वर्णन सहज रूप से किया—कहीं बलात् उसे ठूसने का प्रयत्न नहीं किया। महाकवि इस तथ्य को भली प्रकार जानते थे कि प्रकृति का अत्यधिक वर्णन काव्य मे विरसात्मकता का कारण होता है इसलिए कोई भी बात देश काल के विरुद्ध होकर रस भङ्ग का कारण बनें, इसके लिए वे सदा सजग रहते हैं।

(ङ) भाषा की व्यंजकता—

नवनवोन्मेषशालिनीप्रतिभा से अनुप्राणित जो वर्णना निपुण है, वह कवि कहलाता है और उसका कर्म 'काव्य' कहलाता है। कवि मे शक्ति, निपुणता, अभ्यास, तीनों का तुल्य-योग होना अत्यावश्यक है। अन्यथा एक के भी अभाव मे उत्कृष्ट महाकाव्य की रचना न हो सकेगा।

काव्य के स्वरूप के विषय में भिन्न पाँच सम्प्रदायों की प्रतिष्ठा हुई है, वे अलङ्कार, रीति, वक्रोक्ति रस एवं ध्वनि है। प्राचीन आलङ्कारिकों ने जैसे अलङ्कार को शब्द और अर्थ का धर्म कहा है अर्थात् एक विशिष्ट प्रकार के शब्द, विशिष्ट अलङ्कार से युक्त कहा वैसे ही गुणों को शब्द अर्थ का धर्म कहा है। वामन ने शब्द और अर्थ दस गुण माने हैं। इस प्रकार यदि ध्यान से देखा जाए तो इन आचार्यों के अनुसार गुण अलङ्कार में कोई विशेष अन्तर नहीं समझ पड़ता। किन्तु ध्वनि सम्प्रदाय के अनुयायी आचार्यों ने गुणों एवं अलङ्कारों में विशिष्ट भेदक तत्त्व कल्पित किया। उन्होंने गुण का सम्बन्ध रस से एवं अलङ्कार का सम्बन्ध शब्द-अर्थ से किया तथा गुण को रस का नित्य स्थायी सम्बन्ध बताया अर्थात् उन्होंने गुण का रस के साथ अविनाभाव सम्बन्ध माना। अलङ्कार का रस के साथ इस प्रकार नित्य-सम्बन्ध उन्हें स्वीकार्य नहीं। ध्वनिवादियों के अनुसार शब्दों से गुण व्यञ्जित होते हैं और गुणों से रस। माधुर्य ओजस् प्रसाद के व्यंजक शब्द होते हैं और गुण अपनी ओर से विशिष्ट रस का व्यक्त करते हैं। इस प्रकार व्यङ्ग्य-परम्परा के अनुसार गुण भी एक प्रकार के व्यङ्ग्य तत्त्व कहलायेंगे। ऐसे धर्म जो काव्य के अङ्गी से व्यञ्जना द्वारा सम्बद्ध रहते हैं किन्तु वे उस रूप नहीं हैं। यह एक प्रकार की पृष्ठभूमि है जिसका रस रूप भवन के निर्माण के लिए होना आवश्यक है। इनके व्यञ्जक विशिष्ट प्रकार के वर्ण होते हैं और उन वर्णों की रीति होती है।

महाकवि कालिदास के काव्य में प्रसादगुणोपेत वैदर्भी रीति के ही सर्वत्र दर्शन होते हैं। उन्होंने वाल्मीकि की अत्यन्त भावात्मक शैली का अनुसरण नहीं किया, अपितु एक नवीन मार्ग को अपनाया जो कोरा भावात्मक न होकर—सुन्दर अलङ्कारों से युक्त है। माधुर्य व्यञ्जक कोमल वर्णों के प्रयोग तथा दीर्घ समासों के अभाव के कारण उनका समस्त काव्य सुन्दर एवं सहज प्रेषणीय हो गया है। उनके काव्य में कठोर महाप्राण ध्वनियों, कर्कश संयुक्ताक्षरों तथा लम्बे समासों का प्रयोग बहुत कम पाया जाता है। काव्य में शृङ्गार एवं करुण रस की प्रधानता होने के कारण, कालिदास की रचनाओं में अन्तःकरण को द्रवित करने वाली आह्लादमयी पदयोजना का ही सर्वत्र प्राचुर्य है।

रघुवंश में कोमलकान्त पदावली का ही सर्वत्र प्रयोग किया गया है। कालिदास को वैदर्भी विभिन्न भावों एवं रसों की व्यञ्जना करने में अत्यन्त निपुण है। वन में नन्दिनी की सेवा करते हुए राजा दिलीप का यशोगान देवताओं ने गद्गद कण्ठ से किया—

स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम्।
शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः ॥ रघु० ॥

विवाह के अवसर पर इन्दुमती के स्वाभाविक सौन्दर्य का बड़ी कुशलता के साथ अभिव्यक्त किया गया है—

तदञ्जनक्लेदसमाकुलाक्षं प्रम्लानबीजाङ्कुरकर्णपूरम्।
वधूमुखं पाटलगण्डलेखमाचारधूमग्रहणाद्बभूव ॥ रघु० ॥

नवम सर्ग में वसन्त के शनैः शनैः आगमन का चित्र रेखाङ्कित करता हुआ कवि कहता है—

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम्।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ॥

वसन्तोत्सव के समय कामिनियों की मधुर कल्पनाओं एवं उनकी शृङ्गारिक अनुभावों का कथन बड़े ही सहज ढङ्ग से करता हुआ कवि कहता है—

अनुभवन्नवदोलमृतूत्सवं पटुरपि प्रियकण्ठजिघृक्षया।
अनयदासनरज्जुपरिग्रहे भुजलतां जडतामबलाजनः ॥

मेघदूत तो वर्णों की स्निग्ध पद मैत्री ही है। मधुर कल्पनाओं एवं सुकोमल ...ों का ऐसा मणि-काञ्चन संयोग केवल मेघ के सदृश कथन में ही सम्भव हो सकता ...। यक्ष मेघ को अभिज्ञानार्थ अपने गृह का परिचय देता हुआ कहता है—

तस्यास्तीरे रचितशिखर पेशलरिन्द्रनील
क्रीडाशैल कनककदली वेष्टन प्रेक्षणीय ।
मद्गेहिन्या प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपात प्रस्फुरिततडित त्वा तमेव स्मरामि ।। २।१४७

पीडित यक्ष की विरहावस्था का चित्र रेखाङ्कित करते हुए कवि कहता है—

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्त स कामी
नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठ ।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानु
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीय ददर्श । पू० मे० २ ।।

ऋतुसहार मे ऋतु के परिवर्तन के साथ युवक तथा युवतियो की प्रणय क्रीडाओ का हृदयाकर्षक चित्रण हुआ है । काव्य की प्रत्येक पक्ति मे यौवन की पूर्ण अभिव्यक्ति एव सम्भोग श्रृङ्गार का मनोरम अङ्कन हुआ है । काव्य की भाषा सर्वत्र सरल तथा प्रसादगुणोपेत है । इसके पद्यो पर प्रणय के चित्र खींचे जा सकते हैं । काव्य मे शब्द चित्रो की छटा दर्शनीय है—

करुण रस के वर्णन मे भी कालिदास ने सुन्दर शब्द विन्यास के माध्यम से काव्य निपुणता का परिचय दिया । पत्नी की मृत्यु पर विलाप करते हुए अज ने मानव की समस्त वेदना एकत्रित कर ली है—

विललाप स बाष्पगद्गद सहजामप्यपहाय धीरताम् ।
अभितप्तमयोऽपि मार्दव भजते कैव कथा शरीरिषु ।। रघु० ।।

पत्नी की मृत देह को देखकर आशान्वित स्वर से कहते हैं—

कुसुमोत्खचितान्वलीभृतश्चलयन्भृङ्गरुचस्तवालकान् ।
करभोरु करोति मारुतस्त्वदुपावर्तनशङ्कि मे मन ।। ८।५३ ।।

परित्यक्ता सीता द्वारा राम का भेजे गए सन्देश मे सीता की उक्ति 'वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा' स और राजा शब्द सीता की निस्सीम वेदना एव दैन्यता के व्यजक है । उनकी वेदना प्रस्तुत श्लोक मे मुखरित हुई है—

निशाचरोपप्लुतभर्तृकाणां तपस्विनीनां भवत प्रसादात्
भूत्वा शरण्या शरणार्थमन्य कथ प्रपत्स्ये त्वयि दीप्यमाने ।। १४।६४ ।।

इस प्रकार कालिदास के काव्य मे भाषा का कोमल एव सरस रूप ही लक्षित होता है । कहीं भी दीर्घ समास एव कर्कश ध्वनियो का प्रयोग नहीं दिखाई पड़ता । यद्यपि वीर, वीभत्स तथा रौद्र रसो में गौडी रीति तथा ओज गुण वांछनीय समझे

जाते हैं, तो भी कालिदास का कृतियों में उनका प्रयोग बहुत कम पाया जाता है। कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग में विघ्न होने से कुपित शिव जी का चित्रण करते समय कवि प्रौढ़ शैली का प्रयोग करता है—

स्फुरन्नुदर्चि सहसा तृतीयादक्ष्ण कृशानुः किल निष्पपात ॥ ३।७१ ॥

इसमें गौडी रीति तथा ओज गुण है। हु०, प्रे०, पै० क्ष्ण इत्यादि कठोर ध्वनियों का प्रयोग हुआ है तथा तीन चार पदों के समास भी किए गए हैं। क्रोध के उद्दीपन के कारण का वर्णन देखिये—

स दक्षिणापाङ्गनिविष्टमुष्टिं नतांसमाकुञ्चित सव्यपादम्।
ददर्श चक्रीकृतचारुचापं प्रहर्तुमभ्युद्यतमात्मयोनिम् ॥ ३।७० ॥

यहाँ भी तीन चार पदों के समास किए गये हैं। रति की विपत्ति का वर्णन भी कवि प्रौढ़ शैली में करता है—

तीव्राभिषङ्गप्रभवेण वृत्तिं मोहेन संस्तम्भयतेन्द्रियाणाम्।
अज्ञातभर्तृव्यसना मुहूर्तं कृतोपकारेव रतिर्बभूव ॥ ३।७३ ॥

कुपित पार्वती की रोषपूर्ण उक्ति देखिए—

अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः।
ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ॥ ५।८२ ॥

रघुवंश में रघु इन्द्र के युद्ध अवसर पर इसी शैली का अनुसरण किया गया है—

हरेः कुमारोऽपि कुमारविक्रमः सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलौ।
भुजे शचीपत्रविशेषकाङ्किते स्वनामचिह्नं निचखान सायकम् ॥ ३।५५ ॥

रघुवंश में वीररस का ही प्रधानता है इसलिए उसके लिए गौडी रीति ही उपयुक्त समझी जाती है। किन्तु वीर रस के इन स्थलों में भी भाषा का सरस रूप ही समक्ष आता है—

क्षत्रजातमपकारवैरि मे तन्निहत्य बहुशः शमं गतः।
सुप्तसर्प इव दण्डघट्टनाद्रोषितोऽस्मि तव विक्रमश्रवात् ॥ ११।७१ ॥

इस प्रकार कालिदास के काव्य का प्रत्येक श्लोक चित्राङ्कन की अपूर्व क्षमता युक्त है। कवि का मूलभूत गुण यह है कि वे अभिधा की अपेक्षा व्यञ्जना का ही अधिक आश्रय लेते हैं। वे एक निश्चित प्रभाव छोड़कर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, शेष व कुछ व्यञ्जना के लिए छोड़ देते हैं।

उनके काव्य में भाषा की मंजुलता, स्निग्धता एवं मधुरता सर्वत्र विद्यमान है। भाषा किस प्रकार अन्तःकरणसिक्त होती है, इसे मेघदूत का कवि भली प्रकार जानता है—

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनादसितनयने मय्यविश्वासिनी भूः।
स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगात्।
इष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशी भवन्ति ॥

महाकवि कालिदास युग प्रवर्तक काव्यकार एवं साहित्य स्रष्टा थे। वस्तुतः उन्होंने संस्कृत साहित्य में एक नवीन द्वार का उद्घाटन किया। उनके काव्यों में जिस रसमयी भाषा का प्रयोग हुआ है—वह नितराहृद्य है। वीर एवं रौद्र रसों के वर्णन में साहित्य शास्त्रियों ने यद्यपि ओजगुण को ही अनिवार्य बताया है। रघुवंश में वीररस की प्रमुखता होते हुए भी कवि ने ऐसी भाषा का प्रयोग किया जो सहज मनोग्राह्य है। कुछ कठोर ध्वनियों तथा लम्बे समासों का अवश्य कहीं-कहीं प्रयोग किया है किन्तु फिर भी उस प्रकार के नहीं हैं जैसा परवर्ती कवियों के काव्य में मिलता है। कवि द्वारा प्रयुक्त 'मेघदूत' में मन्दाक्रान्ता की भाषा कहीं-कहीं कुछ क्लिष्ट अवश्य हो गई है किन्तु वह क्लिष्टता आनन्दातिरेक रसमयता में पर्यवसित हो जाने के फलस्वरूप आपाततः मधुर एवं कोमल हो गयी है। उनके काव्य में ऐसे स्थान नहीं हैं जिनका अर्थ अस्पष्ट हो।

मुहावरों के सफल प्रयोग से उनकी भाषा में प्रौढ़ता आ गई है—

(१) याच्ञामोघा वरमधिगुणो नाधमे लब्धकामा ॥ पू० मे० ७ ॥
(२) रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥ पू० मे० २० ॥

इस प्रकार समृद्ध युग के कवि होने के कारण कालिदास के काव्यों में भाषा का समृद्धिशाली रूप ही द्रष्टव्य है। मानव अनुभूतियों की अत्यन्त व्यापकता गम्भीरता सरलता एवं स्वाभाविकता के साथ चित्रण, कवि की शक्तिमती समृद्ध भाषा के द्वारा ही सम्भव हो सकी है। भाषा उनके विचारों अनुभूतियों एवं भावनाओं की व्यंजना की सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है। कवि ने अपने काव्य में वर्ण सङ्गठन पद सङ्गठन शब्द सङ्गठन वाक्य सङ्गठन, लोकोक्तियों आदि के चयन में अपनी महान काव्य-शक्ति का परिचय दिया है। इसीलिए कवि की भाषा अपने कथ्य को जितना व्यापक रूप में व्यक्त करती है उससे अधिक प्रतिपाद्य की व्यंजना करने में व्यंजक बन जाती है।

ज) अन्य व्यंजनाएं—

नामकरण की व्यंजकता—

महाकवि कालिदास की सूक्ष्म ग्राहिणी प्रतिभा ने कथानक, चरित्र चित्रण तथा छन्द इत्यादि की योजना व्यंजकता की दृष्टि से की है, काव्यों का नामकरण भी उन्होंने कथानक की व्यंजना की दृष्टि से किया।

कुमारसम्भव—

महाकाव्य का यह नामकरण ही सम्पूर्ण कथानक की व्यंजना कर देता है। कालिदास ने इसमें शिव पार्वती के संयोग द्वारा इस बात की व्यंजना कर दी है कि संयोग के पश्चात् अब कुमार कार्तिकेय की उत्पत्ति होगी। यदि कवि को कुमार की उत्पत्ति का वर्णन करना अभिप्रेत होता तो वह इस काव्य का नाम उस कार्तिकेय जन्म या और कुछ रखता। किन्तु वास्तव में काव्य का यह उद्देश्य उसे अभीष्ट न था। उसे तो शिव-पार्वती के दाम्पत्य जीवन के वर्णन द्वारा कुमार की उत्पत्ति की ओर संकेत मात्र करना ही अभिप्रेत था। जो लोग यह कहते हैं कि आठ सर्गों के पश्चात् कवि की मृत्यु हो गई या अन्य कारण बताते हैं वास्तव में कवि के अभिप्राय को न समझ सके। इस प्रकार काव्य के इस नामकरण में कार्तिकेय की उत्पत्ति के साथ ही संयोग शृङ्गार की सुन्दर कल्पना होती है।

रघुवंश—

इस नाम से भी यह व्यंग्य हो जाता है कि इसमें रघुकुल में उत्पन्न राजाओं का ही चरितगान किया गया होगा। काव्य के प्रथम सर्ग के प्रारम्भ में कवि अपना वर्णनीय विषय भी बता देता है कि मैं आदर्श चरित्र रघुवंशियों का कथन करने जा रहा हूँ। रघुवंश का प्रत्येक नृप वीरता का अनुपम प्रतीक है अतः काव्य के नामकरण से इस बात की भी व्यंजना हो जाती है, कि इसमें वीर रस की प्रधानता है।

मेघदूत—

यह नाम भी वस्तुतः बड़ा ही व्यंजक है काव्य के नामकरण से ही यह सम्भावना होने लगती है कि इसमें मेघ के विषय में कुछ नहीं कहा गया होगा, अपितु मेघ को दूत बनाया गया होगा, दूत भी किसी प्राणी ने बनाया होगा और जब दूत बनाया होगा तो अवश्य ही प्रेषक अपने किसी प्रिय से दूर स्थित होगा और उससे अपना प्रेम सन्देश भेजा होगा। वास्तव में मेघदूत में इसी सत्य का कथन किया गया है। विप्रलम्भ शृङ्गार की व्यंजना होती है।

ऋतु सहार—

काव्य का नाम करण ऋतु सहार रखकर माना कवि ने सब कुछ कह दिया है। इसमे सहार शब्द का समूह के अर्थ मे प्रयोग किया गया है। अत इसमे षड् ऋतुओं का ही वर्णन किया गया है।

पात्रों की व्यजना—

महाकवि ने इतिहास प्रसिद्ध पात्रों के अतिरिक्त कुछ विशेष पात्रों को भी अपने काव्य मे स्थान दिया है जिनका इतिहास मे कही भी वर्णन नही मिलता। इन पात्रो का नामकरण भी कवि ने व्यजकता की दृष्टि से किया है। तृणबिन्दु, वरतन्तु, कौत्स, प्रियम्वद, अयोध्या की नगर वधू, इत्यादि सभी कल्पित पात्र मुख्य पात्रों के चरित्र एव प्रबन्ध रस की व्यजकता करते हैं। वरतन्तु शिष्य कौत्स के द्वारा कवि ने रघु के दानवीर स्वरूप का सुन्दर व्यजना की है, रघु द्वारा शिष्य कौत्स से गुरु वरतन्तु के कुशल-क्षेम पूछने मे शान्तरस की व्यजना हुई है। गन्धर्वराज प्रियम्वद के माध्यम से अज। शौर्य एव व्यजना हुई है। तृणबिन्दु भी दुखी अज को ससार की नश्वरता का ज्ञान देने के लिए अवतरित हुआ है। अयोध्या की नगर देवी के माध्यम से करुण रस एव कुश के जितेन्द्रिय चरित्र का कथन किया गया है। इस प्रकार इन सभी पात्रो की कल्पना एव उनका नामकरण विभिन्न रसों की व्यजना की दृष्टि से किया गया है। मेघदूत के यक्ष एव यक्षिणी भी विप्रलम्भ शृङ्गार की विस्तृत व्यजना करते हैं।

पद वर्ण तथा रचना की व्यजकता—

आचार्य आनन्दवर्धन ने अलक्ष्यक्रम व्यग्य के अन्तर्गत पदवर्ण, प्रबन्ध की व्यजकता को भी स्वीकार किया। आचार्य मम्मट भी पदादि की व्यजकता को स्वीकार करते हुए कहते हैं—'पदैकदेशरचनावर्णेष्वपि रसादय ' का० प्र०।

कालिदास के काव्य मे पद आदि की व्यजकता के पर्याप्त स्थल प्राप्त होते हैं। विशेष पद, विशेष परिस्थितियों मे विशेष अर्थ, एव रस की व्यजना करते हैं। उनके काव्य मे प्रयुक्त पद, वर्ण प्रकृति-प्रत्यय, निपात, अव्यय इत्यादि की योजना बड़ी ही सटीक एव यथास्थान की गया है, जिन्हे बदल कर दूसरा नहीं रखा जा सकता। वे अपनी जगह विशेष अर्थ के व्यजक हैं।

कुमारसम्भव—पद की व्यजकता—

कुमारसम्भव मे पदों की व्यजकता अनेक स्थलो पर प्राप्त होती है। पाणिनि के अनुसार 'सुप्तिङन्त पदम्' अर्थात् सुबन्त और तिङन्त को पद कहते हैं। यहाँ सुबन्त एवं तिङन्त दोनो प्रकार से पदो की व्यजकता का कथन किया जायेगा।

प्रथम सर्ग में शिव द्वारा काम को भस्म कर दिए जाने के पश्चात् कवि कहता है—'तदाप्रभृत्येव विमुक्तसंगः पतिः पशूनामपरिग्रहोऽभूत्' यहाँ शिव का विशेषण 'पशूनाम् पति' रखा गया है जिससे उनके दयाहीन, निर्मोही होने की व्यंजना होती है, क्योंकि काम के कुत्सित कार्य से शिव हृदय और स्त्री सन्निध्य में सर्वथा उद्विग्न हो गया था—इसलिए उन्हें कवि ने पशूनाम्पति कह कर सम्बोधित किया है।

यहाँ स्त्राम्या यह पद व्यंजक है। स्त्रियाँ स्वभाव से ही डरपोक होती हैं। अतः स्त्रियाँ तक भी किसी का डरा दें तो अन्य पुरुष की बात क्या है। स्त्रियों के दयालु प्रकृति एवं उनके सामान्य स्तर की व्यंजना की गई है। साथ ही 'मत्प्रार्थिताः भयहेतु' इसलिए भय के अर्थ में पंचमी विभक्ति का प्रयोग किया गया अतः विभक्ति द्वारा भय की व्यंजना की गई है।

इन्द्र कामदेव से कहता है मैंने सुना है कि नगेन्द्र कन्या पिता की आज्ञा से 'स्थाणु' की कैलाश पर सेवा कर रही हैं।

यहाँ शिव को स्थाणु संज्ञा देकर उनके अविचल योगीराज स्वरूप की व्यंजना हुई है।

इसी प्रकार कवि ने शिव के अनेक विशेषण रखे हैं। जिनसे उनके विभिन्न स्वरूप की सुन्दर व्यंजना होती है। प्रथम सर्ग में नारद हिमवान से कहते हैं—'तुम्हारी पुत्री हर की एकमात्र अर्धाङ्गिनी बनेगी।' यहाँ कवि ने 'हर' पद का प्रयोग इस अर्थ में किया है कि जो शिव सबका हर लेते हैं उनके भी हृदय को यह हर लेगी।

तृतीय सर्ग में कामदेव को उत्साहित करता हुआ इन्द्र कहता है—हे काम! ये देवगण शत्रु को जीतने के लिए भव (शिव) के वीर्य से उत्पन्न होने वाले सेनापति की कामना कर रहे हैं। यहाँ शिव की अमोघ उत्पादक शक्ति को प्रकट करने के लिए भव पद को रखा गया।

शिव के त्रिनेत्र से काम दग्ध हो गया। कवि कहता है—'भव के त्रिनेत्र से उत्पन्न अग्नि में अनङ्ग कामदेव भस्म हो गया। यहाँ भव की योजना शिव के कठोर प्रकृति के व्यंजक रूप में की गई है।

तपस्या का कारण कहता हुई सखी कहती है—'पिनाकी शिव ने तो काम को जला कर भस्म ही कर दिया यह देख हमारी उमा निराश हो गई। यहाँ भी

---

१ कुमारसम्भव १।५०
२ कुमारसम्भव ३।१४
३ वही ३।१२
४ वही, ४।१

'पिनाकी' पद शिव का कठोरता का व्यजक है। किन्तु मानिनी पावती भी ऐसी हठीली है कि 'पिनाकी' से ही विवाह करने पर तुली है। तपस्या का कारण जान कर ब्रह्मचारी कहता है उस 'कपाली' को प्राप्त करने के चक्कर मे दो के भाग्य फूट गए, एक चन्द्रमा की कला के, दूसर तुम्हार'। इन दोनो ही स्थलो म शिव के दृढता, कठोरता आदि गुण की व्यजना क लिए पिनाकी' एव उन्हें घृणा का पात्र बतलाने के लिए 'कपाली' का प्रयोग किया गया है। सप्तम सग मे कवि न पुन 'हर' पद के प्रयोग द्वारा शृङ्गार रस की बडी ही सुन्दर व्यजना की है। विवाह के समय पावती अपने लुभावने रूप को दपण मे देखकर ठगी सी रह जाती हैं। 'हर' के आगमन का प्रतीक्षा म एक एक घडी उनके लिए भारी हो गई है क्योकि 'स्त्रियो का शृङ्गार तभी चरितार्थ होता है जब उसे प्रिय देखे।

उपसग की व्यजना—

कवि कहता है—

शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ बाहू तदीयाविति मे वितक ।
पराजितेनापि कृतौ हरस्य यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन ॥ कु० स० ३१।४१

यहाँ 'पराजितेन' द्वारा शिव द्वारा मदन प्रकार हरा दिए जाने की बात कही गई है। परा उपसग साधारण हार नहीं अपितु प्रकृष्ट हार का व्यजक है। 'जि' धातु 'जय का द्योतक होता है किन्तु यहाँ उपसग स वह भी पराजय का व्यजक बन रहा है साथ ही 'कण्ठ पाशौ' पद द्वारा कण्ठालिङ्गन की व्यजना हो रही है। कण्ठपाश की जगह कण्ठ रज्जु भी कहा जा सकता था किन्तु उससे कवि क अभिप्रेत अथ की व्यजना नहीं हो सकती थी।

उमा मुख फलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि।

यहाँ व्यापारयामास का अथ है साभिलाषमवलोकित जिसकी व्यजना अन्य किसी विकल्प पद द्वारा सम्भव न हो सकती था। इस प्रकार 'व्यापारयामास' पद रति भाव का व्यजक है।

रघुवश—

रघुवश म भी पद, पदैकदेश, प्रकृति प्रत्यय इत्यादि का व्यजकता क स्थल भरे पडे हैं।

पद की व्यजकता—

रघुवश के द्वितीय सग के प्रारम्भ म ही कवि कहता है—

अथप्रजानामधिप प्रभाते जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम् ।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सा यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच ॥२।१

यहाँ 'जाया' से पुत्रजननयोग्यत्व, यशोधन से पुत्र द्वारा प्राप्त होने वाली कीर्ति के लोभ के कारण गोरक्षण में प्रवृत्त राजा की व्यंजना हो रही है।

ददौरयामासुरिवोन्मदानामालोकशब्दं वयसा विरावैः ॥ रघु० २।६

यहाँ आलोक शब्द से जय शब्द की व्यंजना हो रही है अर्थात् राजा इतने प्रभुता सम्पन्न वीर थे कि वन में भी उनकी वीरता का गान किया गया।

'तमातपक्लान्तमनातपत्रमाचारपूतं पवनः सिषेवे' ॥ रघु० ॥ २।१३

यहाँ आचार पूत पद जगत के कल्याणकर्ता राजा का व्यंजक है।

न सत्त्वेष्वधिको बबाधे तस्मिन्वनं गोप्तरि गाहमाने ॥ २।१४

यहाँ गोप्तरि राजा के नन्दिनी के रक्षक रूप का व्यंजक है और इस प्रकार उनके वीर चरित्र की व्यंजना हो रही है।

'प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं तां सुदक्षिणा साक्षतपात्रहस्ता' ॥ १।२१

यहाँ नन्दिनी को पयस्विनी कह कर, उसके प्रशस्त क्षीर वाली होने की व्यंजना की गई है। कवि यह पहले ही कह देना चाहता है कि इस क्षीर का पान करने के पश्चात् राजा को पुत्र धन की प्राप्ति अवश्य होगी।

वत्सोत्सुकापि स्तिमिता सपर्यां प्रत्यग्रहीत्सेति ननन्दतुस्तौ ॥ १।१२

यहाँ स्तिमिता पद द्वारा नन्दिनी के निश्चलत्व की व्यंजना की गई है। नन्दिनी ने अपने बछड़े के लिए उत्कण्ठित होते हुए भी, एकाग्र होकर रानी की सपर्या आदरपूर्वक ग्रहण किया—इस बात की व्यंजना हो रही है।

दिनावसानोत्सुकबालवत्सा विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः ॥ २।४५

यहाँ बालवत्सा पद द्वारा सद्य प्रसूत बछड़े का व्यंजक वत्स तो स्वयं ही किसी छोटे बच्चे का व्यंजक होता है किन्तु बाल वत्स कह कर शान्त ही उत्पन्न बच्चे की ओर संकेत किया गया है।

एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु।

यहाँ शरीरेषु न कहकर पिण्डेषु कहा गया है। राजा दिलीप को नन्दिनी की रक्षा के समय अब निर्जीव पिण्ड के प्रति कोई मोह नहीं रह गया है। शरीरेषु से कुछ चैतन्य शरीर का बोध होता है किन्तु पिण्ड कहकर उसके प्रति बिल्कुल अनास्था की व्यंजना की गई है।

तत समानीय स मानितार्थी हस्तौ स्वहस्तार्जितवीर शब्द. ।
वशस्य कर्तारमनन्त कोर्ति सुदक्षिणायां तनय ययाचे ॥ रघु० २।६४

कठोर परीक्षा मे उत्तीर्ण होने के पश्चात् अब उनके धर्मवीर स्वरूप का न ही कवि को अभिप्रेत है इसलिए उसने राजा के विशेषण रूप मे 'स्वहस्तार्जित र शब्द' पद को रखा, जिससे उनके दातृत्व दैन्यराहित्य की व्यजना होती है। प ही 'वशस्यकर्तारम्' पद से ऐसे पुत्र की व्यजना होती है जो रघुकुल का र्तक बनें।

'गृहाण शस्त्र यदि सर्ग ते न खल्वनिर्जित्य रघु कृती भवान् ॥ ३।५१

यहाँ रघु के लिए 'रघु' पद का प्रयोग उनके दुर्जेयत्व एव दुधर्ष वीर स्वरूप का जक है। इसी प्रकार रघु के लिए 'सुदक्षिणासूनु' पद की योजना द्वारा उनके जेय वीरत्व की व्यजना की गई है।

मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये।
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिद हि कुल व्रतम् ॥ ३।७०

यहाँ तरुच्छाया के स्थान पर 'वृक्षच्छाया' पद का प्रयोग भी किया जा सकता ा किन्तु तरुच्छाया द्वारा जिस शान्त रस की व्यजना हो सकती है, वह वृक्षच्छाया हने मे न हो पाती।

'गतो वदान्यतरमित्यय मे मा भूत्परीवादनवावतार' ॥ ५।२४

यहाँ 'नवावतार' पद बडा व्यजक है। कौत्स यदि रघु से बिना दान प्राप्त किए ही लौट जायेंगे तो यह रघु के लिए भारी एव नव अवतार होगा क्योंकि अभी तक कोई भी रघुवशी राजा दोष का भागी नही हुआ। यह नवीन बात रघु के लिए ही लागू होती अत यहाँ नवावतार' का पद का प्रयोग किया गया है।

मनुष्यवाह्य चतुर स्त्रयानमध्यास्य कन्या परिवारशोभि' ॥ ६।१०

यहाँ इन्दुमती के लिए 'कन्या' पद का प्रयोग उसके दोष रहित कुमारीत्व की व्यजना कर रहा है।

'अन्त शरीरेष्वपि य प्रजानां प्रत्यादिदेशाविनय विजेता' ॥ ६। ६

यहाँ शरीरेषु द्वारा अन्त करणेषु की व्यजना की गई है। इस प्रकार यहाँ 'शरीर' पद से इन्द्रिय की व्यजना हो रही है।

सा यूनि तस्मिन्नभिलाषबन्ध शशाक शालीनतया न वक्तुम्।

यहाँ भी इन्दुमती के लिए 'यूनि' पद का प्रयोग कर उसके पूर्ण यौवन एवं कुमारीत्व की व्यंजना की गई है।

'अदास्यमानं प्रमदामिषं तदावृत्य पंथानमजस्य तस्थौ।'

'आमिष' का अर्थ होता है मांस। प्रमदामिष से उसके भोग्य वस्तु होने की व्यंजना की गई है क्योंकि अन्य राजाओं की दृष्टि में इन्दुमती केवल भोग्य वस्तु ही है। अतः इस समय उसके लिए प्रमदामिष पद का प्रयोग किया गया है।

'इतः परानर्भकहार्यशस्त्रान्वैदर्भि! पश्यानुमता मयासि'।

यहाँ अर्भक द्वारा अबोध बालक की व्यंजना हो रही है। रण में निश्चेष्ट राजाओं का शस्त्र बालक भी छीन सकता है अतः बालक न कहकर 'अर्भक' पद का प्रयोग किया गया है।

गुणवत्सुतरोपितश्रियः परिणामे हि दिलीपवंशजाः।

यहाँ दिलीप वंशजाः कहकर दिलीप के धर्मवीर के उत्कर्ष की व्यंजना की गई है। रघुकुलवंशजाः भी कहा जा सकता था किन्तु 'दिलीप वंशजाः' इस पद द्वारा दिलीप के आदर्श गुणों के उत्कर्ष का कथन किया गया है।

सीता-परित्याग के समय राम लक्ष्मण से कहते हैं—

सर्वत्र सग करुणाद्विरोधैर्न मे भवद्भिः प्रतिषेधनीयः।

यहाँ 'सग' का अर्थ है निश्चय। सग' पद का प्रयोग कर राम के स्वभाव का ममत्व एवं दृढ़निश्चयत्व की व्यंजना की गई है।

सीता के लिए कवि ने सती साध्वी तथा प्रजावती पदों का प्रयोग किया, जिससे उनके साध्वी गृहणी आदर्श उज्ज्वल चरित्र एवं पुत्र को उत्पन्न करने वाली मातृजाया की व्यंजना होती है। राम द्वारा परित्याग के अनन्तर सीता द्वारा राम के लिए 'राजा' पद के प्रयोग द्वारा उनके उच्चकोटि के प्रजा रंजक एवं प्रजा पालक स्वरूप की व्यंजना की गई है।

सर्वयता कामिजनेषु छाया सर्ने निदाघावधिना प्रमष्टा'।

यहाँ निदाघावधिना से ग्रीष्मकाल का कथन किया गया है।

पदैक देश की व्यंजना—

निवर्त्य राजा दयितां दयालुस्तां सौरभेयीं सुरभिर्यशोभिः। रघु० २।३

यहाँ दयालु पद में आलुच प्रत्यय है, उसके द्वारा राजा के दयामय स्वभाव की व्यंजना हुई है।

- 'श्रोत्राभिरामध्वनिना रथेन स धर्मपत्नी सहितः सहिष्णु' ॥ १।७२

यहाँ 'सहिष्णु' पद इष्णुच् प्रत्यय द्वारा बना है, उसके (पदैक देश) द्वारा दु:ख सहनशील राजा (दिलीप) की व्यंजना होती है।'

'तुतोष वीर्यातिशयेन वृत्रहा पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते'।

यहाँ 'वृत्रहा' पद में क्विप् प्रत्यय का संयोग है। इस प्रकार क्विप् प्रत्यय द्वारा वृत्रासुर के वधकर्ता इन्द्र की वीरता की व्यंजना होती है।

'ता राघवं दृष्टिभिरापिबन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि' ।७।१२

यहाँ 'पिबन्त्यो' पद शतृ प्रत्ययान्त है। कवि यह कहना चाहता है जब राजा दिलीप वन में चले गए थे, तब भी उन्हें देखने को व्याकुल थी और इस समय उन्हें समक्ष पाकर भी सतृष्ण होकर देखती रह गयी। इस प्रकार पिब प्रकृति द्वारा सुदक्षिणा के तृष्णातिशय की व्यंजना हो रही है।

'एवमात्तरतिरात्मसम्भवास्तान्निवेश्य चतुरोऽपि तत्र निवेश्य'

यहाँ ल्यप् प्रत्ययान्त निवेश्य पद विवाह का व्यंजक है।

हविशु आमेघवता चतुर्णां मध्ये ललाटंतपसप्तसप्तिः ।१३।४१

यहाँ ललाटंतप पद खश प्रत्ययान्त है जो अत्यन्त ताप' का व्यंजक है। ललाटंतप का अर्थ है सूर्य।

वेश्मानि रामः परिबर्हवन्ति विश्राण्य सौहार्दनिधिः सुहृद्भ्यः ।१४।१५
बाष्पायमाणो बलिमन्निकेतमालेख्य शेषस्य पितुर्विवेश ॥

यहाँ बाष्पायमाणो पद क्यङ् प्रत्ययान्त है और वह करुण रस का व्यंजक है।

औत्पातिक मेघ इवाश्मवर्षं महीपते शासनमुज्जगार ॥ १४।५३

यहाँ उज्जगार क्रिया पद उद्गीर्णवान् इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है अर्थात् लक्ष्मण ने राम की आज्ञा बड़ी कठिनाई से सुनाया। इस प्रकार उज्जगार पद दारुणता के व्यंजक होने के साथ ही—विषाद का भी व्यंजक है।

इस प्रकार पद एक अंश में प्रत्यय द्वारा पदैक देश की व्यंजकता का विवेचन किया गया।

विभक्ति की व्यंजकता—

'लताप्रतानोद्ग्रथितैः स केशैरधिज्यधन्वा विचचार दावम्'।

यहाँ 'दारम्' में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया है जिसका कारण बताते हुए मल्लिनाथ ने लिखा है कि 'देशकालाध्वगन्तव्या कर्मसंज्ञा ह्यकर्मणाम्' इति दारस्य कर्मत्वम् इस प्रकार द्वितीया विभक्ति की व्यञ्जकता स्पष्ट है।

'नमसा निभृतेन्दुना तुलामुदितार्केण समारुरोह तत्'

यहाँ 'तुला' का प्रयोग सदृश अर्थ में किया गया है और 'तुला' शब्द के योग में तृतीया विभक्ति होती है अतः तमसा में तृतीया विभक्ति सदृश अर्थ की व्यञ्जक है।

अलं महीपाल ! तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात्। २।३४

यहाँ अलं के योग में 'श्रमेण' में तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है। नन्दिनी का रक्षाहेतु राजा को श्रम करना व्यर्थ है क्योंकि साध्य का पूर्ण रूप से अभाव है। अतः तृतीयाविभक्ति द्वारा श्रम की निरर्थकता की व्यञ्जना की गई है।

कालिदास ने सम्बोधनों का प्रयोग भी पात्रों के गुण के अनुरूप किया। उनके द्वारा प्रयुक्त सम्बोधन पद समय एवं परिस्थिति के अनुकूल हो पात्रों के स्वभाव की पूर्ण व्यञ्जना कर देते हैं। षष्ठ सर्ग में सुनन्दा द्वारा इन्दुमती के लिए आर्ये।[1] का प्रयोग आदर का व्यञ्जक है।

त्रयोदश सर्ग में राम द्वारा सीता के लिए अनेक सम्बोधनों का प्रयोग कराया गया है जो विभिन्न रसों एवं भावों के व्यञ्जक हैं। पुष्पक विमान पर आसीन राम-सीता को वनों को दिखाते हुए मुग्धेऽक्षि ! का प्रयोग करते हैं जो स्नेह भाव का व्यञ्जक है। पुनः चण्डि ! पद का प्रयोग करते हैं जो कोप भाव का व्यञ्जक है। वस्तुतः सीता क्रोधी स्वभाव की नहीं थीं बल्कि परिस्थिति के अनुकूल ही उसका प्रयोग किया गया है। इसलिए मल्लिनाथ कहते हैं— चण्डि इत्यनेन कोपनशील-त्वाभीति निम्नत्वं सूचयति मेघ इति व्यज्यते। रघु० १३।२१

राम जब सीता हरण के प्रसंग का कथन करते हैं तो उस समय सीता भीरु ![2] कह कर सम्बोधित करते हैं, जो भय का व्यञ्जक है। एक स्थान पर मधुरगात्रि ! सम्बोधन स्नेह का व्यञ्जक है।

चतुर्दश सर्ग में अपने दुष्कर्मों से खिन्न कैकयी के लिए राम अम्ब ! पद का प्रयोग करते हैं, जो मातृस्नेह का व्यञ्जक है।

इसी प्रकार अन्य प्रसंगों में भी सम्बोधन पदों की सार्थकता देखी जा सकती है। दिलीप का हाथ जब बाण में संलग्न हो जाता है तो सिंह, राजा के लिए

---

१ आर्ये ! व्रजामोऽन्यतः ॥ ६।८२ २ रघुवंश १३।२४

महीपाल पद का प्रयोग करता है, जो सिंह के गर्व का एवं वीर राजा के दैन्य का व्यंजक है। किन्तु जब राजा परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं, तो नंदिनी दिलीप के लिए साधो, वत्स, पुत्र पद का प्रयोग करती है, जो नंदिनी का राजा के प्रति वात्सल्य का व्यंजक है। इसी प्रकार रघु के लिए देवेन्द्र इत्यादि पद उनकी श्रेष्ठता का व्यंजक है। इन्दुमती की मृत्यु से दुःखित अज के लिए वशिष्ठ का शिष्य 'वियुतसत्वसार' कहता है जिससे उनके प्रख्यात धैर्यातिशय की व्यंजना होती है।

निपात की व्यंजकता—

'विषादलुप्तप्रतिपत्ति विस्मितं कुमारसैन्यं सपदि स्थितं च तत्।
वसिष्ठधेनुश्च यदृच्छयागता श्रुतप्रभावा ददृशेऽथ नंदिनी ॥ ३।४०

अश्व के रक्षक रघु की सेना ने जब देखा कि अश्व देखते-देखते ही अदृश्य हो गया तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। ठीक इसी समय वशिष्ठ की प्रभावशाली गौ नंदिनी वहाँ आ पहुँची।

यहाँ प्रयुक्त दो 'च' अविलम्ब का व्यंजक है दो 'चकारावविलम्बरूपकौ' मल्लिनाथ।

ज्यानिनादमथ गृह्णती तयोः प्रादुरास बहुलक्षपाछविः ॥ रघु० ११।१५ ३।४०

यहाँ प्रादुरास में 'आस' तिङन्त रूप निपात है। इस आस् निपात द्वारा (ताड़का) गतिशीलता, दीप्तता का कथन किया है और इस प्रकार रौद्र रस की व्यंजना हो रहा है।

वर्ण की व्यंजकता—

'तमुपाद्रवदुद्यम्य दक्षिणं दोर्निशाचरः' वर्ण नपुंसक लिंग का व्यंजक है। 'दोः' की व्याख्या करते हुए मल्लनाथ कहते हैं—'ककुद्दोषणी' इति भगवत्रोम्याप्य कारस्य प्रयोगाद्दोषशब्दस्य नपुंसकत्वं द्रष्टव्यम्। 'भुजबाहू प्रवेष्टो दोः' इति पुलिंगसाहचर्यात्पुंस्त्वं च। मल्लिनाथ। १५।२३

वर्णों की व्यंजकता तो कालिदास के काव्य में सर्वत्र दर्शनीय है। महाकवि ने कहीं वर्णों का प्रयोग रस के विरुद्ध नहीं किया। उनके वर्णन सर्वत्र,रस एवं भाव के व्यंजक हैं।

तमोऽपाङ्गप्रतिसारिहाणि क्रियासमापत्तिनिवर्तितानि।
हृयन्त्रजामानशिरे मनोज्ञान्योयलोलानि विलोचनानि। रघु ७।२३
चुम्बनादलकचूर्णदूषितं शङ्करोऽपि नयनं ललाटजम्।
——————न्यये बभौ पार्वतीवदनगन्धवाहिने। कु० स० ८।१९

इन स्थलो म प्रयुक्त रकार, ह्रस्व वर्ण मे अव्यवहृत र फ वर्ग तवग इत्यादि सभी रति भाव के व्यंजक हैं।

वचन की व्यंजकता—

उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ॥ ३।६७

यहाँ विलोचनानि में बहु वचन बहुत्व का द्योतक है और विलोचनानि के द्वारा कवि इस बात की व्यंजना कर रहा है कि शंकर ने दो नहीं अपितु तीनों नेत्रों से पार्वती को देखा।

प्रत्ययांशों की व्यंजकता—

परस्परेण स्पृहणीयशोभं न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत्।
अस्मिन्द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां वितथोऽभविष्यत् ॥

यहाँ अभविष्यत् एवं अयोजयिष्यत् में 'लिङ्निमित्ते लृङ्क्रियातिपत्तौ' अर्थ में लृङ् का प्रयोग किया गया है। वस्तुतः रूपवान् स्त्री एवं पुरुष का योग कठिनाई से होता है किन्तु यहाँ हो गया है। अतः तिङन्त अभविष्यत् अयोजयिष्यत् पद के प्रत्ययांश लृङ् द्वारा इन्दुमती अज के सौन्दर्य की सार्थकता की व्यंजना की गई है। इस प्रकार सुबन्त एवं तिङन्त दोनों पदों का प्रयोग कवि ने व्यंग्य को व्यंजित करने के लिए व्यंजक रूप में किया है।